* वन्देजिनवरम् *

|2|6|

आर्य्यमत लीला।

[क—भाग]

सत्यार्थ प्रकाश और वेद

(१)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीने सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक के तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत खंडन करते हुवे ईसाई मत की पुस्तक मत्ती रचित पुस्तक का लेख इस प्रकार दिया है:—

"यीशुखीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ कि उसकी माता मरियम की यूसफ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठे होनेके पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है। देखो परमेश्वर के एक दूतने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा—हे दाऊद के सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लानेसे मत डर क्योंकि उस को जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है—"

इस प्रकार लिख कर स्वामी दयानन्द जीने इसका खंडन इस प्रकार दिया है:—

"इन बातों को कोई विद्वान नहीं मान सकता है कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टि क्रमसे विरुद्ध हैं इन बातोंका मानना मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है सभ्य विद्वानों का नहीं। भला जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पुलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है। ऐसे तो जिस २ कुमारिका के गर्भ रह जाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और झूंठ मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूतने मुझको स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्माकी ओरसे है-जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्य्य से कुंती का गर्भवती होना भी पुराणोंमें असंभव लिखा है-ऐसी २ बातों को आंख के अंधे गांठ के पूरे लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं—"

इसही प्रकार स्वामी दयानंदजी आठवें समुल्लास में लिखते हैं।

"जैसे कोई कहे कि मेरे माता [illegible] न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुवा' उत्प- असंभव बात पागल लोगों कि यदि स्वामी जी महाराज [illegible] की उ- खंडन में तो ऐसा क: तो बहुत सी है कि स्वामीजी [illegible] मिलैगा कि मत में भी ऐश्वर यह कह देवैं कि अंधिक [illegible] को ईश्वर से है-हम क- हैं—स्वच्छ यदि यह माना जावे कि

मुल्लास में लिखते हैं कि परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में सैकड़ों और हज़ारों जवान मनुष्य पैदाकर दिये- हंसी आती है स्वामी जीके इस लेख को पढ़कर और दया आती है उन भोले मनुष्यों की बुद्धिपर जो स्वामी जी के मत को ग्रहण करते हैं क्योंकि सृष्टि नियम और प्रत्यक्षादि प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है और स्वामी जी स्वयं मानते हैं कि विना माता पिताके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसक्ता है। ईसाईयों ने इस सृष्टि नियम को आधा तोड़ा अर्थात् विना पिता के केवल माता से ही ईसामसीह की पैदायश बयान की, जिस पर स्वामी दयानन्द जी इतने क्रोधित हुवे कि ऐसी बात मानने वालोंको मूर्ख और जंगली बताया परन्तु आपने सृष्टि नियम के सम्पूर्ण विरुद्ध बिना माता और विना पिता के सृष्टिकी आदि में सैकड़ों और हजारों मनुष्यों के होने का सिद्धान्त स्थापित कर और किंचित् भी न लजाये न यहां स्वामी जी प्रत्य- को किस प्रकार भूल नको अपनी बुद्धि और क्यों उन्हों न ठहराया ने हैं। स्वा- गर्भ र-

हुने के इस पौराणिक कथन को तो असम्भव लिख दिया और ऐसी बातों के मानने वालों को आंख के अंधे वता दिया परन्तु इससे भी अधिक विना माता पिता के और विना गर्भ के ही सैकड़ों और हजारों मनुष्यों की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वयं अपने चेलों को सिखाया। आश्चर्य है कि स्वामी जी ने अपने चेलों को जिन्हों ने स्वामीजी की ऐसी असम्भव बातें मानलीं आंखका अंधा क्यों न कहा ? स्वामीजी अपने दिल में तो हंसते होंगे कि जगत् के लोग कैसे मूर्ख हैं कि उनको कैसी ही असम्भव और पूर्वापर विरोधकी बातें सिखा दी जावें वह सब बातों को स्वीकार करने के वास्ते तय्यार हैं-

कैसे तमाशे की बात है कि सृष्टि की आदि में विना माता पिता के सैकड़ों जवान मनुष्य आपसे आप पैदा होकर कूदने लगे होंगे। जवान पैदा होनेका कारण स्वामीजी ने यह लिखा है कि यदि बालक पैदा होते तो उनको दूध कौन पिलाता कौन उनका पालन करता ? क्योंकि कोई माता तो उनकी थी ही नहीं परन्तु स्वामी जी को यह खयाल न आया कि जब उनकी उत्पत्ति बिना माता के एक असम्भव रीति से हुई है तो उनका पालन पोषण भी असम्भव

रीतिसे होना क्या मुशकिल है? अर्थात् लिख देते कि बालक ही पैदा हुवे थे और जवान होने तक बिना खाने पीने के बढ़ते रहे थे उनको माता के दूध आदिक की कुछ आवश्यकता नहीं थी—

स्वामी जी ने यह भी सिखाया है कि जीव प्रकृति और ईश्वर यह तीन वस्तु अनादि हैं इनको किसीने नहीं बनाया है और उन लोगों के खंडन में जो उपादान कारण के बिदून जगत् की उत्पत्ति मानते हैं स्वामी जी ने लिखा है कि यद्यपि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है परन्तु सर्व शक्तिमान् का यह अर्थ नहीं है कि जो असम्भव बात को करसके, कोई वस्तु बिना उपादान के बनती हुई नहीं देखी जाती है इस हेतु उपादान का बनाना असम्भव है अर्थात् ईश्वर उपादान को नहीं बना सक्ता है। अब हम स्वामी जीके चेलोंसे पूछते हैं कि सृष्टि की आदिमें जब ईश्वर ने एक असम्भव कार्य कर दिया अर्थात् बिना मा बाप के जवान मनुष्य कूदते फांदते पैदा कर दिये तो क्या उनका शरीर भी बिना उपादान के बनादिया? इस के उत्तरमें स्वामी जीके इस सिद्धान्त को लेकर कि बिना उपादान के कोई वस्तु नहीं बन सक्ती है आपको यह ही कहना पड़ैगा कि उपादान से ही बनाया। तो कृपा करके यह भी कह दीजिये कि ईश्वर ने सृष्टि की आदि में पहले मिट्टी के पुतले जवान मनुष्यों के आकार बनाये होंगे वा लकड़ी वा पत्थर वा किसी अन्य धातुकी मूर्ति घड़ी होंगी और फिर उन मूर्तियों के अवयवों को हड्डी चमड़ा मांस रुधिर आदिक के रूप में बदल दिया होगा? परन्तु यहां फिर आप को मुशकिल पड़ैगी क्योंकि स्वामी जी यह भी लिखते हैं कि "जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण जल शीतल और पृथिव्यादिक सब जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सक्ता" तब ईश्वर ने उन पुतलों को कैसे परिवर्तन किया होगा। गरज स्वामी जी की एक असम्भव बात मानकर आप हज़ार मुशकिलों में पड़ जावेंगे और एक असम्भव बातके सिद्ध करने के वास्ते हज़ार असम्भव बात मानकर भी पीछा नहीं छुटैगा—

स्वामीजी ने ईसामसीह की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि यदि बिना पिता के ईसामसीह की उत्पत्ति मानली जावे तो बहुत सी कुमारियों को बहाना मिलैगा कि वह गर्भ रहने पर यह कह देवैं कि यह गर्भ हम को ईश्वर से है-हम कहते हैं कि यदि यह माना जावे कि

सृष्टि की आदि में ईश्वर ने माता पिता के विदून मनुष्य उत्पन्न कर दिये तो बहुत सी स्त्रियों को यह मौका मिलेगा कि वह कुत्सित गर्भ रहने पर परदेश में चली जाया करैं और बच्चा पैदा होने के पश्चात् प्रसूति क्रिया समाप्त होने पर बालक को गोद में लेकर घर आजाया करैं और कहदिया करैं कि परमेश्वर ने यह बच्चा आपसे आप बनाकर हमारी गोदी में देदिया इसके अतिरिक्त यह बड़ा भारी उपद्रव पैदा हो सक्ता है कि जो स्त्रियां अपना व्यभिचार छिपानेके वास्ते उत्पन्न हुवे बालक को बाहर जंगलमें फिंकवा देती हैं और उस बालक की सूचना होने पर पुलिस बड़ी भारी तहक़ीक़ात करती है कि यह बालक किसका है ? स्वामी जी का सिद्धान्त मानने पर पुलिस को कोई भी तहकीक़ात की ज़रूरत न रहे और यह ही लिख देना पड़ा करैगा कि एक बालक बिना मावाप के ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ अमुक जंगल में मिला-इसही प्रकार के और सैकड़ों उपद्रव उठ खड़े होंगे। यह तो उसही समय तक कुशल है जब तक राजा और प्रजा गण इस प्रकार के असम्भव धार्मिक सिद्धान्तों को अपने सांसारिक और व्यावहारिक कार्यों में असम्भव ही मानते हैं नहीं तो मत के घड़ने वालों ने तो मन माना जो चाहा घड़ दिया है-

स्वामीजी ईसाई मत को खंडन करते हुए ईसामसीहको उत्पत्ति बिना पिताके होने पर तो लिख गये कि "जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पुलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने" परन्तु स्वयं नियमके विरुद्ध बिना माता और पिता के मनुष्यकी उत्पत्तिको स्थापित करते समय स्वामीजी को विचार न हुआ कि ऐसे नियम को तोड़ने वाले परमेश्वर के वाक्यों को जो वेदमें लिखे हैं कौन मानेगा? पर स्वामीजीने तो जांच लिया था कि संसारके मनुष्यों की प्रकृति ही ऐसी है कि वह न सिद्धान्तोंको जांचते हैं और न समझने और सीखने की कोशिश करते हैं वरन जिसकी दो चार वाह्यबातें अपने मन लगती मालूम हुई उसही के पीछे हो लेते हैं और उसकी सब बातों में 'हांमेंहां' मिलानेको तैयार होजातेहैं-स्वामीजी ग्यारहवें समुल्लास में लिखते हैं "यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोलमें दूसरा कोई देश नहीं है इसी लिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नोंको उत्पन्न करती है इसी लिये सृष्टिकी आदिमें आर्य

लोग इसी देशमें आकर बसे इस लिये हम सृष्टि विषयमें कह आये हैं कि आर्य नाम उत्तम पुरुषोंका है और आर्योंसे भिन्न मनुष्योंका नाम दस्यु है जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं। पारस मणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूंठ है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूतेके साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं–"

स्वामीजीने यह तो सब ठीक लिखा। यह हिंदुस्तान देश ऐसा ही प्रशंसनीय है परन्तु आश्चर्यकी बात है कि स्वामी जी अष्टम समुल्लासमें इस प्रकार लिखते हैं–" मनुष्यों को आदि में तिब्बत देशमेंही ईश्वरने पैदा किये-" " पहले एक मनुष्य जाति थी पश्चात् श्रेष्ठोंका नाम आर्य और दुष्टोंका दस्यु नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम हुए जब आर्य और दस्युओं में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे इसीसे इस देशका नाम "आर्यावर्त" हुआ इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्योंके पूर्व इस देश में बसते थे क्योंकि आर्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सूधे इसी देशमें आकर बसे थे– जो आर्यावर्त्त देशसे भिन्न देश हैं वे दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं।"

हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि आर्यावर्त्त देशको ईश्वरने सब देशों से उत्तम बनाया परन्तु उस को खाली छोड़दिया और मनुष्योंको तिब्बत देशमें उत्पन्न किया क्या यह असंगत बात नहीं है ? जब यह आर्यावर्त देश सबसे उत्तम देश बनाया था तो इसही में मनुष्योंकी उत्पत्ति करता–स्वामीजीने जो यह लिखा है कि मनुष्योंको प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न किया उसका कारण यह मालूम होता है कि सर्कारी स्कूलोंमें जो इतिहास की पुस्तक पढ़ाई जाती हैं उनमें अंगरेज विद्वानोंने ऐसा लिखा था कि इस आर्यावर्त देशसे उत्तरकी तरफ जो देश था वहांके रहने वाले लोग अन्य देशोंके मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ बुद्धिमान् हो गये थे पशु समान वहशी नहीं रहते थे वरन आग जलाना अन्न पकाकर खाना और खेती करना सीखगये थे वह कुछ तो हिन्दुस्तानमें आकर बसे और कुछ अन्य देशोंको चले गये–स्वामीजीके चेलों के हृदयमें स्कूलकी किताबोंमें पढ़ीहुई यह बात पूरी तरहसे समाई हुई थी

इस कारण स्वामी जीने अपने चेलों के हृदयमें यह बात और भी दृढ़ करनेके वास्ते ऐसा लिख दिया कि सृष्टि की आदिमें मनुष्य प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न कियेगये क्योंकि हिमालय से परे हिन्दुस्तान के उत्तरमें तिब्बत ही देश है—और यह कहकर अपने चेलोंको खुश करदिया कि जो लोग तिब्बत से हिन्दुस्तानमें आकर बसे वह विद्वान् और धर्मात्मा थे इस ही हेतु इस देशका नाम आर्यावर्त्त देश हुआ है—

अंगरेज इतिहासकारोंकी इतनी बात तो स्वामी जी ने मानली परन्तु यह बात न मानी कि तिब्बत से आर्य लोग जिस प्रकार हिन्दुस्तानमें आये इस ही प्रकार अन्य देशोंमें भी गए ...न हिन्दुस्तान बासियोंकी बड़ाई ...नेके वास्ते यह लिखदिया कि अन्य सब देश दस्यु देश ही हैं अर्थात् अन्य सब देशमें दस्यु ही जाकर बसे और दस्युका अर्थ चोर डाकू आदिक किया है यह कैसे पक्षपात की बात है?—इस प्रकार अपनी बड़ाई और अन्य पुरुषोंकी निन्दा करना बुद्धिमानोंका काम नहीं हो सकता—परन्तु अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते स्वामीजीको सब कुछ करन. पड़ा—

अंगरेज इतिहासकारों . यह भी लिखा था कि आर्योंके हिन्दुस्तानमें आने से पहिले इस देश में भील संथाल आदिक जंगली मनुष्य रहते थे जिन को खेती करना आदिक नहीं आताथा । जब आर्य लोग उत्तरकी तरफसे प्रथम पंजाब देशमें आए तो उन्होंने इन भील आदिक बहशी लोगोंसे युद्ध किया बहुतोंको मारदिया और बाकीको दक्षिण की तरफ भगा दिया और पंजाब देशमें बसगए फिर इस ही प्रकार कुछ और भी आगे बढ़े यह ही कारण है कि पंजाब और उसके समीपस्थ देशमें भील आदिक बहशी जातियोंका नाम भी नहीं पाया जाता है और यह लोग प्रायः दक्षिण ही में मिलते हैं—इस कथन में उत्तरसे आने वाले आर्योंपर एक प्रकार का दोष आता है कि उन्होंने हिन्दुस्तानके प्राचीन रहने वालोंको मारकर निकाल दिया और स्वयम् इस देशमें बसगये—

ऐसा विचार कर स्वामी जीने यह ही लिखना उचित समझा कि जब आर्य लोग तिब्बतसे इस देशमें आये तो उस समय यह देश खालीथा कोई नहीं रहता था वरण तिब्बत देशके दस्यु लोगोंसे लड़ाईमें हार मानकर और तङ्ग आकर यह आर्य लोग इस हिन्दुस्तानमें भाग आयेथे और खाली देश देखकर यहीं आ बसे थे—स्वामी जीको यह भी प्रसिद्ध करना था कि

मनुष्य मात्रको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह वेदोंसे ही हुआ है बिना वेदों के किसी मनुष्यको कोई ज्ञान नहीं हो सकता है और वेदोंको सृष्टिके आदि ही में ईश्वरने मनुष्योंको दिये इस कारण यदि वह यह मानते कि आर्योंके हिन्दुस्तान में आने से पहिले भील आदिक वहशी लोग रहते थे तो सृष्टिके आदिमें ईश्वरका वेदोंका देना असिद्ध हो जाता इस कारण भी स्वामीजीको यह कहना पड़ा कि तिब्बतसे आर्योंके आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई नहीं रहता था—यह बात तो हम आगे दिखावेंगे कि वेदोंसे कदाचित् भी मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि स्वामीजीके अर्थों के अनुसार वेद कोई उपदेश या ज्ञान की पुस्तक नहीं हैं बरण वह गीतोंका संग्रह है और गीत भी प्रायः राजाकी प्रशंसामें हैं कि हे शस्त्रधारी राजा तू हमारी रक्षा कर, हमारे शत्रुओंको बिनाश कर, उनको जानसे मारडाल, उनके नगर ग्राम विध्वंस करदे, हम भी तेरे साथ संग्राममें लड़ें और तू हमको धन दे अन्न दे,—और तमाशा यह कि प्रायः सब गीत इस एक ही विषयके हैं—जो गीत निकालो जो पन्ना खोल कर देखो उस में प्रायः यही विषय और यही मजमून मिलेगा यहां तक कि एक ही विषयको बार२ पढ़ते पढ़ते तबियत उकता जाती है और नाकमें दम आ जाता है और पढ़ते२ वेद समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इस एकबात को हजारों बार कैसे कोई पढ़े और हम एक ही बातको हजारों बार पढ़नेमें किस प्रकार कोई अपना चित्त लगावे? जिससे स्पष्ट बिदित होता है कि हजारों कबियोंने एक ही विषय पर कबिता की है और इन कबिताओंका संग्रह होकर वेद नाम हो गया है—यह सब बात तो हम आगामी लेखोंमें स्वामीजीके ही अर्थोंसे स्पष्ट सिद्ध करेंगे परन्तु इस समय तो हमको यह ही विचार करना है कि क्या सृष्टिकी आदिमें मनुष्य तिब्बतमें पैदा हुए और तिब्बत से आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई मनुष्य नहीं रहता था? हमको शोक है कि स्वामीजी ने यह न बताया कि यह बात उनको कहांसे मालूम हुई कि सृष्टिकी आदिमें सब मनुष्य तिब्बतमें पैदा किये गये थे॥

स्वामीजीने अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते ऐसा लिख तो दिया परन्तु उनको यह विचार न हुआ कि भील आदिक जङ्गली जाति जो इस समय हिन्दुस्तानमें रहती हैं उनको बाबत यदि कोई पूछेगा कि कहांसे आई तो क्या जवाब दिया जावेगा?

आर्यावर्त देश जहां तिब्बतसे आकर आर्योंका वास करना स्वामीजीने बताया है उसकी सीमा इस प्रकार वर्णन की है कि, उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पश्चिममें सरस्वती और पूर्वमें अटक नदी--और इस ही पर स्वामीजीने लिखा है कि आर्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देशसे लेकर ईशान उत्तर वायव्य, और पश्चिम देशोंमें रहने वालोंका नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है और नैर्ऋत दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओंमें आर्यावर्त देशसे भिन्न रहने वाले मनुष्योंका नाम राक्षस है। स्वामीजी लिखते हैं कि अब भी देखलो हबशी लोगोंका स्वरूप भयङ्कर जैसा राक्षसोंका वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है। हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि यह भील वा राक्षस वा वहशी लोग कहींसे आकर से वा पहलेसे रहते हैं वा जो आर्य लोग यहां आये उन्होंमेंसे राक्षस वनगये? इसका उत्तर कुछ भी न वन पड़ेगा क्योंकि यह तो स्वामीजी ने कहीं कथन किया ही नहीं है कि दस्यु लोग भी हिन्दुस्तानमें आये और इस बातका स्पष्ट निषेध ही किया है पहिले इस हिन्दुस्तानमें कोई वसता था तब लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि आर्योंओं में से ही भील आदिक वहशी और भयङ्कर राक्षस वन गये--परन्तु यह तो बड़ी हेटी बात होगई--स्वामी जी ने तो उत्तरसे आने वालों के शिरसे यह कलंक हटाने के वास्ते कि उन्हों ने इस देश के प्राचीन भील आदिक वहशी जातियों को मारकर भगा दिया और उनका देश छीन लिया इतिहास कारों के विरुद्ध यह सिद्धान्त बनाया था कि हिन्दुस्तान में पहले कोई नहीं रहता था वरण यह देश खाली था परन्तु इस सिद्धान्तसे तो इससे भी बढ़िया दोष लगगया अर्थात् यह मानना पड़ा कि भील आदिक वहशी जातियां जो इस समय हिन्दुस्तान में मौजूद हैं वह विद्वान् आर्योंओं से ही बनी हैं।

प्यारे आर्य्यसमाजियो! आप घबराइये नहीं स्वामी जी स्वयम् लिखते हैं कि सृष्टिकी आदिमें प्रथम एकही मनुष्य जाति थी पश्चात् तिब्बत ही देश में उन आदि मनुष्यों की संतान में जो २ मनुष्य श्रेष्ठ हुवा वह आर्य्या कहलाने लगा और जो दुष्ट हुवा उसका दस्यु नाम पड़गया इस कारण हे आर्यसमाजियो! सब आर्या अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष अपने दुष्ट भाइयों से डर कर हिन्दुस्तान में तो आगये परन्तु जो हिन्दुस्तान में आये उनकी संतान में भी बहुत से तो श्रेष्ठ ही रहे होंगे और बहुत से तो दुष्ट हो गये होंगे क्योंकि यह नियम तो

है ही नहीं कि जैसा पिता हो उसकी संतान भी वैसीही हो। यदि ऐसा होता तो जब सृष्टिकी आदि में एक जाति के मनुष्य उत्पन्न किये थे तो फिर उनकी संतान श्रेष्ठ और दुष्ट दो प्रकार की क्यों हो जाती और क्यों ब्राह्मण भी जन्म पर ही रहता अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और शूद्रका पुत्र शूद्र ही रहता स्वामीजीके कथनानुसार मनुष्य की उच्चता वा नीचता उसके कर्म पर न रहती परन्तु स्वामी जी तो पुकार पुकार कहते हैं कि ब्राह्मण का पुत्र शूद्र और शूद्रका पुत्र ब्राह्मण हो जाताहै। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि यद्यपि सब श्रेष्ठ मनुष्य तिब्बतसे हिन्दुस्तान में चलेआये परंतु यहां आकर उन कीसंतान फिर श्रेष्ठ और दुष्ट होती रही होगी और यहां तक दुष्ट हुई कि भील आदिक जंगली और राक्षस आदिक भयङ्कर जाति भी इनही आर्य्योंओं की संतान में से होगई। इसही प्रकार जो दुष्ट अर्थात् दस्यु लोग तिब्बत में रहगये और हिन्दुस्तान के सिवाय भूगोल के सर्व देशोंमें जाकर बसे उन की संतान में भी श्रेष्ठ और दुष्ट होते रहेहोंगे अर्थात् इस विषयमें हिन्दुस्तान और अन्य सर्व देश एकसा होगये सर्वही देशोंमें श्रेष्ठ और सर्व ही देशों में दुष्ट सिद्ध हुवे। स्वामी जी के कथनानुसार श्रेष्ठ लोग आर्य्य कहलाते हैं और दुष्ट लोग दस्यु अर्थात् पृथ्वी के सर्व ही देशों में आर्य्य और दस्यु बसते हैं और बसते रहे हैं देखिये स्वामी जी के मन घड़न्त कथन का क्या उलटासार निकल गया और आर्यसमाजियोंका यह कहना ठीक न रहा कि हिन्दुस्तानके रहने वालोंको चाहिये कि वह अपने आपको आर्य्य कहा करें क्योंकि उन्हीं के कथनानुसार सब ही देशोंमें आर्य्य हैं सब ही देशोंमें दस्यु, अङ्गरेजीमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि संग्राम में और इश्क में सब प्रकारके झूठ और धोके उचित होते हैं परंतु धर्मके विषय में असत्य और मायाचार को किसी ने उचित नहीं कहा है परन्तु हमको शोक है कि स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में लिखते हैं—

"अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य्य का निज मतथा तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खंडन के लिये उस मत को स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है"

अर्थात् स्वामीजी लिखते हैं कि यदि शंकराचार्य्य जी ने जैनियोंके मतके खंडन करने के वास्ते झूठा मत स्थापन किया हो तो अच्छा किया अर्थात् दूसरे के मतको खंडन करने के वास्ते स्वामी जी झूठा मत स्थापन करने को भी पसन्द करते हैं जिससे स्पष्ट विदित होता है कि चाहे झूठा

मत मनुष्यों में प्रचलित करना पड़े परन्तु जिस तरह होसके दूसरे की बात को खण्डन करनी चाहिये अर्थात् अपना नाक कटै सो कटै परन्तु दूसरे का अपशगुन करदेना ही उचित है इस से पूर्ण रूप से सिद्ध होगया कि स्वामी जी का कोई एक मत नहीं था वरण जिसमें उनके चेले खुशहों वही उनका मतथा यह ही कारण है कि प्रथम बार सत्यार्थप्रकाश पुस्तक छपने और उनके चेलोंके पास पहुंचनेपर जब उनके चेले नाराज हुवे और उस सत्यार्थ प्रकाश में लिखी बातें उनको स्वीकार न हुईं तब यह जानकर तुरंत ही स्वामी जी ने उस सत्यार्थप्रकाश को मंसूख कर दिया और दूसरी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक बनाकर प्रकाश करदी जिसमें उन सब बातों को रद्द कर दिया जो उनके चेलों को पसन्द नहीं हुई थीं वरण उन प्रथम लेखों के विरुद्ध सिद्धान्त स्थापन कर दिये। इसके सिवाय वेदोंका अर्थ जो स्वामी जी ने किया है वह भी बिलकुल मनमाना किया है और जहां तक उनसे हो सका है उन्होंने वेदके अर्थों में वहही बातें भरदी हैं जो उनके चेलों को पसन्द थीं-वरण शायद इस ख़याल से कि नहीं मालूम हमारे चेलोंको कौन बात पसन्द हो कहीं २ दो दो और तीन तीन प्रकार के अर्थ करके दिखला दिये हैं जिससे सिवाय इसके और क्या प्रयोजन हो सक्ता है? कि यह दिखाया जावे कि वेदों की भाषा इस समय ऐसी भाषा होगई है कि उसके जो चाहो अर्थ लिखे जा सकते हैं इस हेतु यदि हमारे चेलों को हमारे किये हुवे अर्थ अप्रिय हों तो सत्यार्थ प्रकाशकी तरह इन अर्थों को रद्द करके दूसरे अर्थ लिख दिये जावें-देखिये स्वामी जी ऋग्वेद के प्रथम मंडल के छठे अध्यायके सूक्त ९१ में पांचवीं ऋचाके दो अर्थ इस प्रकार करते हैं।

प्रथम अर्थ—"हे समस्त संसारके उत्पन्न करने वा सब विद्याओंके देनेवाले परमेश्वर! वा पाठशाला आदि व्यवहारोंके स्वामी विद्वान् आप अविनाशी जो जगत् कारण वा विद्यमान कार्य जगत् है उनके पालने हारे हैं और आप दुःख देने वाले दुष्टों के विनाश करने हारे सबके स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण आप अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा समस्त बुद्धि युक्त वा बुद्धि देने वाले हैं इसीसे आप सब विद्वानोंके सेवने योग्य हैं"

दूसरा अर्थ—"सब औषधियोंका गुणदाता सोम औषधि यह औषधियों में उत्तम ठीक २ पथ्य करनेवाले जनों की पालना करने हारा है। और यह सोम मेघके समान दोषोंका नाशक रोगोंके विनाश करनेके गुणोंका प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण यह सेवने योग्य वा उत्तम बुद्धिका हेतु है इसीसे वह सब विद्वानोंके सेवनेके योग्य है"

इन तमाम बातोंसे यह ही विदित होता है कि स्वामीजीकी इच्छा और कोशिश अपने चेलोंको खुश करने ही की रही है वास्तविक सिद्धान्तसे उन को कुछ मतलब नहीं रहा है । परन्तु इससे हमें क्या गरज़ स्वामीजीने जो सिद्धान्त लिखे हैं वह अपने मनसे सच समझ कर लिखे हों वा अपने चेलोंको बहकानेके वास्ते, हमको तो यह देखना है और जांच करनी है कि उनके स्थापित किये हुए सिद्धान्त कहां तक पूर्वापर विरोधसे रहित और सत्य सिद्ध होते हैं और स्वामीजीके प्रकाश किये अर्थोंके अनुसार वेदोंका मजमून ईश्वरका वाक्य है वा राजाकी प्रशंसाके गीतोंका संग्रह । इस ही जांच में सबका उपकार है और सबको सब मतों की इस ही प्रकार जांच करनी चाहिये ॥

॥ आर्यमत लीला ॥

(२)

स्वामीजी ने यह बात तो लिखदी कि सृष्टि की आदि में सृष्टि नियम के विरुद्ध ईश्वरने बिना मा बापके सकड़ों और हज़ारों मनुष्य उत्पन्न कर दिये परन्तु यह न बताया कि उन्होंने पैदा होकर किस प्रकार अपना पेट भरा और पेट भरना उनको किसने सिखाया ? घर बनाना उनको किस तरह आया और कब तक वह बे घर रहे ? कपड़ा उनको कब मिला और कहां से मिला और कब तक वह नंगे रहे ? कपड़ा बनाना उन्होंने कहां से सीखा ? अनाज बोना उनको किसने सिखाया ? इत्यादिक अन्य हज़ारों वस्तु बनानी उनको किस प्रकार आई और कब आई ? ॥

इन प्रश्नों को पढ़कर हमारे विद्वान् भाई हम पर हंसेंगे क्योंकि पशुओं को पेट भरना कौन सिखाता है ? इस के अतिरिक्त बहुत से पक्षी बय्या आदिक अद्भुत२ घोंसला बनाते हैं, मकड़ी सुन्दर जाला पूरती है और बतखका अंडा यदि मुर्गी के नीचे सेया जाकर बच्चा पैदा कराया जावे और वह बच्चा मुर्गी ही के साथ पाला जावे तौभी पानी को देखते ही स्वयम् तिरने लग जावेगा—यह तो पशुपक्षियों की दशा है परन्तु पशुपक्षियों में इतना प्रबल ज्ञान नहीं होता है कि वह अपनी जातिके अनुसार पशुज्ञान से अतिरिक्त कोई कार्य कर सकें अर्थात् बय्या जैसा घोंसला बनाता है वैसा ही बनावेगा उसमें उन्नति नहीं कर सक्ता है परन्तु मनुष्य में पशु से विशेष ज्ञान, इस ही बात से सिद्ध होता है कि वह संसार की अनेक वस्तुओं और उनके गुण और स्वभाव को देखकर अनुमान ज्ञान पैदा करता है और वस्तुओं के गुणों का प्रयोग करता है-इस अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा आहिस्ता आहिस्ता मनुष्य बहुत उन्नति कर जाता है और करता रहता है—इस मनुष्य जाति को उन्न-

ति करने में एक यह भी सुबीता है कि इस में बातचीत करने की शक्ति है यदि प्रत्येक मनुष्य एक एक बहुत छोटी छोटी बातका भी अनुमान करें तो हज़ार मनुष्य एक दूसरे से अपनी बातको कहकर सहज ही में हज़ार २ बात जान लेते हैं और उन बातोंकी जांच करके नवीन ही बारीक बात पैदा कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त आज कल भी वहशी मनुष्य अफरीका आदिक देशोंमें मौजूद हैं जो पशु के समान नंगे विचरते हैं और पशु के ही समान उनका खाना पीना और रात दिन का व्यवहार है उनमें से बहुत से स्थान के वहशियों ने बहुत कुछ उन्नति भी करली है और बहुत कुछ उन्नति करते जाते हैं और सभ्यता को प्राप्त होते जाते हैं-उनकी उन्नति के क्रम को देखकर विद्वान इतिहासकारों ने इस विषय में बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। वह लिखते हैं कि किसी समय में जब वन में कोई ज़रा समझदार होता है वह पत्थरके नोकदार वा धारदार टुकड़ों को धरती के खोदने वा लकड़ी आदिक वस्तुओं के काटने का औज़ार बनालेता है और उसके देखा देखी अन्यभी सब लोग पत्थरों को काम में लाने लगते हैं-किसी समय में किसी गहन वन को देखकर उनमें से किसी को ऐसा ध्यान आजाता है कि यदि वृक्षों की शाखा किसी स्थान पर चारों तरफ थिनकी गाड़ कर और ऊपर भी शाखाएं डालकर ऊपर पत्ते डाल दिये जावैं तो शीत और वर्षादि बच सक्ते हैं ऐसा समझकर उनही पत्थरोंके औज़ार से शाखा काटता है और एक बहुत खराब सा घर बना लेता है किसी को किसी समय उनमें से ऐसा सूझता है कि यदि वृक्षोंके चौड़े पत्तों से शरीर ढांका जावे तो गर्मी आदिकसे आराम मिलता है और इस प्रकार बदन ढांपने का प्रचार होजाता है। पक्षियों के घोंसलों और मकड़ी के जालों को देखकर किसी के ध्यान में यह आजाता है कि यदि वृक्षों की बेलको आपस में उलझा लिया जावे अर्थात् बुन लिया जावे तो अच्छा ओढ़ने का वस्त्र बन जावे फिर कोई बड़ खजूर, सन, कुंवारा आदिक के बड़े २ रेशोंको बुनने लगजाता है। जंगल में हज़ारों प्रकार की वनस्पति और फल फूल होते हैं सबको खाते २ उनको यह भी समझ आने लगती है कि कौन वृक्ष गुणकारी है और कौन खाने में दुखदाई-जो गुणकारी होता है उसकी रक्षा करने लगते हैं और दुखदाई को त्याग देते हैं-जंगलमें बांस के बीड़ोंमें आपसमें रगड़ खाकर आग लग जाया करती है इस आगसे यह वहशी लोग बहुत डरते हैं परन्तु कालान्तर में किसी समय कोई इनके खानेकी वस्तु यदि इस आग में भुन-

जाती है और जलती नहीं है और उसको इनमें से कोई खालेता है तो वह बहुत स्वाद मालूम होती है और तब यह विचार होता है कि आग को किसी प्रकार काबू करना चाहिये और इससे खाने के पदार्थ भून लिये जाया करें। कालान्तर में कोई ज़रा समझदार या निडर मनुष्य आगको अपने समीप भी ले आता है और लकड़ी में लगाकर उसकी रक्षा करता है और उस में डालकर खानेकी वस्तु भून लेता है। क्रम २ पत्थर की सिल वा पत्थर के गोले आदिक से खाने आदिककी वस्तुका चूरा करना सीख जाते हैं फिर जब कभी कहींसे उनको लोहे आदिककी खान मिलजाती है तो उसको पत्थरों से कूट पीटकर कोई औज़ार बनालेते हैं इसही प्रकार सब काम बुद्धिसे निकालते चलेजाते हैं जब २ उनमें कोई विशेष बुद्धिवाला पैदा होता रहता है तब तब अधिक बात प्राप्त होजाती है यह एक साधारण बात है कि सब मनुष्य एकसी बुद्धिके नहीं होते हैं कभी २ कोई मनुष्य बहुत विशेष बुद्धिका भी पैदा होजाया करता है और उससे बहुत कुछ चमत्कार होजाता है जैसा कि आर्य भाइयोंके कथनानुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती भी एक अद्भुत बुद्धि के मनुष्य पैदाहुवे और अपने ज्ञान के प्रकाश से सारे भारतके मनुष्यों में उजियाला कर दिया।

भाईयो! यद्यपि मनुष्यकी उन्नति इस प्रकार हो सक्ती है और इस ही कारण किसी प्रश्नके करनेकी आवश्यक्ता नहीं थी परन्तु हम इन प्रश्नोंके करने पर इस कारण मजबूर हुवे हैं कि श्री स्वामी दयानन्दजीने अपने चेलोंको इस प्रकार मनुष्यकी उन्नति होने के विपरीत शिक्षादी है–स्वामी जी को वेदों को ईश्वरका वाक्य और प्राचीन सिद्ध करने के वास्ते इनकी उत्पत्ति सृष्टिकी आदि में वर्णन करनी पड़ी और उस समय इनके प्रगट करने की ज़रूरत को इस प्रकार ज़ाहिर करना पड़ा कि मनुष्य बिना सिखाये कुछ सीख ही नहीं सक्ता है। स्वामीजी इस विषयमें इस प्रकार लिखते हैं:—

"जब ईश्वरने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने की सामर्थ्य किसी मनुष्यको हो सक्तीहै। उसके पढ़ने और ज्ञानके बिना कोई भी मनुष्य विद्वान नहीं हो सक्ता जैसे इस समयमें किसी शास्त्रको पढ़के किसीका उपदेश सुनके और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारोंको देखके ही मनुष्योंको ज्ञान होता है। अन्यथा कभी नहीं होता। जैसे किसी मनुष्यके बालकको जन्म से एकांतमें रखके उसको अन्न और जल युक्तिसे देवे, उसकेसाथ भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे कि जब तक उसका मरण न हो तब तक उसको इसी प्र-

कारसे रक्खे तो मनुष्य पनेका भी ज्ञान नहीं हो सक्ता तथा जैसे बड़े बन में मनुष्योंको बिना उपदेशके यथार्थज्ञान नहीं होता है किन्तु पशुओंकी भांति उनकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है वैसे ही वेदोंके उपदेशके बिना भी सब मनुष्योंकी प्रवृत्ति होजाती"

इस विषयमें श्रीबाबूराम शर्मा एक आर्यसमाजी महाशय "भारतका प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि:—

"युरोपके अनेक विद्वानोंने यह सिद्ध करने की चेष्टाकी है कि ज्ञान और भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है प्रत्युत मनुष्यों ने ही इन्हें बनाया है, परन्तु युक्ति और प्रमाण शून्य होनेसे उनका यह कथन कदापि माननीय नहीं हो सकता"।

"अतएव सिद्ध है कि मनुष्योंको उत्पन्न करते ही उस परमपिता परमात्माने अपना ज्ञान भी प्रदान किया था जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक दूसरे पर प्रगट कर सकें और सृष्टि की समस्त वस्तुओं के गुणागुणों का अनुभव करके उसको धन्यवाद देते हुए अपने जीवन को सुख और शान्ति पूर्वक बितावें।"

"यदि जेम्सवाटने पकती हुई खिचड़ी के ऊपर खड़कते हुए ढकने का कारण भाप की शक्ति को अनुभव किया तो भाप के गुण जानने पर भी वह स्टीम एंजिन तब तक नहीं बना सका जब तक कि उसे न्यूकोमन के बनाये हुए एंजिन की मरम्मत करने का अवसर न मिला।"

इसही प्रकार अन्य बहुत बातें करके हमारे आर्या भाई वेदों की बड़ाई यहां तक करना चाहते हैं कि दुनिया भर में जो कुछ भी किसी प्रकार की विद्या मौजूद है वा जो कुछ नवीन २ कल बनाई जाती हैं वा आगे को बनाई जावेंगी उन सबका ज्ञान वेदों के ही द्वारा मनुष्यों को हुआ है। सृष्टि की आदि में जो कुछ भी ज्ञान मनुष्य को हो सकता है वह सब ज्ञान वेदों के द्वारा तिब्बत देशमें मनुष्यों के पैदा करते ही ईश्वर ने देदिया था और पृथिवी भर में सब देशों में तिब्बत से ही मनुष्य जाकर बसे हैं। इस कारण उस ही वेदोक्त ज्ञान के द्वारा सब प्रकार की विद्या के कार्य करते हैं। यदि ईश्वर वेदोंके द्वारा सर्व प्रकार का ज्ञान न देता तो मनुष्य जाति भी पशु समानही रहती।

प्यारे पाठको! यह हिन्दुस्तान किसी समय में अत्यन्त उन्नति शिखर को पहुंच चुका है और अनेक प्रकार की विद्या इस हिन्दुस्तान में होचुकी है कि जिसका एक अंश भी अभी तक अंगरेज आदिक विद्वानोंको प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि जब इस हिन्दुस्तान के अभाग्य का उदय आया उस समयमें ही किसी ऐसे मनुष्य ने, जो स्वामी दयानन्द

जैसी बुद्धि रखता था। हिन्दुस्तानियों को ऐसी शिक्षा दी कि मनुष्य अपने विचार से पदार्थों के गुणों का प्रयोग करके नवीन कार्य उत्पादन नहीं कर सकता है। ऐसी शिक्षा के प्रचार का यह प्रभाव हुआ कि विद्या की जो उन्नति हिन्दुस्तान में हो रही थी वह बन्द हो गई और जो विज्ञानकी बातें पैदा करली थीं आहिस्ता २ उन को भी भूल गये क्योंकि विचार शक्ति को काम में लाये बिदून विज्ञान की बातों का प्रचार रहना असम्भव ही हो जाता है। यह भी मालूम होता है कि अभाग्य के उदयसे हिन्दुस्तान में नशेकी चीजके पीने का भी प्रचार उस समय में बहुत हो गया था जिस को सोम कहते थे। इस से रहा सहा ज्ञान बिलकुल ही नष्ट होगया और इस देश के मनुष्य अत्यंत मूर्ख और आलसी हो गये।

यदि वेदों के अर्थ जो स्वामी जी ने किये हैं वह ठीक हैं तो इन अर्थोंसे यह ही ज्ञात होता है कि इस मूर्खता के समय में ही वेदों के गीत बनाये गये क्योंकि स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदों में सिवाय ग्रामीण मनुष्यों के गीत के और कुछ नहीं है। खैर वेदों में कुछ भी हो हमको तो शोक इस बात का है कि स्वामी जी इस वर्तमान समयमें जब कि हिन्दुस्तानमें अविद्या अन्धकार फैला हुआ है जब कि हिन्दुस्तानी लोग पदार्थ विद्या और कारीगरी की बातों में अपना विचार लगाना नहीं चाहते हैं, जब कि सब लोग निरुद्यमी और आलसी हो रहे हैं और एक कपड़ा सीने की सुई तक के वास्ते विदेशियों के आश्रित हो रहे हैं ऐसे नाजुक समय में स्वामी जी की यह शिक्षा कि मनुष्य अपने विचार से कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है हिन्दुस्तानियों के वास्ते जहर का काम देती है। यदि स्वामी जी के अर्थोंके अनुसार वेदों में पदार्थ विद्या और कारीगरी आदिककी आरम्भिक शिक्षा भी होती तौ भी ऐसी शिक्षा कुछ विशेष हानि न करती परन्तु वेदों में तो कुछ भी नहीं है सिवाय प्रशंसा और स्तुति के गीतों के और वह भी इस प्रकार कि एक २ विषय के एक ही मजमून के सैकड़ों गीत जिनको पढ़ता २ आदमी उकताजावे और बात एक भी प्राप्त न हो। खैर यह तो हम आगामी दिखावेंगे कि वेदों में क्या लिखा है? परन्तु इस स्थानपर तो हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि कोई बालक जो मनुष्यों से अलग रक्खा जावे। केवल एक वेदपाठी गुरू उसके पास रहै और उसको स्वामी जीके अर्थके अनुसार सब वेद पढ़ा देवे तो वह बालक इतना भी विज्ञान प्राप्त न कर सकेगा कि छोटीसे छोटी कोई वस्तु जो गांवके गंवार बनालेते हैं बनालेवे। गांवके बाढ़ी चर्खा बनालेते

हैं गांव के जुलाहे मोटा कपड़ा बुन लेते हैं। गांवके भीवर चटाई और टोकरे बनालेते हैं गंवार लोग खेत को लेते हैं परन्तु वह बालक सर्व विज्ञान तो क्या प्राप्त करेगा मामूली गंवार बालकों के बराबर भी ध्यान रखने वाला नहीं होगा। ऐसी दशामें हिन्दुस्तानियोंको स्वामीजीका यह उपदेश, कि विचार और तजरुबा करने से कोई विज्ञान मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सक्ता है वरण जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह वेदों से ही होता है क्या यह अभागे हिन्दुस्तानियोंके साथ दुश्मनी करना नहीं है ?।

यदि सर्वविज्ञान जो कुछ संसार में है वेदों ही से प्राप्त होता है तो जब कि स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाषा से सरल अर्थ कर दिया है हमारे आर्या भाई इन वेदोंको पढ़कर क्यों नाना प्रकारकी ऐसी कल नहीं बनालेते हैं जो अंगरेजों और जापानियोंको भी चकित करदें परन्तु शब्दों में जो चाहे प्रशंसा करदी जावै पर स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थको पढ़कर तो खाट बुनना वा मिट्टीके बर्तन बनाना आदिक बहुत छोटे २ काम भी नहीं सीखे जा सक्ते हैं। जापानियों ने आजकल थोड़े ही दिनों में बड़ी भारी उन्नति करली है और अनेक प्रकार की कल और औजार बनाकर अनेक अद्भुत और सस्ती वस्तु बनाने लगे हैं परन्तु यदि जापानमें भी कोई ऐसा उपदेशक उत्पन्न होजाता जो इस बालकी शिक्षा देता कि मनुष्य बिना दूसरेके सिखाये अपने विचारसे कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सक्ता है तो जापान भी बेचारा अभागा ही रहता। परन्तु यह तो अभागा हिन्दुस्तान ही है जो स्वयम् निरुद्यमी हो रहा है और निरुत्साही होने का इस ही को उपदेश भी मिलता है। हे प्यारे आर्य भाईयो! जरा विचारकी आंखें खोलो और अपनी और अपने देशकी दशा पर ध्यान दो और उद्योगमें लगाकर इस देशकी उन्नति करो--हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आप परोपकार स्वयम् भी करते हैं और अन्य मनुष्योंको भी परोपकारका उपदेश देते हैं परन्तु कृपा कर ऐसा उपदेश मत दीजिये जिससे इनकी उन्नतिमें बाधा पड़े वरण मनुष्यके ज्ञानकी शक्तिको प्रकट करो विचार करना, वस्तु स्वभाव खोजना और वस्तु स्वभाव जानकर उनसे नवीन २ काम बनाना सिखाओ--वेदोंके भरोसे पर मत रहो इसमें कुछ नहीं रक्खा है। यदि इस बातका आप को यकीन न आवे तो कृपाकर एकबार स्वामीजीके अर्थ सहित वेदोंको पढ़ जाइये तब आप पर सब कलई खुल जावेगी--दूसरों की ही प्रशंसा पर मत रहो कुछ जांच पड़ताल से भी काम लो--फारसी और उर्दू के

शाइरों अर्थात् कवितारों की बाबत तो यह बात प्रसिद्ध थी कि वह अपनी कविताई में असंभव गप्प मार दिया करते हैं–जैसा कि एक उर्दू कविने लिखा है--" नातवानीने बचाया आज मुझको हिज्र में ढूंढती फिरती क़ज़ा थी मैं न था "--अर्थात् प्रीतम की जुदाईमें मैं ऐसा दुबला और कृप शरीर हो गया कि मृत्यु मुझको मारनेके वास्ते आई परन्तु अपने कृप शरीर होनेके कारण मैं मृत्युको दृष्टि ही न पड़ा और मृत्युसे बचगया। प्यारे पाठको ! विचार कीजिये कविने कैसी गप्प मारी है कहीं शरीर इतना भी कृप हो सकता है कि मृत्युको भी दृष्टिगोचर न हो--इस प्रकार उर्दूके कवियोंकी गप्प तो प्रसिद्ध थी परन्तु स्वामीजीने यह गप्प इससे भी बढ़िया उड़ाई है कि सर्व प्रकारका विज्ञान मनुष्य को वेदों से ही प्राप्त होता है–बड़े २ विज्ञान की बातें जो आजकल अमरीका और जापान आदि देश के विद्वानों को मालूम हैं वह तो भला वेदोंमें कहां हैं ? परन्तु यदि मोटी२ शिक्षा भी वेदों में मिलती, जो सृष्टि की आदिमें विना मा बापके उत्पन्न हुए मनुष्य को मनुष्य बनने के वास्ते ज़रूरी है, तो भी यह कहना किसी प्रकार उचित हो जाता कि मनुष्यको सर्व शिक्षायें वेदोंही से प्राप्त हुई हैं परन्तु वेदोंमें तो इस प्रकारकी कुछ भी शिक्षा नहीं है वरन वेद शिक्षाकी पुस्तक ही नहीं है-वेद तो गीतोंका संग्रहहै और स्वामीजीने जो अर्थ इन गीतोंके किये हैं उनसे मालूम होता है कि जो गीत दूमभाट लोगोंने प्रधान पुरुषोंकी बड़ाई करके उन से दान लेनेके वास्ते जोड़ रक्खे थे वा जो गीत भंग धतूरा आदिक कोई नशेकी वस्तु पीनेके समय जिसको सोम कहते थे उस समय के लोग गाते थे वा अग्निमें होम करनेके समय गाये जाते थे वा जो गीत ग्रामीण लोग लड़ाई झगड़ेके समय लड़ाई की उत्तेजना देने और शत्रुओं को मारनेके वास्ते उकसाने के वास्ते गाते थे वा और प्रकारके गीत जो साधारण मनुष्य गाया करते थे उनका संग्रह होकर वेद बने हैं–इसी कारण एक एक विषयके सैंकड़ों गीत वेद में मौजूद हैं–यहां तक कि एक विषयके सैंकड़ों गीतोंमें विषय भी वह ही और दृष्टान्त भी वह ही और बहुतसे गीतोंमें शब्द भी वही हैं। आज कल अनेक समाचार पत्रोंमें स्वदेशीके प्रचारके वास्ते अनेक कविता छपती हैं और समाचार पत्रोंसे अलग भी स्वदेशी प्रचार पर अनेक कवितायें बनाई जातीं हैं यदि इन सब कविताओंको संग्रह करके एक पुस्तक बनाई जावे तो सर्व पुस्तकमें गीत तो सैकड़ों और हजारों होकर बहुत मोटी पुस्तक बन जावैगी परन्तु विषय सारी पुस्तकमें इतना ही निकलेगा कि अन्यदेशकी वस्तु खरीदनेसे देशका धन विदेशको जाता है और यह देश निर्धन होता

जाता है इस कारण देशकी ही वस्तु लेनी चाहिये चाहे वह अधिक मूल्य की मिले और विदेशी के मुकावले में सुन्दर भी न हो । यही दशा वेदों के गीतोंकी है । हमको आश्चर्य है कि इस प्रकार के पुस्तककी वावत स्वामी जीने किस प्रकार लिखदिया कि वह ईश्वर वाक्य है और मनुष्यों को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह इन ही के द्वारा हुआ है ? क्या स्वामीजी यह जानते थे कि कोई इनको पढ़कर नहीं देखेगा और दूरकी ही प्रशंसासे श्रद्धान ले आवगा ।

परन्तु हमारा आश्चर्य दूर हो जाता है जब हम देखते हैं कि स्वामी जी सारी ही बातें उलटी पुलटी और बेसिर पैरकी करते हैं । देखिये स्वामी जीको यह सिद्ध करना था कि सृष्टि की आदिमें ईश्वरने उन मनुष्योंको वेदोंके द्वारा ज्ञान दिया जो विना मा वापके उत्पन्न किये गये थे । आज कल जो वालक पैदा होता है वह पैदा होने पर मकान-दूकान वाजार-खाट-पीढ़ा वरतन-अन्न और अनेक वस्तु और मनुष्योंके अनेक प्रकारके काम देखता है परन्तु वह मनुष्य जो विना मा वाप के पैदा हुए होंगे वह तो विल्कुल ऐसी ही दशामें होंगे जैसा कि जंगल में पशु, इस कारण स्वामी जीको चाहिये था कि ऐसे मनुष्यको जिन जिन वातोंकी शिक्षाकी जरूरत होती है वह वातें वेदोंमें दिखलाते परन्तु उन्होंने ऐसा न करके और शेखीमें आकर अपने चेलोंको वहकानेके वास्ते इस वात के सिद्ध करनेकी कोशिश की कि उस समयमें रेल भी चलती थी और समुद्रमें जहाज़ भी जारी थे जिनमें एंजिन जुड़ते थे और आगके ज़ोरसे विमान भी आकाशमें उड़ते थे । वाह स्वामी जी वाह ! आपको शावाश है आप क्या सिद्ध करना चाहते थे और उस की सिद्धिमें कहगये वह वात जो अपनी ही वातको खण्डन करें—

इस लेखमें हम यह सिद्ध करना नहीं चाहते हैं कि स्वामीजीने किसी प्रकार वेदोंका अर्थ वदल कर उसमें रेल एंजिन जहाज़ और विमान आदि का वर्णन दिखाया है क्योंकि हमको तो इस सारे लेखमें यही सिद्ध करना है कि स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार भी वेदोंसे शिक्षा मिलती है और वेद ईश्वरका वाक्य सिद्ध होते हैं वा नहीं और वह सृष्टिकी आदिमें दिये गये वा नहीं ? हम जो कुछ लेख लिखरहे हैं वह स्वामीजीके अर्थोंको सत्य मान कर ही लिखरहे हैं और स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार सर्व वातें सिद्ध करैंगे—

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त ४६ की क्रमशः ऋचा ३-७-८ के अर्थ में इस प्रकार लिखा है—

"हे कारीगरो जो वृद्धावस्थामें वर्तमान बड़े विद्वान् तुम शिल्प विद्या पढ़ने पढ़ाने वालोंको विद्याओंका उपदेश करो तो आप लोगोंका वनाया हुआ

रथ अर्थात् विमानादि सवारी पक्षियोंके तुल्य अन्तरिक्षमें ऊपर चलें"
"हे व्यवहार करने वाले कारीगरो! जो आप मनुष्योंकी नौकासे पार जाने के लिये हमारे लिये विमान आदि यान समूहोंको युक्त कर चलाइये"
"हे कारीगरो! जो आप लोगोंका यानसमूह अर्थात् अनेक विधि सवारी हैं उनको समुद्रोंके तराने वाले में यान रोकने और बहुत जलके थाह ग्रहणार्थ लोहे का साधन प्रकाशमान बिजली अग्न्यादि और जलादि को आप युक्त कीजिये--"

इस सूक्तसे विदित होता है कि जिस समय यह सूक्त बनाया उस समय आकाशमें चलने वाले विमान और समुद्रमें चलने वाले जहाज़के बनानेवाले मौजूद थे। परन्तु ऐसे विद्वान् कारीगर अर्थात् बड़े इञ्जिनियर किस महान् कालिजमें कलोंकी विद्या को पढ़े यह मालूम नहीं होता है। इस सूक्तका यह मन गढ़न्त अर्थ तो कर दिया परन्तु स्वामीजीने यह न विचारी कि इससे हमारा सारा ही कथन असत्य होजावेगा क्योंकि जब कि वेदोंमें कलोंके बनानेकी विद्या नहीं बताई गई है और न विमान और जहाज़ के कल पुर्जे बताये गये हैं तो यह सहज ही में सिद्ध हो जावेगा कि यह सब विद्या मनुष्योंने बिना वेदों के ही सीखी और वेद सृष्टिकी आदि में नहीं बने बरन वेद उस समय बने हैं जब कि मनुष्य विमान और जहाज़ बनाना जानते थे और ऐसे महान् विद्वान् हो गये थे कि केवल इतनी बातका उपदेश देने पर कि जहाज़में आग पानी और बिजली और लोहा लगाओ वह दुखानी जहाज बनासकैं--

स्वामीजीने रेल जहाज़ तार बरकी विमान आदि का चलना अग्नि जल और बिजुली आदिकसे सुनलिया था इस कारण इतने ही शब्द वह वेदोंके अर्थोंमें ला सके परन्तु शोक इस बातका रहगया कि कलों की विद्याको स्वामीजी कुछ भी नहीं जानते थे यहां तक कि उनको यह भी मालूम नहीं था कि किस २ कल में क्या २ पुर्जे हैं और उन के क्या २ नाम हैं? नहीं तो कुछ न कुछ कल पुर्जों का ज़िकर भी वेदों में जरूर मिलता और उस समय शायद कुछ सिलसिला भी ठीक बैठजाता परन्तु अब तो रेलतार और विमान आदिकका ज़िकर आने से उनका सारा कथन ही झंठा हो गया और वेद ही ईश्वरके वाक्य न रहे

स्वामी जी ने आग और पानीसे सवारी चलाने अर्थात् रेल बनानेका वर्णन और भी कई बार वेदोंमें दिखाया है परंतु उपरोक्त शब्दोंके सिवाय और विशेष बात नहीं लिखसके हैं--

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ८७ सूक्तकी ऋचा २ के अर्थमें वह लिखते हैं--

"जो तुम्हारे रथ मेघोंके समान आकाशमें चलते हैं उन में मधुर और

निर्मल जल को अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथोंके आग और पवनके कल घरोंके समीप अच्छे प्रकार छिड़को—"

सूक्त ८८ की ऋ० २ के अर्थमें लिखते हैं—

"जैसे कारीगरीको जानने वाले विद्वान् लोग उत्तम व्यवहारके लिये अच्छे प्रकार अग्निके तापसे लाल वा अग्नि और जलके संयोगकी उठी हुई भाफोंसे कुछेक श्वेत जोकि विमान आदि रथोंको चलाने वाले अर्थात् अतिशीघ्र उनको पहुंचाने के कारण आग और पानी की कलोंके घररूपी घोड़े हैं उनके साथ विमान आदि रथकी वज्रके तुल्य पहियोंकी धारसे प्रशंसित वज्रसे अन्तरिक्ष वायुको काटने और उत्तेजना रखने वाले शूरता धीरता बुद्धिमत्ता आदि गुणोंसे अद्भुत मनुष्यके समान मार्गको हनन करते और देश देशान्तरको जाते आते हैं वे उत्तम सुखको चारो ओरसे प्राप्त होते हैं वैसे हम भी इसको करके आनन्दित होवें—"

इस अर्थके पढ़नेसे मालूम होता है कि स्वामीजीको अंगरेजोंके रेल जहाज विमान आदिकका वर्णन सुनकर उत्तेजना होती थी कि हम भी ऐसी ही कलें बनावें। वही भाव स्वामीजी का वेदोंका अर्थ करते हुये वेदों में आगया। परन्तु शोक है कि इससे यह स्पष्ट सिद्ध होगया कि वेद सृष्टि की आदिमें नहीं बने। बेशक वेदोंका इस प्रकारका अर्थ इस बातको सिद्ध करने के वास्ते काम में आ सकता है कि हिन्दुस्तानमें भी किसी समय में सर्व प्रकार की विद्या थी और रेल और जहाज आदिक जारी थे परन्तु स्वामी जी तो यह कहते हैं कि वेदों में सर्व प्रकार के विज्ञान की शिक्षा है जो सृष्टि की आदि में ईश्वर ने उन मनुष्यों को दी थी जो बिना मा बापके पैदा हुये थे और जिन्हों ने मकान वा बर्तन आदिक भी कोई वस्तु नहीं देखी वरन उनकी दशा बिलकुल ऐसी थी जैसी जङ्गली जानवरों की हुआ करती है।

स्वामी जी ने और भी कई सूक्तों में इस का वर्णन किया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०० ऋ० १६ के अर्थमें वह इस प्रकार लिखते हैं:—

"जिसका प्रकाश ही निवास है वह नीचे लाल ऊपर से काली अग्नि की ज्वाला लोह की अच्छी २ बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई वेग वाले विमान आदि यान समूह को धारण करती हुई आनन्द की देने हारी मनुष्यों के इन सन्तानोंके निमित्त धन की प्राप्ति के लिये वर्तमान है उसको जो अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है।"

इस अर्थ से यह मालूम होता है कि जिनको यह उपदेश दिया गया है वह कल बनाना तो जानते थे परन्तु उस अग्नी को नहीं जानते थे जो ऊपर से

काली और नीचे से लाल होती है। परन्तु इतना ही इशारा करने पर रेल और जहाज बनाना सीख गये।

सूक्त १११ के अर्थ में ऐसा आशय भी लिखा है। "अग्नि और जलसे कला बनावे".

"हे शिल्प कारियो हमारे लिये विमान आदिक बनाओ"

इससे तो स्पष्ट सिद्ध होगया कि पहले से कारीगर लोग विमान बनाना जानते थे। वेदों में कहीं विमान बनाने की तरकीब लिखी तो गई ही नहीं है इस हेतु वेद कदाचित् भी सृष्टि की आदि में नहीं हो सकते हैं वरण उस समय के पश्चात बने हैं जब कि विमान आदिक बनाना जान गये थे। और यदि कुल वेद उस समय में नहीं बना है तो यह सूक्त तो अवश्य ऐसेही समय का बना हुआ है।

इस ही प्रकार उक्त प्रथम मंडल के सूक्त ११६ की ऋचा १ ली और तीसरी के अर्थ में लिखा है:—

"हे मनुष्यो जैसे सच्चे पुण्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरों ने जोड़े हुवे विमान आदि रथसे जो…स्त्री के समान पदार्थों को निरन्तर एक देश से दूसरे देशको पहुंचाते हैं वैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं मार्ग…वैसे एक देश को जाता हूं".

"हे पवन…तुम शत्रुओंको मारने वाले सेनापति उन नावोंसे एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाओ।"

इससे भी सिद्ध होता है कि इस सूक्त के बनने से पहले विमान और नाव काम में लाये जाते थे परन्तु वेदों में कहीं इनके बनाने की तरकीब नहीं मिलती है।

इसही प्रकार सूक्त ११८ के अर्थों में ऐसा आशय प्रगट किया है—

"विमान से नीचे उतरो" विमान जिसमें ऊपर नीचे और बीच में तीन बन्धन हैं और बाज पखेरू की समान जिसका रूप है वह तुमको देश देशान्तर को पहुंचाते हैं।

लो साहब! इस में तो विमान बनाने की तरकीब लिखदी और हमारे आर्य्या भाई इससे विमान बनाना सीख भी गये होंगे इसके अतिरिक्त और भी कहीं २ इस ही प्रकार ऐंजन बनाना सिखाया गया है। देखिये नीचे लिखे सूक्त में जब यह बता दिया कि अग्निलाल २ होती है और रथके अगले भागमें उसको लगानी चाहिये तब रेलगाड़ी चलाना सिखाने में क्या कसर छोड़दी।

ऋग्वेद के पांचवें मंडल के सूक्त ५६ की छठी ऋचाका अर्थ इस प्रकार लिखा है—

"हे विद्वान् कारीगरो! आप लोग वाहन में रक्त गुणों से विशिष्ट घोड़ियोंके सदृश ज्वालाओंको युक्त कीजिये रथों में लाल गुण वाले पदार्थों को युक्त कीजिये और अग्रभाग में प्राप्त करने के लिये जाने वाले धारण और

आकर्षण की तथा अग्रभाग में स्थानान्तर में प्राप्त होने के लिये अत्यन्त पहुंचाने वाले निश्चय अग्नि और पवन को युक्त कीजिये ।"

गरज कहां तक लिखैं यदि स्वामी जी के अर्थ ठीक हैं तो वेदों से कदाचित् यह सिद्ध नहीं होता है कि वेद सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के उत्पन्न हुये जंगली मनुष्यों को सर्व प्रकार का विज्ञान देनेके वास्ते ईश्वर ने प्रकाशे वा इन वेदों से कुछ विज्ञान प्राप्त हो सकता है । हां यहां वेदों में ऐसी मंत्र शक्ति है कि रेलका नाम लेने से रेल बनाना आजावे और जहाज़ का नाम लेने से जहाज बनाना आजावे तो सब कुछ ठीक है । परन्तु इस में भी बहुत मुश्किल पड़ेगी क्योंकि कलों की विद्या के जानने वाले विद्वानों ने हज़ारों प्रकार की अद्भुत कलें बनाई हैं और नित्य नवीन कलें बनाते जाते हैं और वेदों में रेल और तार और जहाज और बिमान को ही नाम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार मिलता है तब यह अनेक प्रकार की कल कहां से बनगई ? समय देखनेकी घड़ी, कपड़ा सीने की चरखी, कुए में से पानी निकालने का पम्प, फोटोकी तसवीर बनाने का केमरा आदिक बहुत सी कलेंतो हिन्दुस्तानी सबही मनुष्यों ने देखी होंगीं और फोनो ग्राफ का बाजाभी सुना होगा जिस में गाने वालों के गीत भर लिये जाते हैं और वह गीत उस बाजे में उसही प्रकार गाये जाते हैं इत्यादिक बहुत प्रकार की अद्भुत कलें हैं जिनमें आग पानी, भाप, और बिजलीकी शक्ति नहीं लगाई जाती है इस प्रकार की हजारों कल हैं जिन का हम लोगोंने नाम भी सुना है और इस ही कारण स्वामी जी के अर्थ किये हुवे वेदों में भी उन का नाम नहीं मिलता है । सुतरां यदि वेदों में किसी कल का नाम आने से ही उस कल के बनाने की विद्या वेद पढ़ने वाले को प्राप्त हो जाती है तो यह हजारों प्रकार की कलें जिनका वेदों में नाम नहीं है कहां से बनगईं और सब वेदपाठी पूरे इन्जिनियर क्यों नहीं बन जाते हैं ? प्यारे भाइयो कितनी ही बातें बनाई जावैं परन्तु यह मानना ही पड़ैगा कि मनुष्य अपने बुद्धिविचार से वस्तुओं के गुणों की परीक्षा करके उन वस्तुओं को उनके गुण के अनुसार काममें लाकर बहुत कुछ विज्ञान निकाल लेता है और अनेक अद्भुत वस्तु बनालेता है वेदों ही के आकाश से उतरनेकी आवश्यकता नहीं है ।

हमें आश्चर्य इस बात का है कि किस मुंह से स्वामीजी ने कह दिया और उनके चेलों ने मान लिया कि कुल विज्ञान जो मनुष्य प्राप्तकर सक्ता है वह वेदों के ही द्वारा हो सकता है और विना वेदोंके कोई ज्ञान नहीं

हो सकता है क्योंकि संसार में अनेक विद्या वर्तमान है जिस जिस विद्या का वर्णन हमारे आर्य भाई वेदों में दिखावेंगे। एक गणित विद्या कोही देखिये कि यह कितनी बड़ी विद्या है। साधारण गणित, बीजगणित, रेखा गणित और त्रकोण गणित आदिक जिसकी बहुत शाखा है। इस विद्याके हजारों महान् ग्रन्थ हैं जिनको पढ़ते २ मनुष्य की आयु व्यतीत होजावे और विद्या पढ़ना बाकी रहजावे। हमारे पाठकों में से जो भाई सरकारी मदरसों में पढ़ चुके हैं उन्होंने उकलैदस (Euclid) [illegible] मुकाबला (Algebra) [illegible] और उस ही से उन्होंने जांच लिया होगा कि यह कैसा गहण बन है। परन्तु जो रेखा गणित स्कूलों में प ाई जात वह तो बच्चों के वास्ते आरम्भिक विद्या है इससे अधिक यह विद्या कालिजों में बी. ए. और एम, ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है और उससे भी अधिक यह विद्या एम. ए पास करने के पश्चात् वह पढ़ते हैं जो चांद सूर्य और तारों को और उन की चालको जांचते और मापते हैं। यह गणित विद्या इतनी भारी होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इस गणित विद्या को वेदों से इस प्रकार सिद्ध करतेहैं।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्वामी जी ने गणितविद्या विषय जिस प्रकार लिखा है उस सबके भाषार्थ की हम यहां नकल करते हैं।

स्वामी जी ने वेद की ऋचा लिख कर उनका भाषार्थ इस प्रकार लिखाहै।

"(एकाच मे०) इन मन्त्रों में यही प्रयोजन है कि अङ्क बीज और रेखा भेद से जो तीन प्रकारकी गणित विद्या सिद्ध की है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या है (१) सो दो वार गिनने से दो की बाचक होती है जैसे १+१=२ ऐसे ही एक के आगे एक तथा एक के आगे दो वा दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना, इसी प्रकार एक के साथ तीन जोड़ने से चार तथा तीन को तीन ३ के साथ जोड़ने से (६) अथवा तीन को तीन से गुणाने से ३×३ =९ हुए ॥ १ ॥

इसी प्रकार चार के साथ चार पांच के साथ पांच छः के साथ छः आठ के साथ आठ इत्यादि जोड़ने वा गुणाने तथा सब मन्त्रोंके आशय को फैलाने से सब गणित विद्या निकलती है जैसे पांच के साथ पांच (५५) वैसे ही पांच२ छः २ (५५) (६६) इत्यादि जान लेना चाहिये। ऐसे ही इन मन्त्रों के अर्थों को आगे योजना करने से अंकों से अनेक प्रकारकी गणित विद्या सिद्ध होती है क्योंकि इन मन्त्रोंके अर्थ और अनेक प्रकार के प्रयोगों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की गणित विद्या अवश्य जाननी चाहिये और जो कि वेदों का अंग ज्योतिष शास्त्र कहाता है उसमें भी इसी प्रकार के मन्त्रों के अभिप्राय

से गणित विद्या सिद्धकी है और अंकों से जो गणित विद्या निकलती है वह निश्चित और असंख्यात पदार्थोंमें नियुक्त होती है और अज्ञात पदार्थों की संख्या जानने के लिए जो बीजगणित होता है सो भी (एकाच मे:) इत्यादि मन्त्रों ही से सिद्ध होता है जैसे (अ+क) (अ—क) (क÷अ) इत्यादि संकेत से निकलता है यह भी वेदों ही से ऋषि मुनियों ने निकाला है और इसी प्रकार से तीसरा भाग जो रेखा गणित है सो भी वेदों ही से सिद्ध होता है (अ म आ) इस मन्त्रके संकेतों से भी बीज गणित निकलता है।

(इयंवेदिः० असि प्र०) इन मन्त्रों से रेखागणित का प्रकाश किया है क्यों कि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है जैसे तिकोन चौकोन सेन पक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है सो आर्यों ने रेखागणित ही का दृष्टान्त माना था क्योंकि (परोअन्तः पृ०) पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उन को परिधि और ऊपर से जो अन्त तक जो पृथिवी की रेखा है उसको व्यास कहते हैं। इसी प्रकार से इन मन्त्रों में आदि, मध्य और अन्त आदि रेखाओं को भी जानना चाहिये इसी रीति से तिर्यक् विषवत् रेखा आदि भी निकलती है —॥३॥ (कासी अं०) अर्थात् यथार्थ ज्ञान क्या है (प्रतिमा) जिस पदार्थों का तोल किया जाय सो क्या चीज़ है (निदानम्) अर्थात् कारण जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या चीज है (आज्यं) जगतमें जानने के योग्य सार भूत क्या है (परिधिः) परिधि किसको कहते हैं (छन्दः) स्वतंत्र वस्तु क्या है (प्र ३०) प्रयोग और शब्दों से स्तुति करने योग्य क्या है इन सात प्रश्नों का उत्तर यथावत् दिया जाता है (यद्देवा देव०) जिस को सब विद्वान् लोग पूजते हैं वही परमेश्वर प्रमा आदि नाम वाला है इन मंत्रों में भी प्रमा और परिधि आदि शब्दों से रेखा गणित साधने का उपदेश परमात्मा ने किया है सो यह तीन प्रकार की गणित विद्या आर्यों ने वेदों से ही सिद्ध की है और इसी आर्यवर्त देश से सर्वत्र भूगोल में गई है—

वाह स्वामी जी वाह ! आपने खूब सिद्ध कर दिया कि गणितकी सब विद्या संसार भर में वेदों से ही गई है—अब जिसको इस विषयमें संदेह रहै समझना चाहिये कि वह गणित विद्या को ही नहीं जानता है—परन्तु स्वामी जी हम को तो एक संदेह है कि गणित विद्या के सिखानेके वास्ते आपके परमात्माने उपरोक्त तीनचार मंत्र वेदों में क्यों लिखे सारी गणित विद्या के सीखनेके वास्ते तो एक ही मंत्र बहुत था और आपके कथनानुसार एक भी मंत्र की आवश्यकता नहीं थी वरण एक और एक दो इतना ही शब्द कह देना बहुत था इस ही से सारी गणित विद्या आजाती

हमारी समझ में तो जो लोग बी. ए. और एम. ए. तक पचासों पुस्तक गणित विद्या की पढ़ते हैं और फिरभी यह कहते हैं कि गणित विद्यामें हमने अभी कुछ नहीं सीखा उनकी बड़ी भूल है उनको उपरोक्त यह तीनचार वेदके मंत्र सुनलेने चाहिये बस इसहीसे सब गणितविद्या आजावेगी और परिपूर्ण हो जावेंगे इसही प्रकार जो विद्यार्थी स्कूल में अङ्क गणित (Arithmetic) बीज गणित अर्थात् जबर मुकाबला (Algebra) और रेखागणित अर्थात् उकलैदस (Euclid) पर रात दिन वर्षों टक्कर मारते हैं उनको शायद यह खबर नहीं होगी कि वेदोंके तीन चार ही मंत्रोंके सुननेसे सारी गणित विद्या आजाती है-यदि उनको यह खबर होजावे तो वेशक वह महान् परिश्रम से बचजावें-और इन मंत्रोंको देखकर वेशक सबको निश्चय और श्रद्धान करलेना चाहिये कि सर्व विज्ञान और सर्व विद्या वेदों ही में है और वेदों ही से अन्य देशों में गई है--मनुष्यने अपनी बुद्धि विचारसे कुछ नहीं किया है-धन्य है ऐसे वेदको जिसमें इस प्रकार संसारका सर्व विज्ञान भरा हुआ है। और धन्य है स्वामीजीको जिन्होंने ऐसे वेदोंका प्रकाश किया।

क्यों स्वामीजी! यद्यपि लोगोंने चांद सूर्य और तारागणकी विद्याको अर्थात् गणित ज्योतिषको बड़ा विस्तार दे रक्खा है और इनकी चाल जाननेकी बाबत बड़े २ महान् हजारों ग्रन्थ रचदिये हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष पंचांग अर्थात् जंत्री बनादेते हैं कि अमुक दिन अमुक तारा निकलेगा और अमुक दिन अस्त होगा और अमुक दिन अमुक समय चान्द सूर्य्यका ग्रहण होगा और इतना ग्रसैगा। परन्तु आप तो यह ही कहैंगे कि जब वेदोंमें चान्द और सूर्यकानाम आगया तो सर्व ज्योतिष विद्या वेदों में गर्भित होगई और वेदों हीसे सर्व संसार में इस विद्याका प्रकाश हुआ। धन्य है हजार वार धन्य है ऐसे वेदों को और स्वामी दयानन्दजी को।

क्यों स्वामीजी संसारमें हजारों और लाखों औषधि हैं और इन औषधियों के गुण के विचार पर अनेक महान् पुस्तकें रची हुई हैं और रोग भी हजारों प्रकारके हैं और उनके निदानके हेतु भी अनेक पुस्तकें हैं परन्तु यह विद्या भी तो वेदोंसे ही निकलीहोगी यद्यपि वेदोंमें किसी औषधिका नाम और उसका गुण और एक भी बीमारी का नाम और उसका निदान वर्णन नहीं किया गया है परन्तु क्यों स्वामीजी कहना तो यह ही चाहिये कि औषधि विद्या जितनी संसारमें है वह सबवेदों में मौजूद है और ऐसा कहने के वास्ते हेतु भी तो प्रबल है जिसका कुछ जवाब ही नहीं हो सक्ता है अर्थात् जिस प्रकार वेदों में एक और एक दो लिखा हुआ मिलने से सर्व गणित विद्या वेदों में सिद्ध होती है इसही प्रकार वेदों

में सोम पदार्थका नाम आने से जिस का अर्थ स्वामी जीने किसी किसी स्थान में औषधियोंका समूह किया है सर्वही औषधियोंका वर्णन वेदोंमें सिद्ध होगया और यह भी सिद्ध होगया कि औषधि की सब विद्या वेदोंसे ही सर्व संसार में फैली है ?

इसही प्रकार यद्यपि अन्य अनेक विद्याओं का नाम भी वेदों में नहीं है जो संसार में प्रचलित हैं परन्तु वेदों में ऐसा शब्द तो आया है कि सर्व विद्या पढ़ो या सीखो फिर कौन सी विद्या रह गई जो वेदोंमें नहीं है और कौन कहसका है कि वेदों की शिक्षाके विदून कोई विद्या किसी मनुष्यने अपनी विचार बुद्धिसे पैदा करली? इस प्रबल युक्ति से तो हम भी कायल हो गये–

आर्य भाइयो ! हिन्दुस्तान में अनेक देवी देवता पूजे जाते हैं जिन की बाबत स्वामी जी ने लिखा है और आप भी कहते हैं कि इस में अविद्या अंधकार होजानेके कारण मूर्ख लोगों को जिसने जिस प्रकार चाहा बहका लिया और पेटार्थू लोगों ने देवी देवता स्थापन करके और उनमें अनेक शक्तियां वर्णन करके जगतके मनुष्यों को अपने काबू में करलिया। एक तो वह लोग मूर्ख जो इस प्रकार बहकाये में आये और दूसरे यदि कोई देवी देवता की शक्तिकी परीक्षा करना चाहै तो पूजारियों को यह कहने का मौका कि यह देवी देवता उसही का मनोर्थ सिद्ध करते हैं जो सच्चे श्रद्धान से इनकी भक्ति और पूजाकरै तुम्हारी श्रद्धा में कुछ फरक रहा होगा जिससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ । परन्तु हे आर्य भाइयो तुम विद्यावान और लिखे पढ़े होकर किस प्रकार इन स्वामी जी के अर्थके किये हुये वेदों पर श्रद्धा ले आये और यह कहने लगे कि संसारकी सर्व विद्या वेदों हीमें भरी है तुम्हारी परीक्षाके वास्ते तो कोई देवी देवता नहीं हैं जिसकी परीक्षाके लिये प्रथम ही श्रद्धान लानेकी आवश्यक्ता हो वरण तुमको तो वेदों अर्थात् पुस्तकके मज़मून की परीक्षा करनी है जिसकी परीक्षा के वास्ते सहज उपाय उस पुस्तकका पढ़ना और उस पर विचार करना है फिर तुम क्यों परीक्षा नहीं करते हो जिससे वेदोंकी बिल्कुल बेतुकी प्रशंसा जैसी अब कर रहे हो न करनी पड़। वेदों में क्या विषय है ? यह तो हम आगे चलकर दिखावगे परन्तु यदि आप जरा भी परीक्षा करना चाहते हैं तो हम वेदोंके बनाने वालेका ज्ञान आपको दिखाते हैं:–

ऋग्वेदके पांचवें मंडलके सूक्त ४५ की सातवीं ऋचाके अर्थमें स्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है:–

"जिस से इस संसारमें नवीन गमन वाले दश चैत्र आदि महीने वर्त्तमान हैं" फिर इसही सूक्त का ११ वीं ऋचा के अर्थ में आप लिखते हैं:–

"हे मनुष्यो जिससे नवीन गमनवाले

दश महीने पार होते हैं इस बुद्धि से हम लोग विद्वानों के रक्षक होवैं और इस बुद्धिसे पाप वा पापसे उत्पन्न दुःख का अत्यन्त विनाश करैं आपकी सुख का विभाग करता है जिससे उस बुद्धि को प्राणों में मैं धारण करूं"

इसके पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदका बनाने वाला और विशेष कर इस सूक्त का बनाने वाला वर्षके दस ही महीने जानता था-इसको पढ़ कर तो हमारे आर्या भाई बहुत चौंकें गे और वेदोंको पढ़कर देखना अवश्य जरूरी समझेंगे—हम आगे चलकरवेदों से ही साफ तौर पर यह सिद्धकर देवैंगे कि वे ऐसे ही अविद्या अंधकारके समय में बने हैं और उनमें खेती कर ने वाले और गांव के गंवारोंके मामूली गीतके सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस समय तो हमको केवल यह दिखाना है कि वेद ईश्वर वाक्य हो सके हैं वा नहीं।

आर्य मत लीला।

(३)

भातृगण हो। अविद्या अन्धकार के कारण आजकल इस भारतवर्षमें अनेक ऐसी प्रवृत्ति हो रही हैं जिनसे भोले मनुष्य ठगे जाकर बहुत दुख उठाते हैं दृष्टान्त रूप विचारिये कि भंगी, चमार, कहार और जुलाहा आदिक छोटी जातियोंमें कोई २ स्त्री पुरुष ऐसा कहदिया करते हैं कि हमको किसी देवी वा देवताका इष्ट है, वह हम पर प्रसन्न है, और हम उसके भक्त हैं इस कारण जब हम उस देवी देवता का ध्यान करते हैं तो वह हमको जो पूछते हैं, सो बतादेता है-वा कोई २ ऐसा कह देते हैं कि देवी वा देवता हमारे सिर आता है और उस समय जो कोई कुछ पूछै तो वह ठीक २ बता देता है-भारतवर्ष के मूर्ख और भोले मनुष्य और विशेष कर कुपढ़ स्त्रियें ऐसे लोगोंके बहकाये में आ जाती हैं और अपने बच्चों के रोगका कारण वा अपने और कुटुम्बियों के किसी कष्ट का हेतु और उनका उपाय पूछते हैं जिस को पूछा लेना कहते हैं और बहुत कुछ भेंट देते हैं और सेवा करते हैं और वह भंगी आदिक देवी देवताके भक्त अटकलपच्चू मन घड़न्त बातें बताकर उनको खूब ठगते हैं--

दुनियांके लोग जो उनसे पूछा पूछने के वास्ते जाते हैं जानते हैं कि यह भक्त लोग साधारण और छोटे मनुष्यों में हैं और अपने नित्यके व्यवहार में ऐसे ही मूर्ख हैं जैसे इनके अन्य भाई बन्धु और आचरण भी इन के ऐसे ही हैं जैसे इनके अन्य भाई बन्दोंके, परन्तु उन पर श्रद्धा रखने वाले लोग कहते हैं कि हम को इनकी बुद्धि और आचरणकी जांच तो तब करनी होती जब यह भक्त लोग यह कहते कि हमको इतना ज्ञान हो गया है कि गुप्त बात बतावें--पर यह तो ऐसा नहीं कहते हैं वह तो यह ही कहते हैं कि हम को तो कुछ भी ज्ञान

नहीं है, जो कुछ गुप्त वार्ता हम बताते हैं वह तो हमारे इष्टदेवी देवताका ज्ञान है अर्थात् वह देवी देवता इन अपने भक्तों के द्वारा गुप्त वार्ता बता देता है—इस हेतु चाहे यह भक्त लोग इस से भी अधिक मूर्ख हों यहां तक कि चाहे वह पागल और जंगली पशुओं के समान अज्ञान हों तो भी हम को क्या ? वह गुप्त शक्ति अर्थात् देवी देवता जो इनके द्वारा हमारी गुप्त बात बताते हैं उन को तो तीन काल का ज्ञान है—यह भक्त लोग तो हमसे वार्तालाप होनेके वास्ते एक निमित्त मात्र के समान हैं—इस कारण हम को इन भक्तोंकी किसी प्रकार की परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है—चाहे यह कैसे ही पापी और अधम हों और चाहे कैसे ही मूर्ख हों इससे हमारे प्रयोजन में कुछ फ़रक़ नहीं आता है—

प्यारे भाइयो ! यह सब अन्धकार जो भारतमें फैला हुआ है जिसके कारण हमारे भोले भाई और भोली बहनें ठगी जाती हैं और जिससे अनेक उपद्रव पैदा होते हैं—जिस के कारण बच्चोंके रोगोंकी औषधि नहीं होती है, योग्य वैद्यों और हकीमोंसे उनका इलाज नहीं होता है, जिस के कारण अनेक बच्चे मृत्यु को प्राप्त होते हैं—जिस के कारण भक्तों की बताई हुई बातोंसे घरोंमें भारी कलह और बड़े २ द्वेष फैल जाते हैं—जिस के कारण उच्च कुलकी स्त्रियों को बड़े बड़े नीच और अधम कार्य करने पड़ते हैं उस का हेतु एक यह ही है कि भारत के लोगोंके चित्तमें यह श्रद्धान घुसा हुआ है कि भूत भविष्यत और वर्त्तमानका ज्ञान रखने वाली शक्ति किसी मनुष्य के द्वारा अपना ज्ञान किसी विषय में प्रकट कर सक्ती है। यदि यह श्रद्धान हमारे भाइयों के हृदयमेंसे हटजावे तो भारतवर्ष में से यह सब अंधकार मिट जावे और इन भक्तों की कुछ भी पूछ न रहे। क्योंकि फिर जो कोई गुप्त वार्ता बताने का दावा करे वह अपने ही ज्ञानके आश्रय पर करे और किसी गुप्त शक्ति के आश्रय पर कोई बात न हो सके और जब कोई यह कहे कि मुझको इतना ज्ञान हो गया है कि मैं गुप्त बात बता सक्ता हूं तो उसकी परीक्षा बहुत आसानी से हो सके क्योंकि अपने नित्यके व्यवहारमें भी उस को अपने आपको इतना ही ज्ञानवान दिखाना पड़े कि जिससे उसका तीन काल की बातका जानना सिद्ध होता हो अर्थात् फिर धोका न चल सके।

प्यारे भाइयो ! सच पूछिये तो इस सिद्धान्त ने कि तीन काल की बात जानने वाली गुप्त शक्ति अपने ज्ञानको किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सक्ती है, केवल यही अंधकार नहीं फैलाया है वरण संसार के सैकड़ों जितने मत मतांतर फैले हैं वह सब इस ही सिद्धान्त के सहारे फैले हैं, क्योंकि जब जब कोई किसी नवीन मत का स्थापन क-

रने वाला हुआ है उसने यही कहा है कि मैं अपने ज्ञान से कुछ नहीं कहता हूं वरण मुझको यह सब शिक्षा जिस का मैं उपदेश करता हूं परमेश्वरसे प्राप्त हुई है।

मुसलमानी मतके स्थापन करनेवाले मुहम्मद साहब की निस्वत कहा जाता है कि वह बिना पढ़े लिखे साधारण बुद्धिके आदमी थे परन्तु उनके पास परमेश्वरका दूत परमेश्वरके वाक्य लाता था जिसका संग्रह होकर क़ुरान बना है--परमेश्वर के इन ही वाक्योंका उप देश मुहम्मद साहब अरब के लोगोंको दिया करते थे--ईसामसीह और इनसे पहले जो पैगम्बर हुये हैं उनके पास भी परमेश्वर की ही आज्ञा आया करती थी इस ही प्रकार अन्य मत मतांतरों का हाल है--हाल में भी पंजाबदेश के कादियान नगरमें एक मुसलमान महाशय मौजूद हैं जिनके पास परमेश्वरकी आज्ञा आती है और इस ही कारण भारत वर्षके हजारों हिन्दू मुसलमान उन पर श्रद्धा रखते हैं--

प्यारे आर्य भाइयो। उपर्युक्त लेखसे आपको पूर्णतया विदित हो गया कि यह सिद्धान्त कि तीन काल का ज्ञान रखने वाली शक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सकती है, कैसा भयंकर और अंधकार फैलाने वाला है और इसके कारण अनेक मत मतान्तर फैलानेसे संसारमें कैसा उपद्रव मचा है।। परन्तु कृपाकर विचार कीजिये कि यह सिद्धान्त पैदा कहांसे हुआ। इस प्रश्नके उत्तरमें प्यारे भाइयो आपको यह ही कहना पड़ेगा कि वेदोंसे क्योंकि सब मत मतान्तरोंके स्थापित होनेसे पहले वेदों ही का प्रकाश होना बयान किया जाता है और वेदोंकी ही उत्पत्तिमें यह सिद्धान्त स्थापित किया जाता है कि परमेश्वरने सृष्टिकी आदि में हज़ारों मनुष्यों को बिना मा बाप के पैदा करनेके पश्चात् उनमेंसे चार मनुष्योंको जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा था एक एक वेद का ज्ञान दिया और उन्होंने उस ईश्वरके ज्ञान को मनुष्यों पर प्रकट करदिया--प्यारे भाइयो। आप जैसे बुद्धिमानोंको जो भारतवर्षका अंधकार दूर करना चाहते हैं ऐसा सिद्धान्त मानना योग्य नहीं है वरन आपको इस का निषेध करना चाहिये जिससे इस देशके बहुत उपद्रव दूर हो जावें--

इस स्थान पर हम बड़े गौरवके साथ यह प्रकट करते हैं कि यह केवलमात्र

जैनमत के ही तीर्थंकर हुए हैं

जिन्होंने इस सिद्धान्तका आश्रय नहीं लिया है जिन्होंने तप और ध्यान के बलसे अपनी आत्मासे मोह आदिक मैल को धोकर आत्माकी निज शक्ति अर्थात् पूर्णज्ञानको प्राप्त किया है और अपनेकेवल ज्ञानके द्वारा चराचर सर्व वस्तुओंको पूर्णरूप जानकर अपनी ही सर्वज्ञताका नाम लेकर सत्यधर्मका प्रकाश किया है--और किसी दूसरेके ज्ञानका आश्रय

नहीं बताया है--अर्थात् उन्होंने मनुष्योंको मौका दिया है कि वह उनकी सर्वज्ञताकी सर्व प्रकार परीक्षा करलेवें और तब उनके उपदेश पर श्रद्धा लावें अन्य मत स्थापन करने वालोंकी तरहसे उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं जो कुछ कहता हूं वह ईश्वरके वाक्य हैं मैं स्वयम् कुछ नहीं जानता हूं इस कारण इन ईश्वर वाक्योंके सिवाय मेरी अन्य बातोंकी परीक्षा मत करो क्योंकि मैं तुम्हारे ही जैसा साधारण मनुष्य हूं--

भाइयो ! जैनधर्म में जो तत्वार्थ वर्णन किया गया है वह इस ही कारण वस्तु स्वभावके अनुकूल है कि वह सर्वज्ञ का कहा हुआ है--आत्मीक ज्ञान, कर्मोंके ज्ञान, कर्मों के भेद, उन की उत्पत्ति बिनाश और फल देनेकी फिलासफी अर्थात सिद्धान्त इस ही हेतु जैन धर्ममें बड़े भारी विस्तार के साथ मिलता है कि यह ज्ञान सर्वज्ञको ही हो सकता है न कि गुप्त शक्तिके ज्ञान पर आश्रय करने वालेको--

हे प्यारे आर्य भाइयो ! यह भयंकर और अन्धकार फैलाने वाला सिद्धान्त कि, कोई ज्ञानवान गुप्तशक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकाश कर सकती है, यदि आपको मानना भी था तो किसी कार्यकारी बातके ऊपर माना होता परन्तु वेदोंको ईश्वरके वाक्य सिद्ध करनेके वास्ते ऐसे सिद्धान्तका स्थापित करना तो ईश्वरकी निन्दा करना है क्योंकि वेद तो गीतोंका संग्रह हैं वह शिक्षाकी पुस्तक कदाचित् नहीं हो सकती है । कृपाकर आप इस सिद्धान्त को स्थापित करनेसे पहले स्वामी जीके अर्थ किये हुये वेदों को पढ़ तो लेवें और उन की ज़रा जांच तो कर लेवें कि ऐसे गीत ईश्वर वाक्य हो भी सकते हैं या नहीं--प्यारे भाइयो ! जब आप ज़रा भी वेदोंको देखेंगे तो आपको मालूम हो जावेगा कि वेदोंमें साधारण सांसारिक मनुष्यों के गीतों के सिवाय और कुछ भी नहीं है वेदोंमें धार्मिक और सिद्धान्तका कथन तो क्या मिलेगा उसमें तो साधारण ऐसी भी शिक्षा नहीं मिलती है जैसी मनुस्मृति आदिक पुस्तकोंमें मिलती है देखिये क्या निम्न लिखित वाक्य ईश्वरके हो सकते हैं ? ॥

ऋग्वेद मंडल सातवां सूक्त २४ ऋचा २

" हे परमैश्वर्यके देनेवाले जो नाना प्रकारकी विद्या युक्त वाणी और सुन्दर चालढाल जिसकी ऐसी यह प्रिया स्त्री परमैश्वर्य देनेवाले पुरुषको निरन्तर बुलाती है उसको धारण करती है जिसने तेरा मन ग्रहण किया तथा जो दोसे अर्थात् विद्या और पुरुषार्थसे बढ़ता वह उत्पन्न किया हुआ (सोम) औषधियोंका रस है [सोमकी बावत् हम आगे सिद्ध करेंगे कि यह भंग आदिक नशोंकी कोई वस्तु होती थी जिसके पीनेका उपदेश वेदोंमें बहुत मिलता है] और जहां सब ओरसे सींचे हुये दाख वा शहत आदि पदार्थ हैं उन्हें सेवो--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋचा ६-८

" हे मोटी २ जंघाओं वाली जो अ-

तिप्रेमसे विद्वानों की बहन है सो तू मैंने जो सब ओरसे शोभा है उस देने योग्य द्रव्यको प्रीतिसे सेवन कर–"

" हे पुरुषो जैसे मैं जो शुक्र शुक्र बोले वा जो प्रेमास्पदको प्राप्त हुई जो पौर्णमासीके समान वर्त्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमाकी पूर्णकान्तिसे युक्त पौर्णमासी होती है वैसी पूर्ण कान्तिमती और जो विद्या तथा सुन्दर शिक्षा सहित वाणीसे युक्त वर्त्तमान है उस परमैश्वर्य युक्तको रक्षा आदिके लिये बुलाता हूं उस श्रेष्ठकी स्त्रीको सुखके लिये बुलाता हूं वैसे तुम भी अपनी २ स्त्री को बुलाओ–"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२३ ऋचा १०-१३

" हे कामना करने हारी कुमारी जो तूं शरीर से कन्या के समान वर्त्तमान व्यवहारोंमें अतितेजी दिखाती हुई अत्यंत संग करते हुए विद्वान् पति को प्राप्त होती और सम्मुख अनेक प्रकार सद्गुणोंसे प्रकाशमान जवानीको प्राप्त हुई मन्द मन्द हंसती हुई छाती आदि अंगोंको प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात वेलाकी उपमाको प्राप्त होती है–"

"हे प्रातः समय की वेला सी अलबेली स्त्री तूं आज जैसे जलकी किरण को प्रभात समयकी वेला स्वीकार करती वैसे मनसे प्यारे पतिको अनुकूलतासे प्राप्त हुई हम लोगोंमें अच्छी २ बुद्धि व अच्छे अच्छे कामको धर और उत्तम सुख देने वाली होती हुई हम लोगों को ठहरा जिससे प्रशंसित धन वाले हम लोगों में शोभा भी हो–"

ऋग्वेद प्रथम मंडलसूक्त १७९ ऋचा ४

"इधर से वा उत्तर से वा कहीं से सब ओर से प्रसिद्ध वीर्य रोकने वा अव्यक्त शब्द करने वाले वृषभ आदि का काम मुझ को प्राप्त होता है अर्थात् उनके सदृश काम देव उत्पन्न होता है और धीरज से रहित वा लोप हो जाना लुकि जाना ही प्रतीत का चिन्ह है जिसका सो यह स्त्री वीर्यवान धीरज युक्त श्वासें लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुषको निरन्तर प्राप्त होती और उससे गमन भी करतीहै-"

प्यारे पाठको ! वेदों में कोई कथा नहीं है किसी एक स्त्री वा पुरुष का वर्णन नहीं है वरण अनेक पृथक् पृथक् गीत हैं तब किसी विशेष स्त्रीका कथन क्यों आया कथारूप पुस्तकों में तो इस प्रकार के कथन आने सम्भव हैं परन्तु ऐसी पुस्तकमें जिसकी बावत यह कहा जाता है कि उस पुस्तक को ईश्वर ने सर्व मनुष्यों को ज्ञान और शिक्षा देने के वास्ते बनाया ऐसा कथन आना असम्भव ही है--यदि हमारे भाई वेदों को पढ़कर इस प्रकार के कथनों की संगति मिला कर दिखा देवें तब वेशक हमारा यह ऐतराज हट जावै नहीं तो स्पष्ट विदित है कि जिस बात पर कविताई करते समय कवियोंका ध्यान गया उस ही बात का गीत जोड़ दिया इस प्रकार वेदों के गीतों में कवियोंने अनेक कविताई की है। कविताओं के धनुषकी तारीफमें इसप्रकार गीत हैं:–

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७५ ऋचा ३ "हे शूरवीर जो यह प्रत्यञ्चा अर्थात् धनुष की तांति जैसे विदुषी (विद्वान् स्त्री) कहने वाली होती वैसे अपने प्यारे मित्र के समान वर्तमान पतिको सब ओर से संग किये हुए पत्नी स्त्री कानको निरंतर प्राप्त होती है वैसे धनुष के ऊपर विस्तारी हुई तांति संग्राम में पार को पहुंचाती हुई गूंजती है उसहीको तुम यथावत् जानकर उसका प्रयोग करो— ऋचा ५

हे मनुष्यो बहुत बाणों की पालना करने वाले के समान इसके बहुत पुत्रके समान बाण संग्रामों को प्राप्त होकर धनुष चींचीं शब्द करता है तथा पीठ पर नित्य बंधा और उत्पन्न होता हुआ समस्त संग्रामस्थ वैरियोंकी टोली और सेनाओंको जीतता है वह तुम लोगों को यथावत् बनाकर धारण करना चाहिये—"

प्रभात वेला अर्थात् सुबहके समयकी प्रशंसामें वेदोंके कवियों ने इस प्रकार गीत बनाये हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ ऋचा ७-९ "यह प्रातः समय की वेला प्रत्येक स्थान को पहुंचती हुई बिन भाई की कन्या जैसे पुरुषको प्राप्त हो उसके समान वा जैसे दुःखरूपी गढ़ेमें पड़ाहुआ जन धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊंचे नीचे पदार्थोंको पहुंचती तथा अपने पतिके लिये कामना करती हुई और सुन्दर वस्त्रों वाली विवाहिता स्त्री के समान पदार्थोंका सेवन करती और हंसती हुई स्त्री के तुल्य रूप को निरन्तर प्राप्त होती है"

"जैसे इन प्रथम उत्पन्न जेठी बहिनियों में अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन किन्हीं दिनों में अपनी जेठी बहिन के आगे जावे और पीछे अपने घर को चली जावे वैसे जिन से अच्छे अच्छे दिन होते वे प्रातः समय की वेला हम लोगोंके लिये निश्चय युक्त जिसमें पुरानी धन की धरोहर है उस प्रशंसित पदार्थ युक्त धनको प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश को करें ये अन्धकारको निराला करें—"

पवनकी प्रशंसा में कविताई

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋचा ८ "हे विद्वानों जब पवन मेघोंमें हुई गर्जना रूपवाणीको प्रेरणा देते अर्थात् बद्दलों को गर्जाते हैं तब नदियां वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुलीकी लपट झपटोंसे शोभित होती हैं और जब पवन मेघोंके जल वर्षाते हैं तब बिजुलियां भूमि पर मुसुकियाती सी जान पड़ती हैं वैसे तुम होओ।"

प्रिय पाठको! हम इस समय इस बातकी बहस नहीं करते हैं कि वेदों में क्या २ विषय और क्या क्या मज़मून हैं इस को हम आगामी लेख में प्रकट करेंगे इस समय तो हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि यदि परमेश्वर उन पुरुषोंको जो बिना मा बापके जंगल बयाबान में उत्पन्न हुये थे, जो

किसी प्रकार की भी भाषा नहीं जानते थे कुछ ज्ञान वा शिक्षा देता तो क्या कवितार्ई में शिक्षा देता और कवितार्ई भी सिलसिलेवार नहीं वरन पृथक २ गीतों में, और गीत भी एक एक ही विषय के सैकड़ों और गीतोंका भी सिलसिला नहीं कि एक बातकी शिक्षा देकर उस बात के उपरान्त जो दूसरी बात सिखाने योग्य हो दूसरा गीत उस दूसरी बातका हो वरण वेदों में तो स्वामीजी के अर्थोंके अनुसार यह गीत ऐसे बिना सिलसिले के हैं कि यदि एक गीत अग्नि की प्रशंसा में है तो दूसरा स्त्रीके विषय में और तीसरा राजाकी स्तुति में और चौथा वायुकी प्रशंसा में और पांचवां संग्राम करने और शस्त्रोंसे वैरीको मारने काटनेके विषय में और छठा सोम पीने के उपदेश में और फिर राजा की स्तुति में और फिर अग्नि की प्रशंसा में और फिर सोमपान के विषय में और फिर वायु की प्रशंसा में गरज इसही प्रकार हजारों गीतोंका बेतुका सिलसिला चला गया है और जिस विषय का जो गीत मिलता है उसमें बहुधा यार वह ही बात होती है जो उस विषयके पहले गीतों में थी यहां तक कि एक विषय के बहुत से गीतों में एक ही दृष्टान्त और एक ही प्रकार के शब्द मिलते हैं—हमको शोक है तो यह है कि हमारे आर्या भाई वेदोंको पढ़कर नहीं देखते हैं वरण वेदोंके नामसे ही तृप्त हो जाते हैं और उनको ईश्वर वाक्य कहते हैं—यदि वह वेदोंको पढ़ें तो अवश्य उनको ज्ञान प्राप्त हो और अवश्य उनके हृदय का यह अंधकार दूर हो ।

॥ आर्यमत लीला ॥

(४)

वेदोंके प्रत्येक गीतको सूक्त कहते हैं और इन गीतोंकी प्रत्येक कलीको ऋचा कहते हैं-स्वामीजीके अर्थके अनुसार वेदोंका मज़मून इतना असंगत है कि प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीतके मज़मूनका ही सिलसिला मिलता हुआ नहीं है वरण एक सूक्तकी ऋचाओंका भी मज़मून सिलसिलेवार नहीं मिलता है अर्थात् एक ऋचा एक विषयकी है तो दूसरी ऋचा बिल्कुल दूसरे विषय की, फ़ारसी व उर्दू में जो कवि लोग ग़ज़ल बनाया करते हैं उन ग़ज़लोंमें तो बेशक यह देखने में आता है कि कवि को इस बातका ध्यान नहीं होता है कि एक ग़ज़ल की सब शेरें एक ही विषय की हों वरन उसका ध्यान इस ही बात पर होता है कि एक ग़ज़ल की सब शेरोंकी एकही तुक हो अर्थात् रदीफ़ और क़ाफ़िया एक हो परन्तु संस्कृत और हिन्दीकी कवितार्ईमें ऐसी बात देखने में नहीं आई—यह बात स्वामी जी के अर्थ किये हुये वेदों ही में मिलती है कि एक ही राग अर्थात् एक ही सूक्तकी प्रत्येक ऋचा अर्थात् कली का एक दूसरेसे बिलकुल ही विषय है॥

हमारे आर्या भाइयोंका यह श्रद्धान है कि वेदोंमें मुक्ति आदिक धर्मके विषय तो अवश्य कथन किये होंगे। यद्यपि वेदोंमें ऐसा कथन तो वास्तव में नहीं है परन्तु हमने ढूंढढांड कर एक सूक्त की ऐसी ऋचा तलाशकी है जिसमें मुक्ति शब्द को, अर्थ लिखते हुये जिस तिस प्रकार लिख ही दिया है उसका अर्थ स्पष्ट खुलनेके वास्ते हम वेदोंके शब्दों सहित उसको स्वामीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४० ऋचा ५.

"(यत्) जो (कृष्णम्) काले वर्ण के (अभ्वम्) न होने वाले (महि) बड़े (वर्पः) रूप को (ध्वसयन्तः) विनाश करते हुए से (करिक्रतः) अत्यंत कार्य करने वाले जन (वृथा) मिथ्या (प्रेरते) प्रेरणा करते हैं (ते) वे (अस्य) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो (महीम्) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी को (अभि, मर्मृशत्) सब ओर से अत्यन्त सहता (अभिश्वसन्) सब ओर से श्वास लेता (नानदत्) अत्यंत बोलता और (स्तनयन्) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों को (सीम्) सब ओर से (एति) प्राप्त होता है (आत्) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होताहै-"

वाह वाह क्या विलक्षण सिद्धान्त स्वामी जी ने वेदों में दिखाया है कि जो मनुष्य काले रंगका है उसकी मुक्ति नहीं हो सकती है और जो बहुत बोलता और गरजता है उसकी मुक्तिहो जाती है-सारे वेद में ढूंढ ढांडकर एक तो ऋचा मिली पर उस में भी अनोखाही मुक्तिका स्वरूप स्थापित किया गया परन्तु इस समय इस लेख में तो हमको यह नहीं दिखाना है कि मुक्ति का स्वरूप क्या होना चाहिये था वरण इस समय तो यह कथन आरहा है कि वेदों की एक सूक्तकी प्रत्येक ऋचा का भी विषय नहीं मिलता है वरण एकही सूक्त की एक ऋचा में कुछ है और दूसरी में कुछ और इस ही सूक्त की छठी ऋचा को स्वामी जी के अर्थ के अनुसार देखिये वह इस प्रकार है:-

"जो अलंकृत करता हुआ साधर्मकी धारणा करने वालियोंमें अधिक नम्र होता वा यज्ञ संबंध करने वाली स्त्रियों को अत्यन्त बात चीत कह सुनाता वा बैल के समान बलको और दुख से पकड़ने योग्य भयंकर सिंह सींगों को जैसे वैसे बलके समान आचरण करता हुआ शरीर को भी सुन्दर शोभायमान करता वा निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे चेष्टा करता वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है-"

इस ही सूक्त नं० १४० की सातवीं ऋचा के अर्थ को देखिये वह इस प्रकार है:-

"हे मनुष्यो जैसे वह अच्छा ढांपने वा सुख फैलाने वाला विद्वान् सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता वैसे जानता हुवा नित्य मैं ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के ही पास सोता हूं। जो माता

पिता के और विद्वानों में प्रसिद्ध रूप को निश्चयसे प्राप्त होते हैं वे वार बार बढ़ते हैं और उत्तम उत्तम कार्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी मिला हुवा काम किया करो"–

प्यारे भाइयो! विचार कीजिये कि इस सूक्त अर्थात् गीत को उपर्युक्त पांचवीं छठी और सातवीं ऋचा अर्थात् कली का विषय मिलता है वा नहीं? बुद्धिमानो! यदि आप स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदको पढ़ेंगे तो आप को विदित हो जावेगा कि इस उपर्युक्त ऋचाओं का विषय तो शायद कुछ मिलता भी है परन्तु ऐसे सूक्त बहुत हैं जिन की ऋचाओं का विषय बिल्कुल नहीं मिलता है–इस कारण वेद कदाचित् ईश्वर वाक्य नहीं हो सकते हैं–

वेदों के पढ़नेसे यह भी प्रतीत होता है कि वेदोंके प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीत अलग अलग मनुष्यों के बनाये हुवे हैं। यदि एक ही मनुष्य इन गीतों को बनाता तो एक एक विषय के सैकड़ों गीत न बनाता और वेदों का कथन भी सिलसिलेवार होता-स्वामी जी के लेख से भी जो उन्हों ने सत्यार्थप्रकाशमें दिया है यह विदित होता है कि वेदका प्रत्येक गीत पृथक् पृथक् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध है–और प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतके साथ उस गीतके बनाने वाले का नाम भी लिखा चला आता है इस विषय में स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाशके सातवें समुल्लासमें इस प्रकार लिखते हैं:–

"जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इस लिये अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है जो कोई ऋषियों को मंत्र कर्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं–"

हम को शोक है कि इस लेख को लिखते समय स्वामी जी को पूर्वापर का कुछ भी ध्यान न रहा यह बात भूल गये कि हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं? स्वामी जी आप ही तो यह कहते हैं कि वेदों को ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में उन मनुष्योंके ज्ञान के वास्ते प्रकाश किया जो सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के जंगल बयाबान में पैदा किये गये थे और जो किसी बात का भी ज्ञान नहीं रखते थे-क्या ऐसे मनुष्यों की शिक्षा के वास्ते ईश्वर ने ऐसा कठिन वेद दिया जिस का अर्थ सब लोग नहीं समझ सकते थे? बरण वह यहां तक कठिन थे कि उस वेदके एक एक मंत्र का अर्थ समझने के वास्ते कोई कोई ऋषि पैदा होता रहा और जिस किसी ऋषि ने एक मंत्र का अर्थ भी प्रकाश कर दिया वह वेद का मंत्र उस ही ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हो गया स्वामी जी का यह कथन वेदों के

मानने वाले पुरुषों को कदाचित् भी माननीय नहीं हो सकता है क्योंकि इस से वेदों का सृष्टि की आदि में उत्पन्न होना खंडित होता है इस कारण यह प्राचीन लेख ही सत्य है कि वेदके प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतको प्रत्येक ऋषि ने बनाया है और इन सब गीतोंका संग्रह होकर वेद बन गया है इन ऋषियों को यदि हम धार्मिक ऋषि न कहैं वरण कवि कहैं तो कुछ अनुचित नहीं है क्योंकि कवि लोग साधारण मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान् समझे जाया करते हैं आज कल भी जो लोग स्वांग बनाने की कविता करते हैं वह उस्ताद कहलाये जाते हैं और स्वांग बनाने वालों के चेले स्वांग बनाने वाले उस्तादोंकी बहुत प्रशंसा किया करतेहैं-

हे आर्य भाइयो! स्वामी जी ने यह तो कह दिया कि ईश्वरने मनुष्योंको सृष्टि की आदिमें वेदोंके द्वारा ज्ञानदिया परन्तु यह न बताया कि वेदोंकी भाषा समझनेके वास्ते उन मनुष्योंको वेदोंकी भाषा किसने सिखाई? स्वामीजीका तो यह ही कथन है कि भाषा मनुष्य अपने आप नहीं बना सकता है वरण ईश्वर ही उन को भाषा सिखाता है तब वेदों के प्रकाश से पहले ईश्वर ने किसी मनुष्य का रूप धारण करके ही उन मनुष्योंको भाषा सिखाई होगी। क्योंकि वेदों में तो भाषा सीखने की कोई विधि नहीं है वरण वेदोंमें तो प्रारम्भ से अन्ततक गीत ही गीत हैं-

प्यारे भाइयो! स्वामीजीका कोई भी कथन इस विषय में सत्य नहीं होता है क्योंकि आप जानते हैं कि संसारमें हजारों और लाखों प्रकार के वृक्ष हैं और मनुष्यों द्वारा पृथक् २ वृक्ष का पृथक् २ नाम रक्खा हुआ है परन्तु वेदोंमें दश पांच ही वृक्षोंका नाम मिलेगा-संसारमें हजारों और लाखों प्रकारके पशु और पक्षी हैं और अलग अलग सबका नाम मनुष्योंकी भाषामें है परन्तु वेदोंमें दस बीसका ही नाम मिलैगा। संसार में हजारों प्रकार की औषधि हजारों प्रकार के औजार हजारों प्रकारकी वस्तु हैं और मनुष्यों ने सब के नाम रख रक्खे हैं और जो नवीन वस्तु बनाते जाते हैं उसका भी नाम अपनी पहचान के वास्ते रखते जाते हैं। परन्तु इनमेंसे बीस तीस ही वस्तुके नाम वेदमें मिलते हैं। तो क्या अनेक वस्तुओं के नाम मनुष्यों ने अपने आप नहीं रख लिये हैं और क्या इस ही प्रकार मनुष्य अपनी भाषा नहीं बना लेते हैं। यदि ऐसा है तो फिर आप क्यों स्वामी जी के इस कथन को मानते हैं कि बिना वेदों के मनुष्य अपनी भाषा भी नहीं बना सकता है?

हम अपने आर्य भाइयों से पूछते हैं कि संस्कृत भाषा सब से श्रेष्ठ और उत्तम भाषा है या नहीं और गंवारू भाषा का संस्कार करके अर्थात् शुद्ध करके ऋषियों ने इसको बनाया है या

नहीं ? । इन बातों के सिद्ध करने के वास्ते तो आप को किसी भी हेतु की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि आप स्वयम् संस्कृत भाषा की प्रशंसा किया करते हैं और संस्कृत शब्द काही वह अर्थ होता है कि वह संस्कारकी हुई है अर्थात् शुद्ध की हुई है। परन्तु प्यारे भाइयो आप यह भी जानते हैं कि वेदोंकी भाषा संस्कृत भाषा नहीं है वरण संस्कृत से बहुत मिलती जुलती है और यह भी आप जानेंगे कि वदोंकी भाषा पहली है और संस्कृत भाषा उसके पश्चात् बनी है अर्थात् वेदोंकी भाषा कोही संस्कार करने अर्थात् शुद्ध करने से संस्कृत नाम पड़ा है। अर्थात् संस्कृतसे पहले भाषा गंवारूथी जिसको शुद्ध करके ऋषियों ने मनोहर और सुन्दर संस्कृत भाषा बनाई है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों की भाषा गंवारू है और वेद की भाषा और संस्कृत भाषा में इतना ही अन्तर है जितना गांवके मनुष्यों की और किसी बड़े शहर की भाषा में अंतर होता है। यदि वेदोंकी भाषा गंवारू भाषा न होती तो वह ऋषि जन जिनको शुद्ध मनोहर संस्कृत भाषा बनाने की आवश्यक्ता हुई वह संस्कृत भाषा सुन्दर और मनोहर होती तो वेदों की ही भाषाका प्रचार करते परन्तु स्वामी जीके कथनानुसार वेदकी भाषा को तो ईश्वर की भाषा कहना चाहिये तो क्या मनुष्य ईश्वर से भी उत्तम भाषा बना सक्ता है यदि नहीं बना सक्ता है तो ऋषियोंने क्यों संस्कृत बनाई और क्यों आप लोग संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हैं ? बरण उन ऋषियों को मूर्ख और ईश्वर विरोधी कहना चाहिये जिन्होंने ईश्वर की भाषा को नापसन्द करके और उसका संस्कार करके अर्थात् उसमें कुछ उलट पलट करके संस्कृत भाषा बनाई। परन्तु ऐसा न कह कर यह ही कहना पड़ेगा कि वेद ईश्वर का वाक्य नहीं है और वेदों की भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है। हम यह नहीं कहते हैं कि गंवारों और मूर्खोंको समझानेके वास्ते विद्वान् लोग उन मूर्खों की भाषा में उपदेश नहीं कर सकते हैं वरण हमतो इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मूर्खों और गंवारों को उन की ही गंवारू बोली में उपदेश देना चाहिये जिससे वह उपदेश को अच्छे प्रकार समझ सकैं परन्तु जिस समय स्वामी जी के कथनानुसार ईश्वर ने वेदप्रकाश किए उस समय तो कोई भाषा प्रचलित नहीं थी जिस में अपना ज्ञान प्रकाश करने के वास्ते ईश्वर मजबूर होता वरण उस समय तो सृष्टि की आदि थी और आर्या भाइयों के कथन के अनुसार उस समय के मनुष्य कोई भाषा नहीं बना सकते थे इस कारण उन को जो भाषा सिखाई वह ईश्वने ही सिखाई। वह भाषा जो इस प्रकार सृष्टिकी आदिमें सिखाई वह वेदों

भी ही भाषा हो सकती है नकि कोई और भाषा। परन्तु वेदों की भाषाको तो विद्वान् ऋषियोंने नापसन्द किया और उस को शुद्ध करके संस्कृत बनाई। तब क्यों ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में ऐसी भाषा दी जिसको शुद्ध करना पड़ा। इससे स्पष्ट सिद्ध होगया है कि वेदोंकी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है बरण ग्रामीण कवियोंने अपनी गंवारू भाषामें कविता की है जिसका संग्रह होकर वेद बन गये हैं ॥

वेदकी भाषाके विषयमें स्वामीजीने एक अद्भुत प्रपंच रचा है वह सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं॥

"(प्रश्न) किसी देश भाषामें वेदों का प्रकाश न करके संस्कृतमें क्यों किया?"

"(उत्तर) जो किसी देश भाषामें प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देशकी भाषामें प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियोंको कठिनता वेदोंके पढ़ने पढ़ानेकी होती इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देशकी भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओंका कारण है उसीमें वेदोंका प्रकाश किया। जैसे ईश्वरकी पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालोंके लिये एकसी और सब शिल्पविद्याका कारण है वैसे परमेश्वरकी विद्याकी भाषा भी एक सी होनी चाहिये कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और सब भाषाओंका कारण भी है॥"

वाह! स्वामी दयानन्दजी! धन्य है आपको! क्या आपका यह आशय है कि जिस समय ईश्वरने वेदोंको प्रकाश किया उस समय पृथिवीके सब देशोंमें इस ही प्रकार भिन्न भिन्न भाषा थी जिस प्रकार इस समय अनेक प्रकारकी भाषायें प्रचलित हो रही हैं? यद्यपि इस स्थानपर आप ऐसा ही प्रगट करना चाहते हैं परन्तु दूसरे स्थान पर आप तो वेदोंका प्रकाश होना उस समय सिद्ध करते हैं जब कि सृष्टिकी आदिमें ईश्वरने तिब्बत देशमें मनुष्योंको बिना मा बाप के पैदा किया था और जब कि पृथिवीमें अन्य किसी स्थान पर कोई मनुष्य नहीं रहता था और जो मनुष्य तिब्बतमें उत्पन्न किये गये थे उनकी भी कोई भाषा नहीं थी।

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको सत्यार्थप्रकाश में यह लेख लिखते समय उस समयका ध्यान नहीं रहा जब सृष्टिकी आदि में ईश्वर को वेदोंका प्रकाश करने वाला बताया जाता है बरण स्वामीजीको अपने समयका ध्यान रहा और यह ही समझा कि हम ही इस समय वेदोंको प्रकाश करते हैं अर्थात् बनाते हैं क्योंकि स्वामी जीके समयमें बेशक पृथिवीके प्रत्येक देशकी पृथक् २ भाषा है और संस्कृत भाषा जिसमें वेदोंका प्रकाश स्वामी जी ने किया स्वामीजीके समयमें किसी देश की प्रचलित भाषा भी नहीं थी। इस

ही कारण स्वामी जी लिखते हैं कि " इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देश की भाषा नहीं " और फिर आगे चलकर इस ही लेखमें इस ही को पुष्ट करते हुए स्वामीजी लिखते हैं " कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता " स्वामीजीका यह कथन बिल्कुल सत्य होता यदि वह अपने आपको वेदोंका बनाने वाला कहते परन्तु वह तो ईश्वरको वेदों का प्रकाश करने वाला बताते हैं तब स्वामीजीका यह लेख कैसे संगत हो सकता है क्या स्वामीजीका यह आशय है कि सृष्टि की आदि में जिन मनुष्यों में वेद प्रकाश किये गये वह कोई अन्य भाषा बोलते थे और ईश्वर ने उस प्रचलित भाषा से भिन्न भाषा में अर्थात् संस्कृत भाषा में वेदों का प्रकाश किया? ऐसी दशा में वेदों के प्रकाश होने के समय सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुये मनुष्य जो भाषा बोलते थे वह भाषा उन को किसने सिखाई और किस रीतिसे सिखाई ? क्या उन्होंने अपने बोलने के वास्ते अपने आप भाषा बनाली ? परन्तु आप तो यह कहते हैं कि मनुष्य बिना सिखाये कोई काम कर ही नहीं सकता है और अपने बोलने के वास्ते भाषा भी नहीं बना सकता है इस हेतु लाचार आप को यह ही कहना पड़ेगा कि वेदों के प्रकाश होने से पहले कोई भाषा मनुष्यों की नहीं थी उन्होंने जो भाषा सीखी वह वेदों से ही सीखी । इसके अतिरिक्त यदि वह आदि में उत्पन्न हुवे मनुष्य कोई और बोली बोलते थे और वेद जिसके बिदून मनुष्य को कोई ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है वह संस्कृत में दिया गया तो उन मनुष्यों में ईश्वर ने वेद को प्रकाश किस तरह किया होगा ।? वह लोग तो पशु समान जंगली और अज्ञानी थे अपनी कोई जंगली भाषा बोलते होंगे परन्तु उन मूर्खों को छोटी मोटी सब बात सीखने के वास्ते उपदेश मिला संस्कृत में जो उन की बोली नहीं थी तो इससे उनको क्या लाभ हुआ होगा ? वेदोंका उपदेश प्राप्त करने से पहले उनको संस्कृत भाषा पढ़नी पड़ी होंगी परन्तु पढ़ाया किसने और उन्होंने पढ़ा कैसे? इससे विदित होता है कि वेदोंके प्रकाश करनेसे पहले ईश्वरने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत कोष और संस्कृत की अन्य बहुत सी पुस्तकें किसी विधि प्रकाश की होंगी जिनसे इतनी विद्या प्राप्त हो सके कि वेदों के अर्थ समझ में आ सकें और वेदों के प्रकाश करने से पहले सृष्टि की आदि में पैदा हुये अज्ञान मनुष्यों के पढ़ने तथा संस्कृत भाषा पढ़ाने के वास्ते अनेक पाठशालायें भी खोली होंगी और सर्व मनुष्यों को उन पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई होगी । परन्तु इतनी संस्कृत पढ़ने के वास्ते जिससे वेदों का अर्थ समझमें

आजावे कम से कम १५ वा २० वर्ष लगते हैं आश्चर्य है कि इतने लम्बे समय तक वह लोग जीवित किस तरह रहे होंगे। क्योंकि जब तक मनुष्य संस्कृत भाषा न सीख लेवें तब तक उनको वेद शिक्षा किस प्रकार दीजावै और स्वामी जी के कथनानुसार मनुष्य बिना वेदोंके कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है न उसको भोजन बनाना आ सकता है और न कपड़ा पहनना और न घर बना कर रहना। इस कारण जब तक वह संस्कृत पढ़ते रहे होंगे तब तक पशुओं की ही समान विचरते रहे होंगे और डंगरों की तरह घास ही चरते होंगे और ऐसी दशा में उन की भाषा ही क्या होगी क्योंकि जब तक कोई पदार्थ जिनको मनुष्य काम में लाते हैं बना ही नहीं तब तक उन पदार्थों का नाम ही क्या रक्खा जा सकता है और पदार्थों के नाम रक्खे बिदून भाषा ही क्या बन सकती है? इस कारण हमारे आर्य भाइयों को लाचार यह ही मानना पड़ैगा कि वेदों के प्रकाश होने के समय वह ही भाषा बोली जाती थी जिस भाषा में वेदों का मज़मून है और कम से कम यह कहना पड़ैगा कि वेदोंके प्रकाश होने से पहले कोई भाषा नहीं थी वरण वेदों ही के द्वारा ईश्वर ने मनुष्योंको वह भाषा बोलनी सिखाई जो वेदों में है। नतीजा इन सब बातों का यह हुआ कि वेदों के समय वेद की भाषा मनुष्यों की बोलीथी परन्तु यदि वेदों को ईश्वरकृत कहा जावे तो यह भी मानना पड़ैगा कि ईश्वर ने मनुष्यों को वह भाषा बोलने के वास्ते दी जो वेदों में है। परन्तु वेदों की भाषा वह भाषा नहीं है जो संस्कृत भाषा कहलाती है वरण वेदों की भाषा को संशोधन करके ऋषि लोगों ने संस्कृत भाषा बनाई है अर्थात् ईश्वर की भाषा को संशोधन किया अर्थात् चाहे वह वेदों की भाषा ईश्वर की दी हुई थी वा ईश्वर की भाषा थी वा जो कुछ थी परन्तु थी वह गंवारू भाषा जिस का संस्कार करके सुन्दर संस्कृत बनाई गई। इस हेतु यदि वह ईश्वरकी भाषा थी तो ऋषिजन जिन्होंने संस्कृत बनाई वह ईश्वरसे भी अधिक ज्ञानवान और ईश्वर से अधिक सुन्दर वस्तु बनाने वाले थे॥

आर्यमत लीला।

[ख–भाग]

ऋग्वेद

(५)

आज कल अफरीका देश में हबशी रहते हैं यह लोग अग्नि जलाना नहीं जानते थे वरण जिस प्रकार शेर व हाथी अग्नि से डरते हैं इस ही प्रकार ये भी डरा करते थे। अंगरेजों ने इन

के देशों में जाकर बड़ी कठिनाई से इनको अग्नि जलाना, अनाज भूनना और भोजन पकाकर खाना आदिक बहुत क्रियायें सिखाई हैं परन्तु अब तक भी वह ऐसे नहीं हुये हैं जैसे हिन्दुस्तान के ग्रामीण मनुष्य होते हैं। हमारे ग्रामीण मनुष्य अब भी इनसे बहुत ज्यादा होशियार और सभ्य हैं अंग्रेज़ी की एक पुस्तक में एक समय का वर्णन लिखा है कि जिन हबशियों को अंगरेज़ोंने बहुत कुछ सभ्यता सिखादी थी और वह बहुत कुछ होशियार होगये थे उनके देशमें एक अंग्रेज एक नदी का पुल बनवा रहा था, हबशी लोग मजदूरी कर रहे थे, अंगरेज को पुलके काम में गुणिया की ज़रूरत हुई, रहनेका मकान दूर था इस कारण साहबने एक ईंटपर चिट्ठी लिखकर एक हबशी को दी और कहा कि यह ईंट हमारे मकान पर जाकर हमारी मेमसाहबको देदो-हबशी ईंट लेगया मेमने पढ़कर गुणिया हबशीको देदिया कि लेजाओ। हबशीको बहुत अचम्भा हुआ और मेमसाहब का हाथ पकड़ कर कहने लगा कि सच बता तुझे किसने कहा कि साहबको गुणिया दरकार है। मेमने हबशीको बहुत कुछ समझाया कि जो ईंट तू लाया था उस पर लिखा हुआ था परन्तु वह कुछ भी न समझ सका क्योंकि वह लिखने पढ़नेकी विद्याको कुछ भी नहीं जानता था। वह गुणिया लेकर साहबके पास आया और उससे भी यह ही बात पूछी। साहब ने भी बहुत कुछ समझाया परन्तु उसकी कुछ समझमें न आया वह तुरन्त वहांसे चलागया और उस ईंटमें, जिस पर साहब ने चिट्ठी लिखी थी, एक सूराख करके और रस्सी डालकर उसको गलेमें लटकाकर ढोल बजाता हुआ गांव गांव यह कहता हुआ फिरने लगा कि अंग्रेज लोग जादूगर हैं जो ईंटके द्वारा बात चीत करते हैं। देखो इस ईंट ने मेमसाहब को यह कहदिया कि साहब गुणिया मांगता है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जो वेदोंके अर्थ किये हैं उनके पढ़नेसे भी यह मालूम होता है कि किसी देशमें हबशी लोग रहते थे उन हबशियों ने जिस समय अग्नि जलाना और अग्निसे भोजन आदिक बनाना जान लिया उस समय उनको बहुत अचम्भा हुआ और उन्होंने ही अग्निकी प्रशंसा और अन्य मनुष्योंको अग्नि जलाना सीखनेकी प्रेरणा आदिक में वेदों के गीत बनाये हैं। इस प्रकारके सैकड़ों गीत वेदोंमें मौजूद हैं परन्तु हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्दजीके वेद भाष्य के हिंदी अर्थोंमेंसे नीचे लिखते हैं:—

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ४ ऋचा १ "जैसे-मैं अग्नि को तुम लोगोंके लिये प्रशंसा करता हूं वैसे हम लोगोंके लिये तुम अग्नि की प्रशंसा करो—"

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ६ ऋचा २ "हे शोभन गुणोंमें प्रसिद्ध घोड़ेके

इच्छा करते और बल को न पतन कराने वाले अग्नि के समान प्रकाशमान आपके सम्बंध में जो अग्नि है उसकी इस समिधा से और उत्तमता से कहे हुए सूक्त से हम लोग सेवन करें–"

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त २१ ऋचा १

"संसारी पदार्थोंकी निरन्तर रक्षा करने वाले वायु और अग्नि हैं उन को और मैं अपने समीप कामकी सिद्धि के लिये वशमें लाता हूं। और उनके और गुणोंके प्रकाश करनेको हम लोग इच्छा करते हैं।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ८ ऋ० ४

"जो विजली रूप चित्र विचित्र अद्भुत अग्नि अविनाशी पदार्थोंसे सब ओर से सब पदार्थों को प्रकट करता हुआ अग्नि प्रशंसनीय प्रकाशसे आदित्यके समान अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है वह सब को ढूंढ़ने योग्य है।"

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १ ऋ० १

"हे विद्वान् मनुष्यो जैसे आप उत्तेजित क्रियाओंसे हाथोंसे प्रकट होने वाली घुमाने रूप क्रियासे (अरण्योः) अरणी नामक ऊपर नीचेके दो काष्ठों में दूर से देखने योग्य अग्नि को प्रकट करें–"

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १५ ऋ० ८

"हे राजन् हम को चाहने वाले सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त आप रात्रियों और किरण युक्त दिनों में हमको प्रकाशित कीजिये आप के साथ सुन्दर अग्नियों वाले हम लोग प्रति दिन प्रकाशित हों"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १

हम अग्नि की वारम्वार इच्छा करते हैं–यह अग्नि नित्य खोजने योग्य है अग्नि ही को संयुक्त करने से धन प्राप्त होता है

अग्नि ही से यज्ञ होता है

अग्नि दिव्य गुणवाली है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२

"हम अग्नि को स्वीकार करते हैं"

"जैसे हम ग्रहण करते वैसे ही तुम लोग भी करो"

"अग्नि होम किये हुए पदार्थ को ग्रहण करने वाली है और खोज करने योग्य है"

"अग्नि की ठीक २ परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिये"

अग्नि बहुत कार्यकारी है जो लाल लाल मुख वाली है

"हे मनुष्य सब सुखोंकी दाता अग्नि को सब के समीप सदा प्रकाशित कर जो प्रकाश और दाह गुण वाले अग्नि का सेवन करता है उसको अग्नि नाना प्रकार के सुखोंसे रक्षा करने वाला है–"

अग्नि की स्तुति विद्वान् करते हैं--

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ९ ऋ० ५

"अग्नि को आत्मा से तुम लोग विशेष कर जानो"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० २

"जिन्हों ने अग्नि उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्य शाली जानना चाहिये—"

ऋ० मं० ३ सू० २९ ऋ० ५ का भावार्थ

"जो मनुष्य यत्नकर अग्निको उत्पन्न

करके कार्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य युक्त होते हैं

(नोट) उस समय दीवासलाई तो थी नहीं इसी कारण दो वस्तुओं को रगड़ कर वा टकराकर अग्नि पैदा करते थे—

ऋग्वेद पंचममंडल सूक्त ३ ऋ० ४

अग्नि को विस्तारते हुए विद्वान मनुष्य चिल्ला चिल्ला उसका उपदेश दे रहे हैं वे मृत्यु रहित पदवी को प्राप्त होवे—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋ० २

"जिसकी मैं प्रशंसा करता हूं वह अग्नि है उसके प्रयोग से अध्यापकों के लिये अन्न को सब प्रकार धारण कीजिये,,—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १३ ऋ० ४

"हे विद्वान् जिस की संपूर्ण प्रजाओंमें ग्रहण करने योग्य अग्नि प्रशंसा को प्राप्त होता है—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४८ ऋ०१

"विद्वान्जन मनुष्य सम्बन्धिनी प्रजाओं में सूर्यके समान अद्भुत और रूप के लिये विशेषतासे भावना करनेवाले जिस अग्नि को सब ओर से निरंतर धारण करते हैं उस अग्निको तुम लोग धारण करो—"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १५ ऋ० ६

"हे मनुष्यो! वह अत्यन्त यज्ञकर्ता देने योग्य पदार्थों को प्राप्त होनेवाला पावक अग्नि हमारी इस शुद्ध क्रिया को और वाणियों को प्राप्त हो उसको तुम लोग सेवन करो।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३५ ऋ० ११

"हे मनुष्यो जो इस अग्नि का सुंदर सैन्यके समान तेज और अपने गुणोंसे निश्चित आख्या अर्थात् कथन प्राणोंके पौत्रके समान बर्तमान व्यवहारसे बढ़ता है वा जिसको प्रबल यौवनवती स्त्री इस हेतु से अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो तेजोमय शोभन शुद्ध स्वरूप जल वा घी और अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न इस अग्निके संबंधमें बर्त्तमान है उसको तुम जानो—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ३

मैं अग्नि जलाता हूं जो यज्ञमें जलाई जाती है और काली, कराली, मनोज वा, सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरूपी जिसकी जीभ हैं अग्नि की सात जीभ हैं॥

वेदोंके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि उस समयके वहशी लोगोंने अग्निको पाकर और उससे भोजन आदिक अनेक प्रकारकी सिद्धि को देखकर अग्नि पूजना प्रारम्भ किया और अग्नि को जलाकर उसमें घी दूध आदिक वह द्रव्य जिनको वह सबसे उत्तम समझते थे अग्निमें चढ़ाने लगे--इस प्रकार की पूजाको वह लोग यज्ञ कहते थे फिर कुछ सभ्यता पाकर यज्ञके संबंधके अनेक गीत उन लोगों ने बना लिये। वेदोंमें ऐसे गीत बहुत ही ज्यादा मिलते हैं:—

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदभाष्य

के हिन्दी अर्थोंमें से हम कुछ वाक्य इस विषयके नीचे लिखते हैं:-

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २ ऋचा ४

हे मनुष्यों जैसे विद्वानों के समीप पग पीछे करके सन्मुख घोटूं जिनके हों वे विद्यार्थी विद्वान होकर सत्य का सेवन करते और विद्याको धारण करते हुए अन्न के साथ उत्तम घृत आदि को अग्निमें छोड़ते हैं"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२ ऋ० ५-११

जिसमें घी छोड़ा जाता है वह अग्नि राक्षसोंको विनाश करती है-"भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार मन्त्रोंके नवीन २ पाठ तथा गान युक्त स्तुति और गायत्री छन्द वाले प्रगाथोंसे गुणोंके साथ ग्रहण किया हुआ उक्त प्रकारका धन और उक्त गुण वाली उत्तम क्रियाको अच्छी प्रकार धारण करता है-"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ६-८

"हे विद्वानो ! आज यज्ञ करने के लिये घर आदिके अलग २ सत्य सुख और जल के वृद्धि करने वाले तथा प्रकाशित दरवाजोंका सेवन करो अर्थात् अच्छी रचनासे उनको बनाओ मैं इस घर में जो हमारे प्रत्यक्ष यज्ञको प्राप्त करते हैं उन सुन्दर पूर्वोक्त लाल जीभ, पदार्थोंका ग्रहण करने, तीव्र दर्शन देने और दिव्य पदार्थोंमें रहने वाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अग्नियों को उपकारमें लाता हूं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋ० २

"हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! तुम जिन पूर्वोक्त वायु और अग्निके गुणों को प्रकाशित तथा सब जगह कामोंमें प्रदीप्त करते हो उन को गायत्री छन्द वाले वेदके स्तोत्रोंमें बहुत आदि स्वरोंमें गाओ-"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० १९

"हे स्त्री पुरुषो जो सुख की सम्भावना कराने वाले दोनों स्त्री पुरुष यज्ञ की विद्याओंको प्राप्त होते और हव्य द्रव्यको पहुंचाने वाले अग्नि को प्राप्त होते उन्हींको हम लोग अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं-"

वेदोंके गीत बनाने वालों ने केवल अग्नि ही की प्रशंसा में गीत नहीं बनाये हैं वरण जो जो वस्तु उन को उपकारी ज्ञात होती रही हैं उस ही को पूजने लगे हैं और उस ही के विषयमें गीत जोड़ दिया है। दृष्टान्तरूप जलकी स्तुतिका एक गीत हम स्वामी दयानन्दजीके वेदभाष्यके हिन्दी अनुवादसे लिखते हैं—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ४९ ऋचा २

"हे मनुष्य जो शुद्ध जल चूते हैं अथवा खोदनेसे उत्पन्न होते हैं वा जो आप उत्पन्नहुए हैं अथवा समुद्रके लिये हैं वा जो पवित्र करने वाले हैं वह देदीप्यमान जल इस संसारमें मेरी रक्षा करें-"

नदी की प्रशंसा वेदों में इस प्रकार की गई है--

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५० ऋ० ४

"जो जाने योग्य नीचे वा ऊपरले देशोंको जाती हैं और जो जलसे भरी

वा जल रहित हैं वे सब नदियां हमारे लिये जलसे सींचती हुई वा तृप्त करती हुईं भोजनादि व्यवहारों के लिये प्राप्त होती हुईं आनन्द देने और सुख करने वाली हों और भोजनादि स्नेह करने वाली हों—"

बादल की स्तुति वेदोंमें इस प्रकार की गई है—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १४

" हे स्तुति करने वाले आप जो मेघोंसे युक्त और बहुत जल वाला अन्तरिक्ष और पृथिवी को सींचता हुआ बिजुलीके साथ प्राप्त होता है और जो उत्तम प्रशंसा युक्त है उस गजना करते हुए को निश्चय से प्राप्त होओ और आप शब्द करते हुए पृथिवीके पालन करने वालेको उत्तम प्रकार जनाइये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १६

" हे विद्वन् ...... और दाता आप और जो यह प्रशंसा करने योग्य मेघ वा वन्हि धन के लिये भूमि आकाश और यव आदि ओषधियों तथा वट और अश्वत्थ आदि वनस्पतियों को प्राप्त होता है उस को आप अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वह मेरेलिये सुख कारक होवे जिससे यह पृथिवी (माता) माताके सदृश पालन करने वाली हम लोगोंको दुष्ट बुद्धिमें नहीं धारण करे-"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ८३ ऋ० ३

" हे विद्वन् जो मेघ मारने के लिये रस्सी अर्थात् कोड़ेसे घोड़ों के सन्मुख लाता हुआ बहुत रथवालेके सदृश वर्षाओंमें श्रेष्ठ दूतों को प्रकट करता है परतन्त्र करनेमें वे दूरसे सिंहके सदृश कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य वर्षाओंमें हुए अन्तरिक्षको करता अर्थात प्रगट करता है उसको आप पुकारिये भावार्थ—जैसे सारथी घोड़ों को यथेष्ट स्थानमें लेजानेको समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलोंको इधर उधर लेजाता है

जिस प्रकार वेदोंके कवियोंने अग्नि जल आदिक अनेक वस्तुओंसे प्रार्थना की है इस ही प्रकार सर्प आदि भयकारी जीवोंसे भी प्रार्थना की है हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थोंके अनुसार कुछ वाक्य यहां लिखते हैं॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सू०१९१ ऋ०५--६

" वे ही पूर्वोक्त विषधर वा विष रात्रिके आरम्भमें जैसे चोर वैसे प्रतीतिसे दिखाई देते हैं। हे दृष्टि पथ न आने वाले वा सबके देखे हुए विषधारियो तुम प्रतीत ज्ञानसे अर्थात ठीक समयसे युक्त होओ "--

" हे दृष्टिगोचर न होने वाले और सबके देखे हुए विषधारियो जिन का सूर्यके समान सन्ताप करने वाला तुम्हारा पिता पृथ्वीके समान माता चन्द्रमाके समान भ्राता और विद्वानोंकी अदीन माताके समान बहन है वे तुम उत्तम सुख जैसे हो ठहरो और अपने स्थानको जाओ--"

जिस प्रकार कविलोग स्त्रियोंका वर्णन किया करते हैं उस ही प्रकार वेदोंके कवियों ने भी स्त्रियों का वर्णन किया है हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १ ऋ० ६

"जैसे युवावस्था को प्राप्त कन्या-रात्रि दिन अच्छे कम युक्त जिस पति को समीपसे प्राप्त होती है.....वैसे अ-ग्नि विद्याको प्राप्त होके तुम लोग आ-नन्दित होओ--"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५६ ऋ० ५

"हे सभापति शत्रुओंको मार अ-पने राज्यको धारण कर अपनी स्त्रीको आनन्द दियाकर।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ५

आप के जो सुशिक्षित घोड़े हैं उन को रथमें युक्त कर जिस तेरे रथके एक घोड़ा दाहिने और बांई ओर हो उन रथपर बैठ शत्रुओंको जीतके अतिप्रिय स्त्रीको साथ बैठा आप प्रसन्न और उस को प्रसन्न करताहुआ अन्नादि सामग्रीके समीपस्थ होके तू दोनों शत्रुओं को जीतने के अर्थ जाया करो।

ऋग्वेद चौथामंडल सूक्त ३ ऋ० २

"हे राजन् हम लोग आप के जिस गृह को बनावें सो यह गृह स्वामी के लिये कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रोंसे शोभित मन की प्यारी स्त्री के सदृश इस वर्तमान काल में हुआ सब प्रकार व्याप्त उत्तम गुण जिस में ऐसा हो उस में आप निवास करो-

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ ऋ० ३

हे विद्या युक्त और उत्तम गुण वाली स्त्री तू जैसे उत्तम प्रकार जोड़ते हैं घो-ड़ों को जिस में उस वाहन के सदृश अपने किरणों से प्राणियों को जगाती हुई और ऐश्वर्य के लिये जगाती हुई प्रकाशसे अद्भुत स्वरूप वाली किंचित लाल आभा युक्त कान्तियों को सब प्रकार प्राप्त कराती हुई बड़ी अत्यन्त प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला आती और आती है वैसे आप हूजिये—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ६

"हे उत्तम शस्त्र युक्त सेनाध्यक्ष जैसे मैं तेरे अन्नादि से युक्त नौकारथ में सूर्य की किरण के समान प्रकाश मान घो-ड़ों को जोड़ता हूं जिस में बैठके तू हाथों में घोड़ों की रस्सी को धारण करता है उस रथ से और शत्रुओं की शक्तियोंको रोकने हारा तू अपनी स्त्री के साथ अच्छेप्रकार आनंदको प्राप्त हो--

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३ ऋ० ५

"हे पुरुषो आप अन्नादि को वा पृथि-वी के साथ वर्तमान द्वारों के समान शोभावती हुई और ग्रहण की हुई जिनकी सुन्दर चाल ज्वर रहित मनु-ष्यों में उत्तमा को प्राप्त उत्तम वीरोंसे युक्त यश और अपने रूपको पवित्र करती हुई समस्त गुणों में व्याप्ति र-खने वाली देदीप्यमान अर्थात् चमक-ती दमकती हुई स्त्रियों को विशेषता से आश्रय करो और उनके साथ शास्त्र वा सुखों को विशेषता से कहो सुनो,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे सूर्य के तुल्य विद्याके प्रकाशक ज्ञा-नयुक्त नियमों को धारण किये हुए विद्वान् लोगो तुम मेरे दूर वा समीप में सत्य को प्रवृत्त करो एकांतमें जनने

वाली व्यभिचारिणी के तुल्य अपराध को मत करो—

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ४ ५

"मैं आत्मा से उस रात्रि के जो पूर्ण प्रकाशित चंद्रमा से युक्त है समान वर्तमान सुन्दर स्पर्द्धा करने योग्य जिस स्त्री की शोभन स्तुति के साथ स्पर्द्धा करता हूं वह उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली हम लोगों को सुने और जाने न छेदन करने योग्य सूई से कर्म सीने का करे (शतदायम्) असंख्य-दाय भाग वाले को सींवे (उक्थ्यम्) और प्रशंसा के योग्य असंख्य दाय भागी उत्तम संतान को देवे—

हे रात्रि के समान सुख देने वाली जो आप की सुन्दर रूपवाली दीप्ति और उत्तम बुद्धि हैं जिनसे आप देने वाले पति के लिये धनों को देती हो उन से हम लोगों को आज प्रसन्न चित्त हुई समीप आओ। हे सौभाग्य युक्त स्त्री उत्तम देने वाली होती हुई हम लोगों के लिये असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ—"

आर्य मत लीला।

(६)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जिस प्रकार वेदोंका अर्थ किया है उन अर्थों के पढ़नेसे मालूम होता है कि वेदोंके गीत डूमवा भाटोंके बनाये हुए हैं जो मनुष्योंकी स्तुति करके और स्तुतिके अनेक कवित्त सुनाकर दान मांगा करते हैं--ग्रामीण लोग ऐसे स्तुति करने वालोंको बहुत दान दिया करते हैं। हम स्वामी जीके वेदभाष्यसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं जो इस बातको सिद्ध करते हैं:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७१ ऋचा ३

"हे बलवान विद्वानों हम लोगोंसे स्तुति किये हुए आप हमको सुखी करो और प्रशंसाको प्राप्त होता हुआ सत्कार करने योग्य पुरुष अतीव सुखकी भावना करने वाला हो।'

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त १६९ ऋचा ४

हे बहुत पदार्थोंके देनेवाले आपतो हमारे लिये अतीव बलवती दक्षिणाके साथ दान जैसे दिया जाय वैसे दान को तथा इस दुग्धादि धनको दीजिये कि जिससे आपकी और पवनकी भी जो स्तुति करने वाली हैं वे मधुर उत्तम दूधके भरे हुए स्तनके समान चाहती और अन्नादिकोंके साथ बछरों को पिलाती हैं—"

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २५ ऋ० ४

'हे--सेनापति--आप के सदृश रक्षा करने वालेके दानके निमित्त उद्यत हूं उस मेरे लिये तेजस्वी आप घर सिद्ध करो बनाओ"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋ० ४

"हमलोग आप की प्रशंसा करैं आप हम लोगों के लिये धनों को देओ-"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३१ ऋ० ५

"हे सद्गुण और हरणशील घोड़ों वाले हम लोग आप के जिन पदार्थों को मांगते हैं उनको आश्चर्य है आप हम लोगोंके लिये कब देओगे--"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे विद्वानो जिस स्थिर धनुष वाले शीघ्र जाने वाले शस्त्र अस्त्रों वाले तथा अपनी ही वस्तु और अपनी धार्मिक क्रिया को धारण करने वाले शत्रुओं से न सहे जाते हुए शत्रुओं के सहने को समर्थ तीव्र आयुध शस्त्र युक्त मेधावी शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर न्याय की कामना करते हुए विद्वान के लिये इन वाणियों को धारण करो वह हम लोगों की इन वाणियों को सुनो।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ११ ऋ० ६

हे अनेक सेनाओं से युक्त दान करने वाले वलवान के सन्तान आप...हम ...ों के लिये धनों को देते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६८ ऋ० ८

हे सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान हम लोगोंको प्रशंसा करने और देनेवाले राज प्रजा जनो! जैसे तुम दोनों उत्तम यश होने के लिये धन का संवन्ध करो ऐसे वड़े के वलकी प्रशंसा करते हुए हम लोग नावसे जलोंको जैसे वैसे दुख से उल्लंघन करने योग्य कष्टों को शीघ्र तरें—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १०

हे मनुष्य लोगो जैसे हम लोग (सूक्तैः) वेदोक्त स्तोत्रों से सभा और सेनाध्यक्ष को गुण गान पूर्वक स्तुति करते हैं शत्रु को मारते हैं उत्तम वस्तुओं को याचना करते हैं और आपसमें द्वेष कभी नहीं करते वैसे तुम भी किया करो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४६ ऋ० ६

हे सभा सेनाध्यक्षो हमको अन्नादि दिया करो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋ० १

हे मनुष्यो तुम......शत्रुओं को विदारण करने वाले राजाको वाणियोंसे हर्षित करो उस धनके देने वाले विद्वान्का सत्कार करो—„

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० २-१०

" हे राज प्रजा जन जैसे......वैसे तो तू शत्रुओंको मार असंख्यात रक्षा करने हारे वलों में वार २ हर्षको प्राप्त करता हुआ अन्नादि के साथ वर्तमान बराबर वढ़ता रह " " आनन्दकारी व्यवहारमें वर्तमान शत्रु का शिर काटते हैं सो आप हम लोगोंका पालन कीजिये। „

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १-२

" हे राजन् आपके होते जो हमारे ऋतुओं के समान पालना करने वाले और स्तुति कर्ताजन समस्त प्रशंसा करने योग्य पदार्थोंकी याचना करते हैं आपके होते सुन्दर कामना पूरने वाली गौयें हैं उनको मांगते हैं आप ही के होते जो वड़े २ घोड़े हैं उनको मांगते हैं जो आप कामना करने वालेकेलिये अतीव पदार्थों को अलग करने वाले होते हुए धन देते हैं सो आप सबको सेवा करने योग्य हैं—„

" हे ऐश्वर्यवान् विद्वान् जो आप उत्पन्न हुई प्रजाओंसे जैसे राजा वैसे धेनु और घोड़ोंसे धनके लिये तुम्हारी कामना करते हुए हम लोगोंको तेज बुद्धि

वाले करो । जो विद्वान् कविताई करनेमें चतुर होते हुए रूपसे वाणियों को तीक्ष्ण करो दिनोंसे ही सब ओर से निरन्तर निवास करते हो उन्ही आपको हम लोग निरन्तर उत्साहित करें--„

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १९ ऋ० ९

"हे विद्वान् आप हमारे लिये प्रभावको मत नष्ट करो और जो आप की ऐश्वर्यवती दक्षिणा दानकी स्तुति करने वालेके उत्तम पदार्थको पूर्ण करे वह जैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हो वैसे इस को विद्या की कामना करने वालोंके लिये सिखाइये जिससे उत्तम वीरों वाले हम लोग निश्चयसे संग्राम में बहुत कहैं--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २७ ऋ० १

"हे विद्वन् ! जैसे मैं महीनोंके तुल्य राजपुरुषों के लिये जिन इन प्रत्यक्ष घृत को शुद्ध कराने वाली शुद्ध की हुई सत्य वाणियोंका जिव्हारूप साधनसे होम करता अर्थात् निवेदन करता हूं उन हमारी वाणियोंकी यह मित्र बुद्धि सेवने योग्य बलादि गुणोंसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ चतुर दुष्टोंके सम्यक् विनाशक न्यायाधीश आप सदैव सुनिये--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ६-१५

"हे क्रोधसे युक्त मनुष्यो ! तुम हम लोगोंके लिये धनोंको सिद्ध करो घोड़ीके समान रात्रि में वाणी को प्राप्त होओ मनुष्योंकी जैसे स्तुति वैसे ऐश्वर्योंको प्राप्त होओ स्तुति करने वाले के लिये विज्ञानका जिसमें रूप विद्यमान उस उत्तम बुद्धिको सिद्ध करो--"

"हे सरल धर्मा मनुष्यो ! जो रक्षा और सुन्दर बुद्धि प्रेरणाओंमें तुम लोगोंकी मनोहरके समान प्रशंसा करें वा जिस से अच्छे प्रकार की सिद्धिको अतीव पार पहुंचाओ और अपराधको निवृत्त करो वा जिससे निन्दाओंको सोचो अर्थात् छोड़ो वह घोड़ों को प्राप्त होने वाली कोई क्रिया बन्दना करने वालेको प्राप्त हो ।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १८-१९

"हे धन के ईश ! आप का धन हम लोगों में प्राप्त हो और आप की गौके हजारों और सैकड़ों समूहको हम लोग प्राप्त कराते हैं--„

"हे शत्रुओंके नाश करने वाले ! जिस से आप बहुतों के देने वाले हो इससे आप के सुवर्ण के बने हुए घटों के दश संख्या युक्त समूह को हम लोग प्राप्त होवें--"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋचा ७

हे विद्वन्...स्तुति करने वालोंके लिये अन्नको अच्छे प्रकार धारण कीजिये-"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १० ऋ० ७

"हे दाता...तथा स्तुति करने वालो ! और स्तुति करने वाले के लिये हम लोगोंको धारण कीजिये और संग्रामोंमें वृद्धिके लिये हम लोगोंको प्राप्त हूजिये--„

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३६ ऋ० १

"हे मनुष्यो जो दाता द्रव्योंके देनेको जानता और धनोंको देने वालियोंको

जानता है वह पिपासासे व्याकुल के सदृश और अन्तरिक्षमें चलने वाले के सदृश सत्य और असत्यके विभाग करने वालोंको प्राप्त होने वाला और कामना करता हुआ हम लोगोंको सब प्रकार से प्राप्त होवे और प्राणों के देने वाले दुग्ध का पान करे भावार्थ उसी को राजा मानो—"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६५ ऋ० ६

"वेदार्थ के जानने वाले हम लोगों का गौओं के पीने योग्य दुग्ध आदि में नहीं निरादर करिये—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० ७

हे स्तुति को सुनने वाले! सोम को पीने वाले सभाध्यक्ष!

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५७ ऋ० ५

हे सेनादि बल वाले सभाध्यक्ष आप इस स्तुति करता के कामना को परिपूर्ण करें-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४१ ऋ० १२

"जो प्रशंसा युक्त जिसके रथमें चांदी सोना विद्यमान जो उत्तम प्रकाश वाला जिस के वेगवान बहुत घोड़े वह दान शील जन हम लोगों को सुने और जो गमन शील निवास करने योग्य अग्नि के समान प्रकाशमान जन उत्पन्न किये हुवे अच्छे रूप को अतीव प्राप्ति कराने वाले गुणों से अच्छा प्राप्त करे वह हम लोगोंके बीच प्रशंसित होता है।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४२ ऋ० १०

"हे विद्वान् हम लोगों की कामना करने वाले विद्या और धन से प्रकाशमान आप हम लोगों के बहुत पोषण करने के लिये और धन होने के लिये नाभि में प्राण के समान प्राप्त होवें और आत्मा से जो तुरन्त रक्षा करने वाला अद्भुत आश्चर्य रूप बहुत वा पूरा धन है उस को हम लोगोंके लिये प्राप्त कीजिये"—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८४ ऋ० ४

हे अच्छे देने वालो! जो तुम दोनों की मधुरादि गुण युक्त देनि वर्तमान है वह हम लोगों के लिये हो। और तुम प्रशंसा के योग्यकार करने वालेको प्रशंसाको प्राप्त हो ओ और अपनेको सुननेकी इच्छासे जिन तुमको उत्तम पराक्रमके लिये साधारण मनुष्य अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हमभी अनुमोदन देवें—"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १४ ऋ०१२

"हे धन देने वाले परम ऐश्वर्य युक्त सुन्दर वीरों वाले हम लोग जो तुम्हारा बहुत अद्भुत पृथिवी आदि वस्तुओं से सिद्ध हुए बहुत समृद्धि करने वाले धनको अन्नोंके लिये हित करने वाली पृथिवीके बीच प्रति दिन विज्ञानरूपी संग्राम यज्ञमें कहैं उसको हमारे लिये देनेको आप समर्थ करो--"

आर्यमत लीला।

(७)

प्यारे आर्य्य समाजी भाइयो! तुम को स्वामी दयानन्दसरस्वती जीने यह यक़ीन दिलाया है कि, परमेश्वर ने

सृष्टि के आदि में प्रथम पृथिवी उत्पन्न की और फिर बिना मा बापके इस पृथिवी पर कूदते फांदते जवान मनुष्य उत्पन्न कर दिये। वह मनुष्य अज्ञानी थे और बिना सिखाये उनको कुछ नहीं आ सकता था। इस कारण परमेश्वर ने चार वेदों के द्वारा उनको सर्व प्रकार का ज्ञान दिया।

शोक है कि स्वामीजी ने इस प्रकार कथन तो किया परन्तु यह न बताया कि उनकी इस बात का प्रमाण क्या है? और इस बात का बोध उन को कहां से हुवा कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप से उत्पन्न मनुष्यों को वेदों के द्वारा शिक्षा दी गई? स्वामी जी ने ऋग्वेद का अर्थ प्रकाश किया है जिस से स्पष्ट विदित होता है कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप के उत्पन्न हुवे मनुष्यों को वेदों के द्वारा उपदेश नहीं दिया गया है बरन स्वामी जी ने जो अर्थ वेदोंके किये हैं उन ही अर्थों से ज्ञात होता है कि वेद के द्वारा उन मनुष्यों से सम्बोधन है जो मा बाप से उत्पन्न हुवे थे, और जिनसे पहले बहुत विद्वान् लोग हो चुके हैं और उन पूर्वज विद्वानों के अनुकूल वेद के गीतों का बनाने वाला गीत बना रहा है-हम इस विषय में विशेष न लिखकर स्वामी दयानन्द जी के अर्थों के अनुसार वेदों के कुछ वाक्य नीचे लिखतेहैं और यह हम पहले लिख चुके हैं कि वेदों का मज़मून सिलसिले वार नहीं है बरण पृथक पृथक गीत हैं जो सूक्त कहलाते हैं—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋचा ४।

"आप **हमारे पिता के समान** उत्तम बुद्धि वाले हैं।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा २२

"हे राजन्" जो यह आनन्द कारक **अपने पिता** के शस्त्र और अस्त्रों को स्थिर करता है—"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३२ ऋ० १

"**अगले महाशयोंने** किये धन के निमित्त मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को निरंतर सहैं।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ० १

"सोम को **अगले सज्जनों** के पीने के समान जो पीता है।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३९ ऋ० ८

"हे ऋतु २ में यज्ञ करने वाले **विद्वानो** तुम्हारे वे सनातन पुरुषोंमें उत्तम बल हम लोगोंसे मत तिरस्कृतहों

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २ ऋ० ९

"हे **पूर्वज विद्वानोंने** विद्या पढ़ा कर किये विद्वान आप"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २० ऋ० ५

"**पूर्वाचार्य्योंने** किई हुई स्तुतियों को बढ़ाये वह पुरुषार्थी जन हमारा रक्षक हो।"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २२ ऋ० ४

"वह प्रथम **पूर्वाचार्य्योंने** किया उत्तमता से कहने योग्य असिद्ध मनुष्यों में सिद्ध पदार्थ"।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८० ऋ० ३

"जो वृद्धावस्था को नहीं प्राप्त हुई उस गौ में अवस्थासे परिपक्व भाग गौका पूर्वज लोगोंने प्रसिद्ध किया हुआहै"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३६ ऋ० ६

हे योग से ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते हुए जन जैसे योग जानने की इच्छा वाले किया है योगाभ्यास जिन्होंने उन प्राचीन योग गुण सिद्धियों के जानने वाले विद्वानों से योग को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर॥"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३१ ऋ० ५

"जिस बलसे वर्त्तमान सनातन नाना प्रकारकी बस्तियोंमें मूल राज्यमें परम्परासे निवास करते हुए विचारवान विद्वानजन प्रजाजनोंको चैतन्य करते हैं ?"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६३ ऋ०३।४

"उस अग्निके दिव्यपदार्थ में तीन प्रयोजन अगले लोगों ने कहे हैं उस को तुम लोग जानो"—तीन प्रकाशमान अग्नि में भी बन्धन अगले लोगोंने कहे हैं उसीके समान मेरे भी हैं—"

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त ६ ऋ० २

"हे राजन अग्निके समान जिन आपकी वाणियोंसे मेघ के तुल्य वर्त्तमान शत्रुओं के नगरोंको विदीर्ण करने वाले राजा के बड़े पूर्वजराजाओं ने किये कर्मों को—"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५३ ऋचा १

"इन सूर्य्य और भूमिको अगले विद्वानजन स्तुति करते हुए धारणकर ते हैं उन्हीं की अच्छे प्रकारसे प्रशंसा करता हूं—"

ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ११४ ऋ० ७

"हे सभापति हम लोगोंमें से बुड्ढे वा पढ़े लिखे मनुष्यों को मत मारो और हमारे बालक को मत मारो हमारे जवानोंको मत मारो हमारे गर्भ को मत मारो हमारे पिता को मत मारो माता और स्त्री को मत मारो और अन्याय कारी दुष्टों को मारो।

ऋग्वेद तीसरा मण्डल सूक्त ५५ ऋ० २

"उन पूर्वजनों से सिद्ध किये गये कर्मों को मैं उत्तम प्रकार विशेष करके प्रकाश करूं।"

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ३

हे बलवान् के सन्तान

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ५

हे बलवान् के पुत्र

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १२

हे वसिष्ठ के पुत्र।

ऋग्वेद छठामण्डल सूक्त १५

हे बलवानके सन्तान।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १

हेबलवान केपुत्र—हेबलवान विद्वानकेपुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त ४

हे बलवान के पुत्र

ऋग्वेद सप्तमंडल सूक्त ८

हे अतिबलवान्के सत्यपुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १५

हे अति बलवानके पुत्र राजन्।

ऋग्वेद सप्तमसंडल सूक्त १६
हे बलवान्के पुत्र विद्वान्
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ५८
हे पूर्ण बलयुक्तके पुत्र
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ७९
हे प्रकाश युक्त विद्वान् बलयुक्त पुरुषके पुत्र
ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २४
हे राजधर्मके निवाहक बलवान्के पुत्र
ऋग्वेद सप्तमसंडल सूक्त १८
हे राजा सदा शील रखने वालेके पुत्र
ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१
हे बुद्धिमान्के पुत्र
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त १२२
विद्याकी कामना करते हुए का पुत्र मैं

प्यारे आर्य्यो भाइयो! वेदोंके इन उपर्युक्त वाक्योंको पढ़कर आपको अवश्य आश्चर्य हुआ होगा और विशेष आश्चर्य इस बातका होगा कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने आप ही वेदों के ऐसे अर्थ किये और फिर आप ही सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका में लिखते हैं कि सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के उत्पन्न हुए मनुष्यों में वेदप्रकाश किये गये। परन्तु प्यारे भाइयो! आपने हमारे प्रथम लेखोंके द्वारा पूरे तौर से जान लिया है कि स्वामीजी के कथन अधिकतर पूर्वापर विरोधी होते हैं। इस कारण आपको उचित है कि आप सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका पर निर्भर नरहैं, बरण स्वामी जी के बनाये वेद भाष्य को, जिस में सुगम हिन्दी भाषा में भी वेदों के अर्थ प्रकाश किये गये हैं और जो वैदिक यंत्रालय अजमेर से मिलते हैं पढ़ें और वेदों के मजमून को जांचें।

स्वामी जी कहते हैं कि वह ईश्वर कृत हैं हम कहते हैं कि वह ग्रामीण कवियों के बनाये हुवे हैं-स्वामी जी कहते हैं कि उनमें सर्व प्रकारका ज्ञान है हम कहते हैं कि वह धार्मिक वा लौकिक ज्ञान की पुस्तक नहीं हैं बल्कि ग्राम के किसान लोग जैसे अपनी साधारण बुद्धि से गीत जोड़ लिया करते हैं वैसे गीत वेदों में हैं और एक एक विषय के सैकड़ों गीत हैं बिल्कुल बेतरतीब और बे सिल सिला संग्रह किये हुवे हैं आप को हमारे इस सब कथन पर अचम्भा आता होगा और सम्भव है कि कोई २ भाई हमारा कथन पक्षपात से भरा हुआ समझता हो परन्तु हम जो कुछ भी लिखते हैं वह इस ही कारण लिखते कि आप लोगों को वेदों के पढ़ने की उत्तेजना हो। स्वामी जी के वेद भाष्य में जो अर्थ हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं वह बहुत सुगम हैं आप की समझ में बहुत आसानी से आसक्ते हैं। इस हेतु आप अवश्य उनको पढ़ें। जिससे यह सब बातें आप पर विदित हो जावें। यद्यपि हम भी स्वामी जी के भाष्य में से कुछ कुछ वाक्य लिखकर अपने सब कथन को सिद्ध करेंगे। परन्तु हम कहां तक लिखेंगे? आप को फिर भी यह

ही संदेह रहैगा कि वेदों में और भी सर्व प्रकार के विषय होंगे जो इन्होंने नहीं लिखे हैं। इस कारण आप हमारे कहने से अवश्य वेदों को पढ़ें ।

जब हम यह बात कहते हैं कि वेद गंवारों के गीत हैं तो आप को अचम्भा होता है क्योंकि स्वामी जी ने इस के विपरीत आप को यह निश्चय कराया है कि संसार भर का जो ज्ञान है और जो कुछ विद्या धार्मिक वा लौकिक संसार भर में है वा आगे को होने वाली है वह सब वेदों में है और वेदों से ही मनुष्यों ने सीखी हैं ।

परन्तु यदि आप ज़रा भी विचार करेंगे तो आप को हमारी बातका कुछ भी अचम्भा नहीं रहैगा क्योंकि स्वामीजी यह भी कहते हैं कि सृष्टिकी आदिमें जो मनुष्य बिना मा बाप के ईश्वरने उत्पन्न किये थे, वह पशु समान अज्ञानी और जंगली वहशियोंकी समान अनजान रहते यदि उनको वेदों के द्वारा ज्ञान न दिया जाता। अब आप विचार कीजिये कि ऐसे पशु समान मनुष्योंको क्या शिक्षा दी जासकती है ? यदि किसी अनपढ़ को पढ़ाया जावै तो क्या उसको वह विद्या पढ़ाई जावेगी जो कालिजोंमें एम० ए० वा बी ए० वालोंको पढ़ाई जाती है ? वा प्रथम अ आ वगैरह अक्षर सिखाये जावेंगे ? यदि किसीको सुन्दर तसवीर बनाना सिखाया जावे तो उसको प्रथम ही सुन्दर तसवीर खैंचनी बताई जावैगी वा प्रथम लकीर खैंचनी सिखाई जावैगी ? यदि किसीको होशयार बढ़ईका काम सिखाना हो तो उसको प्रथम मेज़ कुर्सी व सुन्दर सन्दूकची आदि बनाना और लकड़ी पर खुदाईका काम करना सिखाया जावैगा वा प्रथम कुल्हाड़ेसे लकड़ी फाड़ना ! इस ही प्रकार आप स्वयं विचार करलेवें कि यदि वेदोंमें उन जंगली मनुष्योंके वास्ते शिक्षा होती तो कैसी मोटी और गंवारू शिक्षा होती ।

इस के उत्तर में आप यह ही कहैंगे कि उनके वास्ते प्रथम शिक्षा बहुत ही मोटी मोटी बातोंकी होती और क्रम २ से कुछ कुछ बारीक बातोंकी शिक्षा बढ़ती रहती परन्तु यदि आप वेदोंको पढ़ें तो आप को मालूम हो जावै कि स्वामी दयानन्दजीके अर्थोंके अनुसार वेदोंका सब मज़मून प्रारम्भसे अन्त तक एक ही प्रकार का है । यद्यपि उस में कोई शिक्षाकी बात नहीं है बल्कि साधारण कवियोंके गीत हैं, परन्तु यदि आप उन गीतोंको शिक्षाका ही मज़मून कहैं तो भी जिस प्रकार और जिस विषयका गीत प्रारम्भ में है अन्ततक वैसा ही चलागया है । आप जानते हैं कि ग्रामीण लोग जो खेती करते और पशु पालते हैं वह वहशी जंगली लोगोंसे बहुत होशयार हैं क्योंकि कमसे कम घर बनाकर रहना, आगसे पकाकर रोटीखाना वस्त्र पहनना, आदिक बहुत काम जानते हैं, और वहशी लोग इन कामों

में से कोई काम भी नहीं जानते।

स्वामीजी के कथनानुसार जो मनुष्य सृष्टिके आदिमें बिना मा बापके पैदा किये गये थे वह तो वहशियोंसे भी अज्ञान होंगे क्योंकि उन्होंने तो अपनेसे पहले किसी मनुष्यको या मनुष्यके किसी कर्त्तव्यको देखा ही नहीं है। इस कारण जो शिक्षा ग्रामीण लोगोंको दी जा सकती है उससे भी बहुत मोटी २ बातोंकी शिक्षा वहशी लोगों को दी जा सकती है और सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए मनुष्योंके वास्ते तो बहुत ही ज्यादा मोटी शिक्षाकी जरूरत है-- इस कारण यदि हम यह कहते हैं कि वेदोंका मज़मून ग्रामीण लोगोंके विषयका है तो हम वेदोंकी प्रशंसा करते हैं और जो लोग यह कहते हैं कि वेदोंकी शिक्षा सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको दी गई थी जो जंगली पशुके समान थे अर्थात् ग्रामीण लोगों से भी मूर्ख थे तो वह वेदोंकी निन्दा करते हैं -

खैर ! निन्दा हो वा स्तुति हम को वेदोंके ही मज़मूनों से देखना चाहिये कि उसका मज़मून किन लोगोंके प्रति मालूम होता है-इस बात की जांचके वास्ते हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके वेदभाष्य अर्थात् स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थोंसे कुछ वाक्य लिखते हैं जिससे यह सब बात स्पष्ट विदित हो जावेगी। और यह भी मालूम हो जावेगा कि वेदोंके द्वारा ईश्वर शिक्षा देरहा है वा संसारके मनुष्य अपनी अवस्था के अनुसार कथन कर रहे हैं--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ ऋ० ११

" हे नेता अग्रगन्ता जनो तुम अपने को उत्तम कामकी इच्छासे इस गवादि पशुके लिये नीचे और ऊंचे प्रदेशों में काटने योग्य घासको और जलोंको उत्पन्न करो। „

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ५७ ऋ० ४-५-८

"हे खेती करने वाले जन! जैसे बैल आदि पशु सुख को प्राप्त हों, सुखिया कृषीवल सुखको करैं, हलका अवयव सुख जसे हो वैसे पृथिवीमें प्रविष्ट हो और बैलकी रस्सी सुख पूर्वक बांधी जाय, वैसे खेतीके साधन के अवयव को सुख पूर्वक ऊपर चलाओ। „

" हे क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों जिस इस कृषिविद्याकी प्रकाश करने वाली वाणी और जल को कृषि विद्याके प्रकाशमें करते हैं उनकी सेवा करो इस से इस भूमिको सींचो। जैसे भूमि खोदने की फाल बैल आदिकोंके द्वारा हम लोगों के लिये भूमिको सुख पूर्वक खोदैं किसान सुख को प्राप्त हों मेघ मधुर आदि गुण से और जलों से सुखको वर्षावै वैसे सुख देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करनेवाले तुम दोनों हम लोगोंमें सुखको धारण करो। „

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २७ ऋ० २

" हे सबसें प्रकाशमान विद्वन् जो उत्तम प्रकार प्रशंसा किया गया अत्यंत बढ़ता अर्थात् वृद्धिको प्राप्त होता हुआ

मेरे गौओंके सैकड़ों और बीसों संख्या वाले समूह को और युक्त उत्तम धुरा जिनमें उन. ले चलने वाले घोड़ोंको भी देता है उस तीन गुणों वाले पुरुष के लिये आप गृह वा सुखको दीजिये ।,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२० ऋ०८

" आपकी रक्षासे हम लोगोंकी दूध भरे थनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्यादिको पालती हुई गौयें बछड़ोंसे रहित अर्थात् वन्ध्या मत हों और वे हमारे घरोंसे विदेशमें मत पहुंचें । "

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ९-१०

" हे सब ओरसे पशुविद्याके प्रकाश करने वाले जो आप की व्याप्त होने वाली, जिस में गौएं परस्पर सोती हैं और जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्त्तमान है उस से आपके सुखको हम लोग मांगते हैं । ,,

" हे पशु पालने वाले विद्वन् आप हम लोगोंके लिये प्राप्तिके अर्थ गौओंको अलग करनेवाली और घोड़ोंका विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थ का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धिको मनुष्यों के तुल्य करो ।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५८ ऋ० २

"हे मनुष्यो जो भेड़ बकरी और घोड़ों को रखने वाला जो पशुओंकी रक्षा करने वाला तथा घर में अन्नोंको रख ने वाला बुद्धिको तृप्त करता है वह समग्र संसार में स्थापन किया हुआ पुष्टि करने वाला ऋषि और पदार्थों में व्याप्त बुद्धि और गृहों की अच्छे प्रकार कामना वा उनका उपदेश करता हुआ विद्वान् प्राप्त होता वा जाता है तथा उत्तमता से वर्त्तता है उसका तुम लोग सेवन करो ।"

(दूध दुहनेवाले ग्वालेकागीत)

ऋगवेद प्रथम मंडल सूक्त १६४ ऋ० २६

"जैसे सुन्दर जिसके हाथ और गौ को दुहता हुआ मैं इस अच्छे दुहाली अर्थात् कामोंको पूरा करती हुई दूध देने वाली गौ रूप विद्याको स्वीकार करूं"

ऋगवेद मंडल छठा सूक्त १ ऋ० १२

"हे बसने वाले आप हम लोगोंमें क- और पुत्रके लिये पशु गौ आदिको तथा ...गृह और... अन्न आदि सामग्रियोंको बहुत धारण करिये जिससे हम लोगों के लिये ही मनुष्योंके सदृश कल्यान कारक उत्तम प्रकार संस्कारसे युक्त अन्न में हुए पदार्थ हों ।,,

ऋगवेद पंचम मण्डल सू० ४१ ऋ०१

"यज्ञ की कामना करते हुए के लिये हम लोगोंकी रक्षा करिये वा प ओं और अन्नोंके सदृश हम लोगोंके लिये भोगोंको प्राप्त कराइये ।,,

ऋगवेद प्रथम मंडल सू० २८ ऋ० १-२ ३-८

"हे (इन्द्र) ऐश्वर्य युक्त कर्मको करने वाले मनुष्य तुम जिन यज्ञ आदि व्यवहारोंमें बड़ी जड़का जो कि भूमिसे कुछ ऊंचे रहनेवाले पत्थर और मूसलको अन्नादि कूटनेके लिये युक्त करते हो उनमें उखली मूसलके कूटे हुए पदार्थोंको ग्रहण

करके उनकी सदा उत्तमताके साथ रक्षा करो और अच्छे विचारोंसे युक्तिके साथ पदार्थसिद्ध होने के लिये इसको नित्य ही चलाया करो-भावार्थ-भारी से पत्थर में गड्ढा करके भूमि में गाड़ो जो भूमिसे कुछ ऊंचा रहे उसमें अन्न स्थापन करके मूसल से उसको कूटो ।”

“हे ऐश्वर्यवाले विद्वान् मनुष्य तुम दो जंघों के समान जिस व्यवहार में अच्छे प्रकार वा असार अलग २ करने के पात्र अर्थात् शिल बट्टे होते हैं उन को अच्छे प्रकार सिद्ध करके शिलवट्टे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के सकाश से सारको प्राप्त हो और उत्तम विचार से उसी को बार बार पदार्थों पर चला । भावार्थ । एक तो पत्थरकी शिला नीचे रक्खे और दूसरी ऊपर से पीसने के लिये बट्टा जिसको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जांय इनसे औषधि आदि पदार्थ पीसकर खावे यह भी दूसरा साधन उखली मूसल के समान बनना चाहिये ।”

हे (इन्द्र) इन्द्रियोंके स्वामी जीव तू जिस कर्म में घर के बीच स्त्रियां अपनी संगि स्त्रियों के लिये उक्त उलूखलों से सिद्ध की हुई विद्या को जैसे डालना निकालनादि क्रिया करनी होती है वैसे उस विद्या को शिक्षासे ग्रहण करती और कराती हैं उस को अनेक तर्कों के साथ सुनो और इस का उपदेश करो ।”

जो रस खींचने में चतुर बड़े विद्वानों ने अनिरुथून काठ के उखली मूसल सिद्ध किये हों जो हमारे ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले व्यवहार के लिये आज तक आदि प्रशंसनीय गुणवाले पदार्थों का सिद्ध करने के हेतु होते होंवे सब मनुष्यों को साधने योग्य हैं ।„

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ ऋ० ८ “ हे उत्तम धनुर्धारी में कुशल अच्छे वैद्यो, तुम पथ्य भोजन चाहनेवालों से इस जलको पिओ इस मूंज के तृणों से शुद्ध किये हुए जल को पिओ अथवा नहीं पिओ इस प्रकार से ही कहो औरों को उपदेश देओ ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ ऋ० ११ “जैसे यह प्रभात वेला लाली लिये हुए सूर्यकी किरणोंके सेनाके समान समूहको जोड़ती और पहले बढ़ती है वैसे पूरी चौबीस (२४) वर्ष की जवान-स्त्री लाल रंगके गौ आदि पशुओंके समूहको जोड़ती पीछे उन्नति को प्राप्त होती--„

(नोट) किसी गांवके रहने वाले कवि ने यह उपरोक्त प्रशंसा पशु चराने वाली स्त्री की की है ॥

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३९ ऋ० २ “ वस्त्रों को ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य ॥ ”

(नोट) इनसे विदित होता है कि उस समय वस्त्र पहननेका प्रचार बहुत नहीं हुआ था जो स्त्री वस्त्र पहनती थी वह प्रशंसा योग्य होती थी ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २८ ऋ० १

" हे बल पराक्रम और अनादि पदार्थोंका पालन करने और कराने वाले विद्वान् तू वस्त्रोंको धारण कर ही। हम लोगोंके इस प्रत्यक्ष तीन प्रकारके यज्ञको सिद्ध कर । „

[नोट] इससे विदित होता है कि उस समय में मनुष्य वस्त्र नहीं पहनते थे इस ही कारण यज्ञके समय वस्त्र पहन कर आने पर ज़ोर दिया गया है॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २८ ऋ० ६

" उत्तम प्रतीत कराने वाले द्वार आदि जिस में उस कल्यान करने शुद्ध वायु जल और सुख वाले गृहको करिये ।„

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५५ ऋ०५-८

" जो मनुष्य जैसे मेरे घरमें मेरी माता सब ओरसे सोवे पिता सोवे कुत्ता सोवे प्रजापति सोवे सब संबन्धी सब ओरसे सोवे यह उत्तम विद्वान् सोवे वैसे तुम्हारे घरमें भी सोवें । „

" हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो अतीव सब प्रकार उत्तम सुखोंकी प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती हैं वा जो प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती वा जो पलंग सोने वाली उत्तम स्त्री विवाहित तथा जिन का शुद्ध गन्ध हो उन सबों को हम लोग उत्तम घरमें सुलावें वैसे तुम भी उत्तम घरमें सुलाओ „

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋ०६-८--१४

" जो खम्भेके लिये काष्ठ काटने वाले और भी जो खम्भेको प्राप्त कराने वाले उन घोड़ोंके बांधनेके लिये किसी विशेष वृक्षको काटते हैं और जो घोड़ेके लिये पकानेको धारण करते और पुष्टि करते हैं। जो उनके बीच निश्चयसे सब ओर से उद्यमी है यह हम लोगोंको प्राप्त होवे„

"हे विद्वान् इस शीघ्र दूसरे स्थानको पहुंचाने वाले बलवान् घोड़ेकी जो अच्छे प्रकार दी जाती है और घोड़ोंको दमन करती अर्थात् उनके बलको दबाती हुई लगाम है जो शिरमें उत्तम व्याप्त होने वाली रस्सी है अथवा जो इसीके मुखमें तृण वीरुध घास अच्छे प्रकार भरी होवे समस्त तुम्हारे पदार्थ विद्वानोंमें भी हों । "

" हे घोड़ेके सिखाने वाले शीघ्र जाने वाले घोड़ोंका जो निश्चित चलना निश्चित बैठना नाना प्रकार से चलाना फिराना और पिछाड़ी बांधना तथा उसको उढ़ाना है और यह घोड़ा जो पीता और जो घासको खाता है वे समस्त उक्त काम तुम्हारे हों और यह समस्त विद्वानोंमें भी हों । "

(नोट) इससे विदित होता है कि घोड़ेकी साईसीका काम उस समय बहुत अद्भुत समझा जाता था ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० १४

" हे विद्वान् ! आपके अनार्यदेशोंमें बसने वालोंमें गायोंसे नहीं दुग्ध आदिको दुहते हैं दिनको नहीं तपाते हैं वे क्या करते वा करेंगे । „

(नोट) इससे विदित होता है कि उस समय ऐसे भी देश थे जहांके रहने

वालोंको दूधको दुहना आदिक भी नहीं आता था ।

जिस प्रकार खेती करने वाले ग्रामीण लोग आज कल अपना बैठना उठना उस ही मकानमें रखते हैं जिसमें ढंगर (पशु) बांधे जाते हैं और वहीं पर अपने गंवारू गीत भी गाते रहते हैं इस ही प्रकार वेदों के बनाने वाले करते थे-"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७३ ऋ० १

"जो सुख सम्बन्धी वा सुखोत्पादक अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त आकाशके बीचमें साधु अर्थात् गगन मंडलमें व्याप्त साम गान को विद्वान् आप जैसे स्वीकार करें वैसे गावें और अन्तरिक्षमें जो करणें उन के समान जो न हिंसा करने योग्य दूध देने वाली गौयें मनोहर जिसमें स्थित होते हैं उस घरको अच्छे प्रकार सेवन करें उस सामगान और उन गौओंको हम लोग सराहें उन का सत्कार करें ॥"

आर्यमत लीला ।

(८)

प्यारे आर्या भाईयो ! हमने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अर्थोंके अनुसार वेदोंके वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध करदिया है कि वेदोंके गीतोंमें ग्रामीण लोगोंने अपने नित्यके व्यवहारके गीतगाये हैं इससे आपको वेदोंको स्वयम् पढ़कर देखने और जांच करनेका शौक अवश्य पैदा होगया होगा जिन भाइयोंको अब भी वेदोंकी जांचकरनेकी उत्तेजना नहीं हुई है, उनके वास्ते हम यहां तक लिखना चाहते हैं कि वेदोंके गीतों के ग्रामीण मनुष्य अपने ग्रामके मुखिया वा चौधरी वा मुकद्दम वा पटैलको ही राजा कहते थे। वेदोंमें राजाका बहुत वर्णन है और राजाकी प्रशंसा में ही बहुधा कर वेद भरा हुआ है परन्तु जिस प्रकार अधिक खेती और अधिक पशु रखने वाले ग्रामीणको वेदों में राजा माना गया है ऐसा ही वेदों में उनकी ग्रामीण बातोंकी प्रशंसा की गई है। इस विषयमें हम स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋचा ५

"हे दुःखका नाश करनेवाले कृषि कर्मकी विद्यामें परिपूर्ण सभा सेनाधीशो तुम दोनों प्रशंसा करनेके लिये भूमिके ऊपर रात्रिमें निवास करते और सुखसे सोते हुए के समान वा सूर्यके समान और शोभाके लिये सुवर्णके समान देखने योग्य रूप फारेसे जोते हुए खेत को ऊपरसे बोओ ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४७ ऋचा २२

"हे सूर्यके सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जो आपके बहुत अश्वोंसे युक्त धन की दश कोशों खजानोंको प्राप्त होनेवाली भूमियों की स्तुति करनेवाला ।"

(नोट) आजकल रैलीब्रादर करोड़ों रुपयाका अन्न हिन्दुस्तानसे विलायत को लेजाता है परन्तु वेदोंमें उसका सबसे ज्यादा ऐश्वर्यवान माना गया है

जिसके दस खाती अनाज हो।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २४ ऋ० ७ "जो राजा आज...ऐश्वर्य युक्तके लिये (सोमम्) ऐश्वर्यको उत्पन्न करें पाकों को पकावें और यवों को भूंजे......बल युक्त मनुष्य को धारण करें वह बहुत जीतने वाली सेनाको प्राप्त होवे।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २७ ऋ० १ "हे राजा जो शत्रुओंकी हिंसा करने वाले बलसे कामना करते हुए आप मनुष्य जिस में बैठते वा गौयें जिसमें विद्यमान ऐसे जाने के स्थान में हम लोगों को अच्छे प्रकार सेविये।"

(नोट) ग्रामीण लोगोंके बैठनेका वह ही मकान होता है जिस में गौ आदि पशु बांधे जाते हैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १५ ऋ० १६ "हे सुन्दर सेना वाले विद्वान् राजन् प्रसिद्ध आप सम्पूर्ण विद्वानों वा वीर पुरुषोंके साथ बहुत ऊर्णाके वस्त्रों से युक्त गृहमें वर्त्तमान हो।"

(नोट) यह हमने पहले सिद्ध किया है कि वेदोंके समय में वस्त्र पहननेका प्रचार बहुत कम था और राजा आदिक बड़े आदमी जो वस्त्र पहनते थे उनकी बहुत प्रशंसा होती थी और ऐसा मालूम होता है कि रूईका कपड़ा बुनने की विद्या उनको मालूम नहीं थी वरण ऊनसे ही कम्बल आदिक बना-लेते थे।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २४ ऋ० ४ "हे बहुत सामर्थ्यवान् दुःखके नाश करने वाले बुद्धि और प्रजासे युक्त आप की गौओं की गतियोंके सदृश अच्छे प्रकार चलने वाली भूनियां और सामर्थ्य वाली बछड़ोंकी विस्तृत पंक्तियों के सदृश आपकी प्रजा हैं।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २९ ऋ० ४ "हे विद्वानोंमें अग्रणी जनों, जिसराजा के होने पर पाक पकाया जाता है भूंजे हुए अन्न हैं चारों ओर से अत्यंत मिला हुआ उत्पन्न (सोम) ऐश्वर्यका योग वा ओषधिका रस होता है... ...वह आप हम लोग के राजा हूजिये।"

(नोट) यह हम अगले लेखोंमें सिद्ध करेंगे कि भंगको सोमरस कहते थे देखो वेदोंके समय में जिस राजाके राज्य होनेके समयमें भोजन पकाया जावे और भुना हुआ अनाज और भंगबाटी जावे उसकी प्रशंसा होती थी

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४५ ऋ० २४ जो दुष्ट चोरोंको मारने वाला राजा बुद्धि वाले कर्मोंसे अत्यंत विभाग करने वालेके प्रशंसित गौवें विद्यमान और चलते हैं जिस में उसको प्राप्त होता है वह ही हम लोगों को स्वीकार करे

(नोट) जिस राजाके यहां गऊ और बछड़ेके वास्ते सवारी उसकी प्रशंसा की गई है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ० ६ "हे परम बलवान...जो आपकी समस्त गौएं ही भोगनेके कान्तियुक्त फलको पूरा करती और अच्छे प्रकार भोजन करने योग्य दुग्धादि पदार्थ को पूरा करती।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १११ ऋ० २ "हे सूर्यके समान वर्त्तमान राजन् आप के जो प्रवल ज्वान वृषभ उत्तम अन्न का योग करने वाले शक्ति बन्धक और रमण साधन रथ और निरन्तर गमन शील घोड़े हैं उनको बलवान करो अर्थात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्य कारी करो।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १६ "जो ऐश्वर्य युक्त शत्रुओंको विदीर्णकरने वाला शुभ गुणोंसे व्याप्त राजा पके हुए दूधको पीने वा वर्षने वा जल करने वाले सेनापतिको पाकर अनैश्वर्य को दूर करता है।,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० ८ "हे सभाध्यक्ष......उत्तम यव आदि औषधि होने वाले देश को प्राप्त कीजिये।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ७ "हे सुखकी भावना कराने वाले सूर्य्य और बिजुलीके समान सभा सेनाधीशो आप दोनों जो ये प्रशंसा यें प्रशंसा करती हैं उनसे सब ओर से उत्पन्न किये हुए दूध आदि रसको पिओ।"

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३१ ऋ० १ "सेनाका ईश गौओंका पालन करने वाला।,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २७ ऋ०१३ "जो पवित्र हिंसा अर्थात् किसीसे दुख को न प्राप्त हुआ राजा जिनसे अच्छे जौ आदि अन्न उत्पन्न हों उन जलों के निकट बसता है।,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३८ ऋ०४ "हे पुष्टि करने वाले जिनके छेरी (बकरी) और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे,,

ग्रामीण लोगोंमें जैसे खेती आदिका काम अन्य मनुष्यों से कुछ अधिक जानने वाला बुद्धिमान गिना जाता है। इस ही प्रकार वेदोंमें जिनको विद्वान् वर्णन किया गया है वह ऐसे ही ग्रामीण लोगथे यथा:—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० २ विद्वानोंकी पूजा स्तुति करते हैं जो कृषि-शिक्षा दें मित्रोंके मित्रहों दूध देने वाली गौके सुख देने वाले द्वारों को जाने उत्तम यव आदि अन्न और उत्तम धनके देने वाले हैं।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४४ ऋ० ६ "हे सूर्यके समान प्रकाशमान विद्वान् आप ही पशुओंकी पालना करने वाले के समान अपने से अन्तरिक्ष में हुई वृष्टि आदि के विज्ञान को प्रकाशित करते हो।,, ऋ० ५ ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ७ "हे सब विषयों को धारण करने वाले विद्वान् जो मनोहर गौओं से वा बैलों से वा जिन में आठ सत्यासत्यके निर्णय करने वाले चरण हैं, उन वाणियों से बुलाये हुये आप हम लोगोंके लिये सुख दियेहुए हैं जो हम लोगोंसे सत्कार पाने योग्य हैं।,, ऋ० ६ ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त

२७ " हे विद्वान लोगो ! हमको—उपदेश करो और जो यह बड़ी कठिनता से टूट फूटे ऐसे विद्याभ्यासादि के लिये बना हुवा घर है वह हमारे लिये देओ ।,'

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ३ " कल्यान के कहने वाले होते हुवे आप उत्तम घरोंके दाहिनी ओर से शब्द करो अर्थात उपदेश करो जिससे चोर हम लोगोंको कष्टदेने को मत समर्थ हो ।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २१ ऋ० १ "हे संपूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता चिकने घृत और छोटे पदार्थोंके दाता विद्वान ।,,

आर्यमत लीला ।

(९)

राजपूताने के पुराने राजाओं की कथाओं के पढ़ने से मालूम होता है कि राजा लोग लड़ाई में भाटों को अपने साथ ले जाया करते थे जो लड़ाई के कबित्त सुना कर बीरोंको लड़ने की उत्तेजना दिया करते थे। इस प्रकार के गीत वेदों में बहुत मिलते हैं। हम स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से कुछ वाक्य इस विषय के नीचे लिखते हैं॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७५ ऋचा ३ "हे सेनापति जिस कारण शूरवीर निडर सेना को संविभाग करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचना से बांटने वाले आप मनुष्यों और युद्ध के लिये प्रवृत्त किये हुए रथ को प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध समय में आगे को बढ़ावें और बलवान आप दीपते हुए अग्नि की लपट से जैसे काष्ठ आदिके पात्रको वैसे दुःशील दुराचारी दस्यु को जलाओ इस से मान्यभागी होओ ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० ५ ८–१० " जो सूर्य्य के समान अपने शस्त्रों की वृष्टि करता हुवा शत्रुओं को प्रगल्भतादि खाने द्वारा शत्रुओं को छदन करने वाले शस्त्र समूह से युक्त सभाध्यक्ष हर्ष में इस युद्ध करते हुए शत्रु के ऊपर मध्य टेढी तीन रेखाओं से सब प्रकार ऊपर की गोल रेखा समान बलको सब प्रकार भेदन करता है,,–हे सभापति भुजाओंके मध्य लोहे के शस्त्रों को धारण कीजिये बीरों को कराइये ॥

"बलकारी बज्र के शब्दोंसे और भयसे बलके साथ शत्रु लोग भागते हैं॥"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६३ ऋचा २-६-७ "हे सभाध्यक्ष-जिस वज्र से शत्रुओं को मारते तथा जिस से उनके बहुत नगरों को जीतनेके लिये इच्छा करते और शत्रुओं के पराजय और अपने विजय के लिये प्रतिक्षण के जाते हो इससे सब विद्याओं की स्तुति करने वाला मनुष्य आप के भुजाओं के बल के आश्रय से वज्र को धारण करताहै।

हे सभाध्यक्ष संग्राम में आप को निश्चय करके पुकारते हैं ।,,

हे उत्तम शस्त्रों से युक्त"सभा के अधिपति शत्रुओंके साथ युद्ध करते हुवे

जिस कारण तुम उन २ शत्रुओं के नगरों को विदारण करते हो" इस कारण आप इन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हो ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३

अपनी सभाओंका शत्रुओंके साथ अच्छे प्रकार युद्ध करा शत्रुओं को मारनेवाले ......आप का यश बढ़ेगा ।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४६ ऋ० २

प्रसिद्ध वीरों को लड़ाइये शत्रुओंको पराजय को पहुंचाइये ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋचा १

ऋतु २ में यज्ञ करने हारे हम लोग संग्राम में जिस वेगवान विद्वानों से वा दिव्य गुणों से प्रगट हुए घोड़े के पराक्रमों को कहेंगे उस हमारे घोड़े के पराक्रमों को मित्र श्रेष्ठ न्यायाधीश ज्ञाता ऐश्वर्यवान बुद्धिमान और ऋत्विज् लोग छोड़के मत कहैं और उसके अनुकूल उसकी प्रशंसा करें ।

ऋग्वेद चौथामंडलसूक्त१८ ऋ०६का भावार्थ

जैसे नदियां अलल अरोती हुई उच्चस्वर करती हुई तटों को तोड़ती हुई जाती हैं वैसेही सेना शत्रुओं के सन्मुख प्राप्त होवे ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १९ ऋ० ८

सेना से शत्रुओं का नाश करो जैसे नदी तटको तोड़ती है ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४१ ऋचा २

वह महाशयों के साथ संग्रामों में शत्रुओं की सेनाओं और शत्रुओं का नाश करता है उसको यशस्वी सुनता हूं ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ६ ऋचा ४

हे मनुष्यो जो मनुष्योंमें उत्तम २ वाणियों से बुरा चलना जिसमें हो उस अन्धकारमें आनन्द करती हुई पूर्वको चलने वाली सेनाओं को करता है... उसका हम लोग सत्कार करें । „

वेदोंमें बहुत से गीत ऐसे मिलते हैं जो योधा लोग अपनी शूरवीरता की प्रशंसामें और लड़ाई की उत्तेजना में गाया करते थे तथाः—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६५ ऋ० ६-८

" जैसे बलवान् तीव्र स्वभाव वाला मैं जो बलवान् समग्र शत्रुके वधसे न्हवाने वाले शस्त्र उनके साथ नमता हूं उसी मुझको तुम सुखसे धारण करो ।"

" हे प्राणके समान प्रिय विद्वानो ! जिसके हाथमें वज्र है ऐसा होने वाला मैं जैसे सूर्य मेघको मार जलों को सुन्दर जाने वाले करता है वैसे अपने क्रोधसे और मन से बलसे शत्रुओंको मारता हूं । „

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३७ ऋ० १

" हे सेना के अधीश जैसे हम लोग मेघके नाश करनेके लिये जो बल उस के लिये सूर्यके समान संग्राम के सहने वाले बलके लिये आपका आश्रय करते हैं वैसे आप भी हम लोगोंको इस बल के लिये वर्तो । "

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४ ऋ० १

" आपके साथ संग्रामको करते वा कराते हुए हम लोग मरण धर्म वाले शत्रुओंकी सेनाओं को सब ओरसे जीतें इससे धन, और यशसे युक्त होवें„

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदों के अर्थों से यह मालूम होता है कि वेदों के गीतोंके बनानेके समय में एक ग्राम वासियोंका दूसरे ग्राम वासियोंसे नित्य युद्ध रहा करता था और बहुत कुछ मार धाड़ रहती थी—आज कल भी देखनेमें आता है कि एक ग्राम वाले दूसरे ग्राम वाले की खेती काट लेते हैं पशु चुरा लेजाते हैं वा सीमापर झगड़ा हो जाता है परन्तु सब ग्राम वाले एक राज्यके आधीन होनेके कारण आज कल लड़ाई नहीं बढ़ती है बरण अदालतमें मुकदमा चलाया जाता है परन्तु उस समय जैसा हमने गत लेखमें सिद्ध किया है **ग्रामका चौधरी वा मुखिया ही उस ग्रामका जमीन्दार वा राजा होता था** इस कारण ग्राम के सब लोग उसहीके साथ होकर दूसरे ग्रामवालों से लड़ा करते थे और मनुष्य वध किया करते थे--उस समय कोई कोई राजा ऐसा भी होता था जो दो चार वा अधिक ग्रामोंका राजा हो और लड़ाई में कई २ ग्राम के राजा भी सम्मिलत होजाया करते थे- **वेदोंमें शत्रुओं को जान से मारडालने और उनके नगरोंको विध्वंस करने की प्रेरणा के विषयमें बहुत अधिक गीत भरे हुए हैं** स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थों के अनुसार तो हमारे अनुमान में प्रायः **एक तिहाई वेद शत्रुओंके मारने की ही ऋचाओंसे भरा हुआ है**

ऐसा भी मालूम होता है कि संग्राम लूटके वास्ते भी होता था अर्थात् शत्रुओंको पराजय करके उनको लूटलेते थे और लूटको योद्धा लोग आपस में बांट लेते थे इस स्वामी दयानन्द के वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य इस विषयमें नीचे लिखते हैं—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३७ ऋ० ५

" जिस प्रकार सेना का अधीशमैं--शत्रुके नाशके लिये तथा संग्रामोंमें **धन आदि को बांटनेके लिये** राजाको समीप मैं कहता हूं वैसे आप लोग भी इसके समीप कहो-,,

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६२ ऋ० ९

" जिससे हम लोग **विभाग करते हुए शत्रुओंके धनोंको जीतने**की इच्छा करने वाले होवें-,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २७ ऋचा १०

" आप के रक्षण आदि से हम लोग सात नगरियोंका विभाग करें। ,,

वेदोंके गीतोंके बनाने वाले कवियों का ऐसा विचार था कि मेघ अर्थात् बादल पानीकी पोट बांध लेता है और पानी को भूमि पर नहीं गिरने देता है-सूर्य्य जो मनुष्यों का बहुत उपकारी है वह बादल से युद्ध करता है और मार मार कर बादलोंको तोड़ डालता है तब पानी बरसता है वेदों के कवियों ने बादलोंको मार डालनेके का-

इस सूर्य्य को महान योद्धा और साहसी माना है वेदों के गीतों में वेदों के कवियों ने योद्धाओं और वीर पुरुषों की प्रशंसा करते समय वा उन को युद्ध की उत्तेजना करते समय यह ही दृष्टान्त दिया है कि जिस प्रकार सूर्य्य मेघों को मारता है इस प्रकार तुम शत्रुओं को मारो हमारे अनुमान में तो वेदों में एक हजार बार वा इस से भी अधिक बार यह ही दृष्टान्त दिया गया है बरन ऐसा मालूम होता है कि वेद बनाने वाले कवियोंके पास इस दृष्टान्त के सिवाय कोई और दृष्टान्त ही नहीं था-इस प्रकार वेदों में हजारों बार कहे हुवे एक दृष्टान्त के हम पांच सात वाक्य नमूने के तौर पर लिखते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १७ ऋचा १

हे शस्त्र है हस्त में जिनके ऐसे-मेघोंको सूर्य्य जैसे वैसे सम्पूर्ण शत्रुओं को आप विशेष करके नाश करिये।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋ०१-६-११

हे विद्वान् मनुष्यो तुम लोग जैसे सूर्य्य के जिन प्रसिद्ध पराक्रमोंको कहो उनको मैं भी शीघ्र कहूं जैसे वह सब पदार्थों के छेदन करनेवाले किरणोंसे युक्त सूर्य्य मेघ को हनन करके वर्षाता उस मेघ के अवयव रूप जलों को नीचे ऊपर करता उसको पृथिवी पर गिराता और उन मेघों के सकाश से नदियों को छिन्न भिन्न करके बहाता है मैं वैसे शत्रुओं को मारूं उनको इधर उधर फेंकूं और उन की तथा किला आदि स्थानों से युद्ध करने के लिये आई सेनाओं को छिन्न भिन्न करूं।

दुष्ट अभिमानी युद्ध की इच्छा न करने वाले पुरुष के समान पदार्थों के रसको इकट्ठे करने और बहुत शत्रुओं को मारने हारे के तुल्य अत्यन्त बल युक्त शूरवीर के समान सूर्य्य लोक को ईर्ष्या से पुकारते हुए के सदृश वर्तता है जब उसको रोते हुए के सदृश सूर्य ने मारा तब वह मारा हुवा सूर्यका शत्रु मेघ सूर्य्य से पिस जाता है और वह इस सूर्य की ताड़नाओं के समूह को सह नहीं सका और निश्चय है कि इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई नदियां पर्वत और पृथिवी के बड़े बड़े टीलों को छिन्न भिन्न करती हुई वहती हैं वैसे ही सेनाओंमें प्रकाशमान सेनाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करें॥

जल को मेघ रोके हुवे होते हैं ढके रखते हैं सूर्य्य मेघ को तोडकर जल बरसाता है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६२ ऋचा ४

जैसे सूर्य्य मेघ को हनन करता है वैसे शत्रुओं को विदारण करते हो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३

सूरज मेघ को जिस प्रकार हनन करता है इस प्रकार शत्रु को मारनेवाले सभापति।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१ की ऋ० ११ का आशय

जिसप्रकार सूर्य मेघको मारताहै

इस तरह शत्रुओंको मारकर ऐसी नींद सुलाओ कि वह फिर न जागे ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ८

जसे सूर्य मेघको पीसता है वैसे आप शत्रुओं का नाश करो ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० २

सूर्य्य जैसे मेघों को तोड़ता है वैसे हम लोग भी शत्रुओं के नगरोंके मध्य में वर्तमान वीरों को नाश करें।

शत्रुओं को मारने के गीतों में तो साराही वेद भरा पड़ा है परंतु उसमेंसे हम कुछ एक वाक्य स्वामी दयानन्दके वेद भाष्य से नीचे लिखते हैं ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋचा ३

हे सूर्यके समान वर्तमान इन संग्रामों में "उत्तहोम करने वाले के समान शत्रुओं को युद्ध की आग में होमते हुए अग्नि के समान ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋचा ५

जिन अग्नि वायुसे शत्रुजन पुत्रादि रहित हों उनका उपयोग सब लोग क्यों न करें ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋचा१२

आप शत्रुओंको बांध शस्त्रोंसे काटते हैं इस ही कारण यद्धोंमें हम आपको अधिष्ठाता करते हैं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३९ ऋचा३

जिस प्रकार वायु अपने बल से वृक्षादि को उखाड़ के तोड़ देती है वैसे शत्रुओंकी सेनाओंको नष्ट करो और निश्चयसे इन शत्रुओंको तोड़ फोड़ उलट पुलट कर अपनी कीर्ति से दिशाओं को अनेक प्रकार व्याप्त करो ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋ०२१

"डाकू दुष्ट प्राणीको अग्नि से जलाते हुये अत्यंत बड़े राज्यको करो ।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३३ ऋ० २

"शत्रुओंके शिरोंको छिन्न भिन्न कर। „

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० १

"इन प्रतिकूल वर्तमान शत्रुओंको भस्म करिये । „

ऋगवेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ०६

"दूरस्थल में विराजमान शत्रुओं की हिंसा करो ।"

ऋगवेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ०१५

"जो मारनेके योग्य बहुत विशेष शस्त्रों वाले शत्रु मनुष्य हों उनका नाश करके बढ़िये ।"

ऋगवेद चौथा मंडल सूक्त ४ ऋ०४-५

"शत्रुओंके प्रति निरन्तर दाह देओ ।„

"शत्रुओंका अच्छे प्रकार नाश करिये और वार वार पीड़ा दीजिये ।„

ऋगवेद चौथा मंडल सूक्त १३ ऋ०३

"शस्त्र को प्राप्त होते हुए बलसे शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओंका नाश करके रुधिरोंको बहाओ ।"

स्वामी दयानन्दजीके अर्थों के अनुसार वेदोंके पढ़ने से यह भी मालूम होता है कि जिन ग्राम वासियों ने वेदके गीत बनाये हैं उनकी कुछ विशेष ग्राम वासियों से शत्रुता पूरी २

जनी हुई थी और उन शत्रुओंको और उनके नगरोंको सर्वथा नाश करना चाहते थे और बहुतसे ग्रामों वाले मिलकर इनके शत्रु हो गये थे। यथाः—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७४ ऋ० ८

"हे सूर्य्य के समान प्रतापवान राजन् आप युद्ध की निवृत्तिके लिये हिंसक शत्रुजनोंको सहते हो। आप जैसे प्राचीन शत्रुओं की नगरियों को छिन्न भिन्न करते हुए वैसे भिन्न अलग २ शत्रुजनोंको दुष्ट नगरियोंको नमाते ढहाते हो उससे राक्षस पन संचारते हुये शत्रुगणोंका नाश होता है यह जो आप के प्रसिद्ध शूरपनेके काम हैं उनको नवीन प्रजा जन प्राप्त होवें।"

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त१८ ऋ० १३

"जैसे परम ऐश्वर्य्यवान् राजा बल से इन शत्रुओं के सातों पुरों को विशेषता से छिन्न भिन्न करता।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ३१ ऋचा ४

"हे राजन् आप शत्रुके सैकड़ों नगरों का नाश करते हो।,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७३ ऋचा २

शत्रुओंको मारता हुआ तथा धनोंको प्राप्त होता हुआ शत्रुओं के नगरोंको निरन्तर विदीर्ण करता है वह ही सेनापति होने योग्य है।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४१ ऋचा ३

"जो राजा लोग इन शत्रुओंके (दुर्ग) दुःखसे जाने योग्य प्रकोटों और नगर को छिन्न भिन्न करते और शत्रुओंको नष्ट करदेते हैं वे चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त होने को समर्थ होते हैं।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७-८

आप इस शत्रुओंके नगर को नष्ट करते हो दुष्ट मनुष्यों के सकड़ों नगरों को भेदन करते हो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋचा ६

आप दुष्टों के ९९ नगरोंको नष्ट करते हो।"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० ऋ०७०

"आप शत्रुओं की नब्बे नगरियोंको बिदारते नष्ट भ्रष्ट करते।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त३४ ऋ० १

"हे राजपुरुष शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाले आप शत्रुओं का उल्लंघन करो।

ऋगवेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋ० ३०

"जो तेजस्वी सूर्य के सदृश प्रकाशके सेवने वाले और देने वाले के लिये मेघों के समूहों के सदृश पाषाणों से बने हुए नगरों के सैकड़े को काटे वही विजयी होने के योग्य होवै।"

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १०

"हे राजन् कामना करते हुए आप शत्रुओं की जो सेविकाओं (दासियों) के सदृश सब प्रकार रोग युक्त नगरियों को सब ओरसे प्राप्त हो कर जीतते हों उन आपके बल पराक्रमसे युक्त कर्मों का हम लोग उपदेश करें।";

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ०१४

"जिन्हों ने परमैश्वर्य युक्त राजाके समस्त ही पराक्रम उत्पन्न किये वे अपने

को भूमि चाहते और दुष्ट अधर्मी जनों को मारने की इच्छा करते हुए साठवीर अर्थात् शरीर और आत्माके बल और शूरता से युक्त मनुष्य छः सहस्र शत्रुओं को अधिकतासे जीतते हैं वे भी छासठ सैकड़े शत्रु जो सेवन की कामना करता है उसके लिये निरंतर सोते हैं।"

आर्यमत लीला ॥

(१०)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा है कि आदि सृष्टि में एक मनुष्य जाति थी पश्चात् श्रेष्ठों का नाम आर्य विद्वान देव और दुष्टों का दस्यु अर्थात् डाकू मूर्ख नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम हुए आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए-जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग यहां आकर बसे और इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ—

वेदों के पढ़ने से भी यह मालूम होता है कि जिनके साथ वेदोंके गीत बनाने वालों की लड़ाई रहती थी और नित्य मनुष्यों को मारकर खून बहाया जाता था उन को बहुधाकर वेदों में दस्यु लिखा है-इस से भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाश नहीं किये बरण जब कि दस्यु लोगोंके साथ लड़ाई हुआ करती थीं और मकान और नगर और कोट और दुर्ग अर्थात् किले बन गए थे उस समय वेदों के गीत बनाये गये हैं-वेदों में स्वामी जी के अर्थों के अनुसार दस्यु लोगों को कृष्ण वर्ण अर्थात् काले रंग के मनुष्य वर्णन किया है-जिस से मालूम होता है कि स्वामी जी ने जो दस्यु का अर्थ चोर डाकू किया है वह ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टि की आदि में चोर डाकू हो जाने से क्या कोई मनुष्य काले रंग का हो जाता था इस से यह ही मालूम होता है कि जो लोग अपने को आर्य कहते थे वह अन्य देश के रहने वाले थे और काले रंग के दस्यु अन्य देश के रहने वाले थे अर्थात् अंग्रेजोंका कथन इस से सत्य होता मालूम होता है कि आर्य लोगों का हिन्दुस्तान में भील गोंड़ संथाल आदि जंगली और काले वर्णों की जातियों से बहुत भारी युद्ध रहा-

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि आर्य और दस्यु लोगों का जब बहुत उपद्रव रहने लगा तब लाचार होकर अर्थात् हारकर आर्य लोग तिब्बत से इस हिन्दुस्तान देशमें भाग आये परंतु आश्चर्य है कि वेदों को ईश्वर का

वाक्य बताया जाता है और ईश्वर ने वेदों में चिल्ला २ कर और बार बार बरण हजारों बार यह कहा है कि तुम्हारी जीत हो, तुम शत्रुओं को मारो और दस्युओं का नाश करो परंतु ईश्वर का एक भी वाक्य सच्चा न हुआ और आर्यों को ही भागना पड़ा-

स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में यह भी लिखा है कि आर्यावर्तदेश से दक्षिण देश में रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस है, परन्तु वेदों में राक्षसों से भी युद्ध करने और उनका सत्यानाश करने का वर्णन है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि वेदों के गीतों के बनाने के समय आर्य्यावर्त देश से दक्षिण में रहने वाले मनुष्यों से भी लड़ाई होती थी। तिब्बत आर्य्यावर्त देश के उत्तर में है और राक्षस आर्य्यवर्त देश से दक्षिण में है इस हेतु राक्षसों से लड़ाई हो नहीं सक्ती जब तक लड़ने वाले आर्य्यावर्त में न बसते हों। इस से स्वामी जी का **यह कथन सर्वथाही झूठ होता है कि तिब्बत देश में सृष्टि की आदि में वेदों का प्रकाश किया गया और तिब्बत से आने से पहले किसी देश में कोई मनुष्य नहीं रहता था** क्योंकि यदि कोई मनुष्य नहीं रहता था तो आर्य्यावर्त देश के दक्षिण में राक्षस लोग कहां से उत्पन्न हो गये? अर्थात् तिब्बत देश में प्रथम मनुष्यों का उत्पन्न होनाही सर्वथा असंगत होता है और यह ही मालूम होता है कि सर्व ही देशों में मनुष्य रहते चले आये हैं।

दस्यु और राक्षसोंको विध्वंस करने के विषय में जो गीत वेदों में हैं उन में से कुछ वाक्य स्वामी जी के अर्थों के अनुसार नीचे लिखे जाते हैं।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त १६ ऋचा १२-१३

सहस्रों (दस्यून्) दुष्ट चोरों को शीघ्र नाश कीजिये समीप में छेदन कीजिये सहस्रों कृष्णवर्ण वाले सैन्य जनों का विस्तार करो और दुष्ट पुरुषों का नाश करो।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त २८ ऋचा ४

(दस्यून) दुष्टों को सबसे पीड़ा युक्तकरैं

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋचा १५

पांचसौ वा सहस्रों दुष्टों का नाश करो

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३८ ऋचा १

हे राजन आप और सेनापति डरते हैं दस्यु जिससे ऐसे होते हुए।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ८४ ऋचा ६

हे बलवान के पुत्र-वध से (दस्यु) साहस कर्मकारी चोर का अत्यंत नाश करो।

ऋग्वेद पंचम मंडलसूक्त २९ ऋचा १०

मुख रहित (दस्यून्) दुष्ट चोरों का वध से नाश करिये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३० ऋ० ३

जिससे हम लोग सदारोंसे (दस्यून्‌के) दुष्ट चोरों का नाश करैं॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा २

दस्युकानाश करिये

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋचा ५

हे सभाध्यक्ष-(दस्यु हत्येषु) डाकुओं के हननरूप संग्रामों में उन को छिन्न भिन्न कर दीजिये।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३१ ऋ० २२

हे वीर पुरुषो जैसे हम लोग रक्षा आदिके लिये मेघोंकेअवयवों को सूर्य के समान इस वर्त्तमान पुष्ट करने के योग्य अन्न आदि के विभाग कारक संग्राम में धनों के उत्तम प्रकार जीतने वाले अति प्रधान संग्रामोंमें नाश करते और सुनते हुए तेजस्वी वृद्धि कर्ता अत्यंत धन से युक्त शत्रुओं के बिदारने वाले का स्वीकार वा प्रशंसा करें वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान करें—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ९

दस्यूका नाश करके आर्योंकी रक्षाकरें

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४९ ऋ० २

शत्रुओं को दुख देनेवाले बीरों के साथ दस्यु के आयुः अवस्था का शीघ्र नाश करें उसको सब का स्वामी करो-

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७

असुर का अर्थ शत्रु ॥

अनेक प्रकार के रूप वा विकारयुक्त रूप वाले शत्रु ॥

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४ऋ० १-१५

सन्ताप देने वाले शस्त्र आदिकों से (राक्षसः) दुष्टों को पीड़ा देओ—

(राक्षसः) दुष्ट वरणों को भस्म कीजिये

वेदों के पढ़ने से मालूम होता है कि वेदों के समय में प्रायः तीर और वज्र अर्थात् गुर्ज यह दोही हथियार थे। धनुष के द्वारा तीर चलाते थे और गुर्ज हाथ में लेकर शत्रु को मारते थे। और तीरों की आघात से बचने के वास्ते कवच जिसको फ़ारसी में ज़रा बक्तर कहते हैं पहनते थे। तीर और गुर्ज और कवच का कथन वेदों के अनेक गीतों में आया है। इन के सिवाय और किसी अस्त्र शस्त्र का नाम नहीं मिलता है। परन्तु आज कल तोप और बन्दूक जारी होगई हैं जिनके सामने तीर और वज्र सब हेच हो गये हैं और तोप बंदूक के गोले गोलियों के मुकाबिले में कवच से कुछ भी रक्षा नहीं हो सकती है। इसही कारण आज कल कोई फ़ौजी सिपाही कवच नहीं पहनता है। और आज कल तोप और बंदूक भी नित्य नई से नई और अद्भुत बनती जाती हैं। यद्यपि वेदों में तीर, वज्र और कवच के सिवाय और किसी हथियार का वर्णन नहीं है परन्तु जिस प्रकार वेदों के गंवारू गीतों में स्वामी जी ने कहीं कहीं रेल और रेल के ऐंजिन और दुखानी जहाज़ का नाम अपने अर्थों में ज़बरदस्ती घुसेड़ दिया है, इस ही प्रकार ऋग्वेद प्रथम मंडलके सूक्त ८ की ऋचा ३ के हिन्दी अर्थ में तोप बंदूक आदिक सब कुछ प्रकाश कराया है अर्थात् इस प्रकार लिखा है।

हम लोग धार्मिक और शूरवीर हो कर अपने विजय के लिये (वज्रं) शत्रुओं के बलका नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और (घना) श्रेष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तोप बंदूक तलवार और धनुषबाण आदि कर के प्रसिद्ध करते हैं जो युद्ध की सिद्धि में हेतु हैं उन को ग्रहण करते हैं।

बुद्धिमान पुरुषो ! विचार करो कि **वज्र और घना** इन दो शब्दों के अर्थ में किस प्रकार तोप बंदूक आदिक अनेक हथियार घुसेड़ गये हैं ? परन्तु हमारा काम यह नहीं है कि हम स्वामी जी के अर्थों में गलती निकालें क्योंकि हम तो प्रारम्भ से वेदों के विषय में जो कुछ लिख रहे हैं वह स्वामी जी के ही अर्थों के अनुसार लिखरहे हैं और आगामी भी उनही के अर्थों के अनुसार लिखेंगे । इस कारण हमतो केवल इतनाही कहना चाहते हैं कि वेदों में कहीं भी तोप बंदूक के बनाने की विधि नहीं बताई गई है वरण तीर, कमान, वज्र वा घना के बनाने की भी विधि नहीं सिखाई है जिस से यह ही ज्ञात होता है कि वेदों के प्रकाश से पहले से मनुष्य तोप बंदूक आदिक का बनाना जानते थे जिससे **वेदों का सृष्टि की आदिमें उत्पन्न होना और वेदों के विना मनुष्यों का अज्ञानी रहना बिल्कुल अप्रमाण सिद्ध होजाता है** परन्तु जो कुछ भी हो उन का कथन कितना ही पूर्वापर विरुद्ध हो जावे और चाहे उन के सारे सिद्धान्त आप से आप खंडित होजावें परन्तु स्वामीजी को तो रेल तारवर्की, और तोप बन्दूक का नाम किसी न किसी स्थान पर लिख कर यह ज़ाहिर करना था कि वेदों में सर्व प्रकारकी विद्या भरी हुई है । अब हम स्वामी दयानन्दजीके ही वेदों के अर्थोंको नीचे लिखकर दिखाते हैं कि किस प्रकार वेदोंमें तीर और गुर्ज और कवचकाही वर्णन किया है और उन की अवस्था ऐसे ही हथियारोंके धारण करनेकी थी । वेदोंके गीत बनाने वाले ग्रामीण लोग तोप बन्दूकको स्वप्न में भी नहीं जानते थे । और यदि उस समय तोप बन्दूक होते तो शरीर को कवचसे क्यों ढकते ? ॥

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १६ ऋ०२-५

"बिजुली के तुल्य वज्रको दुष्टों पर प्रहार कर-हे हाथमें वज्र रखने वाले"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २२ ऋचा ९

"दाहिने हाथ में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रको धारण करिये ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा १

"भुजाओं में वज्र को धारण करते हुए जाते हो ।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २७ ऋचा ६

"तीस सैकड़े कवच को धारण किये हुए।"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७५ ऋचा १-१६-१८

" हे वीर...कवचधारी होकर अ-नविध शरीरसे तुम शत्रुओं को जीतो सो कवचका महत्व तुम्हें पाले „

" हे बाणों को व्याप्त होने वालों में बलम मैं तेरे शरीरस्थ जीवन हेतु अं-गोंको कवचसे ढांपता हूं । "

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ० १६

" इन शत्रुओंमें अतिशय तपते हुए बज्रको फंकके इनको उत्तम प्रकार वि-नाश कीजिये । „

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० २४

" संग्राममें धनुषकी तांत के शब्दको नित्य सब प्रकार प्राप्त करते हैं उसकी और उन की आप अपने आत्माके स-दृश रक्षा करो । „

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३३ ऋचा ७

" संग्राममें त्वचाको आच्छादन क-रने और रक्षा करने वाले कवच को देते हुए । „

ऋ० पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋचा ११

" जो सुन्दर बाणोंसे युक्त उत्तम ध-नुष वाला । „

आर्यमत लीला ।

(११)

प्यारे आर्य भाइयो ! आधा वेद ल-ड़ाई करने शत्रुओं को मारने, मनुष्यों का खून करने और लूटमार आदिक की प्रेरणा और उत्तेजनामें वा राजासे रक्षा की प्रार्थना में भरा हुआ है । जिस का नमूना हम भली भांति पि-छले लेख में स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके अर्थों के अनुसार दिखा चुके हैं। अब हम सोमका वर्णन करते हैं जिसके कथन में भी अनुमान एक चौथाई वेद भरा हुआ है। सोम एक मद करने वाली वस्तु थी जिसको उस समयके लोग इकट्ठे होकर पीते थे । वेदों में सोम पीने की बहुत अधिक प्रेरणाकी गई है सोम पीने के वास्ते मित्रों को बुलाने के बहुत गीत गाये गये हैं प-रन्तु यह नहीं बताया है कि सोम क्या वस्तु है? स्वामी दयानन्द सर-स्वती जीने वेदोंके अर्थ करने में सोम का अर्थ औषधिका रस वा बड़ी ओ-षधिका रस वा ओषधि समूह वा सो मलता वा सोमवल्ली किया है। पर-न्तु यह आपने भी नहीं बताया कि जिस सोम पीने की प्रेरणामें एक चौ-थाई वेद भरा हुआ है वह सोम क्या औषधि है। वेदोंमें सिवाय इस सोम के और किसी औषधिका वर्णन नहीं है और न किसी रोगका कथन है । इस कारण स्वामी जीको बताना चा-हिये था कि यह क्या औषधि है और किस रोग के वास्ते है ।

केवल औषधि कह देनेसे कुछ काम नहीं चलता है क्योंकि जितनी खाने की वस्तु हैं वह सब ही औषधि हैं अन्न भी औषधि है और दूध भी, श-राब भी औषधि है और संखिया भी ऐसा मालूम होता है कि स्वामी जी को यह सिद्ध करना था कि संसारभर में जो विद्या है चाहे वह किसी विष-य की हो वह सब वेदोंमें है और वेदों

से ही संसार के मनुष्यों ने सीखी है वेदों से भिन्न मनुष्य को किसी प्रकार की भी विद्या नहीं हो सकती है। स्वामी जी ने वेदभाष्य भूमिका में वेद की एक ऋचा लिखकर जिसमें यह विषय था कि एक और एक दो और दो और एक तीन होता है यह सिद्ध कर दिया है कि वेदों में सारी गणित विद्या भरी हुई है। और किसी किसी स्थान में ज़बरदस्ती रेल, तारवर्की और आग पानी के अंजिन का नाम घुसेड़ कर यह विदित कर दिया है कि वेदों में सर्व प्रकार की कलों की विद्या है। और एक सूक्त के अर्थ में ज़बरदस्ती तोप बंदूक का नाम इस बातके जाहिर करने के वास्ते लिख दिया है कि सर्व प्रकार के शस्त्रों की विद्या भी वेदों में है। इसही प्रकार सोम का अर्थ औषधि का समूह करने का यह ही मंशा मालूम होती है कि यह सिद्ध होजावे कि वेदों में सर्व प्रकार की औषधियों का भी वर्णन है-और है भी ठीक जब औषधि समूह का शब्द वेदों में आ गया तो अन्य कौन सी औषधि रही जो वेदों में नहीं है? बरन यही कहना चाहिये कि वैद्यक, यूनानी हिकमत, डाक्टरी आदिक जितनी विद्या इस समय संसार में प्रचलित हैं वा जो जो औषधि आगामी को निकाली जावेंगी वह भी सब वेदों में मौजूद हैं—

"औषधि समूह" यह मंत्र लिखकर स्वामी जी ने तो सारी वैद्यक सिखा दी परंतु हम ऐसे अभागे हैं कि हम पर इस मंत्रका कुछ असर न हुवा और हम को किसी एकभी औषधिका नाम वा उस का गुण मालूम न हुवा इस कारण हम को इस बात के खोज करने की जरूरत हुई कि सोम क्या पदार्थ है?—इस हेतु हम इस की खोज वेदों ही से करते हैं—

वेदों में अनेक स्थान में सोम का पीना मद अर्थात् नशे के वास्ते वर्णन किया है स्वामी जी ने मद का अर्थ आनन्द किया है-इस अर्थ से भी नशे की पुष्टि होती है क्योंकि नशा आनंद के ही वास्ते किया जाता है-वेदों में स्थान स्थान पर सोम को मदके वास्ते ही पीने की प्रेरणा की है परंतु हम उसमें से कुछ वाक्य स्वामी जी के वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे नीचे लिखतेहैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६८ ऋचा १०

(मद्यम्) जिससे जीव आनन्द को प्राप्त होता है उस सोम को पियो-

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४७ ऋ० १

सङ्ग्राम और (मदाय) आनन्द के लिये (सोम) श्रेष्ठ औषधि के रसका पान करो और पेट में मधुर की लहर को सेचन करो।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ ऋ० ४

हे स्त्री पुरुषो-ये जिस कारण आप दोनों के (सोमः) ऐश्वर्यके सहित पदार्थ इस मेल करने योग्य गृहाश्रम में मधुर गुणों से पीने योग्य के लिये होते हैं

इस कारण उन का इस संसार में सेवन करके पराक्रम वाले होते हुए आप दोनों (मादयेथाम) आनन्दित होवैं ।

ऋग्वेद सप्तमनंडल सूक्त २६ ऋ० २

सोमरस जीवात्मा को हर्षित करताहै

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० ऋचा १

हे राजन् ! जो आप के लिये(मदाय) हर्ष के अर्थ उत्पन्न किया गया सोमलता का रस है उसको पीजिये ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा ३

(मदः) आनन्द देने वाला वह (सोमः) औषधियों का रस उत्पन्न किया गया आप का है उसकी आप वृद्धि कीजिये

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४९ ऋचा २

हे राजा और उपदेशक विद्वान् जनो! आप दोनों के मुख में (मदाय) आनन्द के लिये पान करने को अति उत्तम (सोमः) बड़ी औषधिका रस यह सब प्रकार से सींचा जाता है इस से आप समर्थ होवैं ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४३ ऋचा ५

हे अत्यंत ऐश्वर्य से युक्त विद्वन् जिन से आप के बड़े प्रीति से सेवन किये गये प्रज्ञान तथा चातुर्य्य बल और (मदाय) आनंद के लिये (सोमः) बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न किया जाय ।

हम ऐसा सुनते हैं कि फिरंगी विद्वान् जिन्हों ने वेदों का अर्थ किया है और वेदों को पढ़ा है उन्होंने वेदों में यह कथन देखकर कि सोम मदके वास्ते पिया जाता था सोम को मदिरा समझा है और इस कारण कि सोम रस की उत्पत्ति वेदों में वनस्पति से लिखी है उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि ताड़ी आदिक किसी विशेष वृक्ष का यह मद है जिस से नशा पैदा होता है उन का ऐसा समझना कुछ अचम्भे की भी बात नहीं है क्योंकि वेदों में मदिरा का भी वर्णन मिलता है इसकी सिद्धि के अर्थ हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य से लिखते हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७५ ऋ० २

हे सभापति आप का जो सुख करने वाला स्वीकार करने योग्य वीर्यकारी जिसमें बहुत सहन शीलता विद्यमान जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग करने वाला जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं और जो मनुष्यस्वभाव से विलक्षण (मदः) ओषधियों का रसहै वह हम लोगों को प्राप्त हो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६६ ऋ० ७

जो स्तम्भन देने वाले अर्थात् रोक देने वाले जिनका धन विनाशको नहीं प्राप्त हुवा पूर्ण शत्रुओं के मारने हारे अच्छी प्रशंसाको प्राप्त जन संग्रामों में शूरता आदि गुण युक्त युद्ध करने वाले के प्रथम पुरुषार्थी वलों को जानते हैं (मदिरस्य) आनन्द दायक रस के (पीतये) पीने को सत्कार करने योग्य विद्वान का अच्छा सत्कार,करतेहैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २० ऋचा ६

(मदिरम्) मादक द्रव्य—

परन्तु वेदों में कुछ ही कथन होसोम कदापि मदिरा नहीं हो सकती है वरन वह भंग और धतूरा है जिसको वेदों के गीत बनने के समय पिया करते थे और जिस को अब भी वेदों के मानने वाले हिन्दू लोग बहुधा कर पीते हैं। यूरुप देश में भंग का प्रचार नहीं है वह लोग भंग को नहीं जानते हैं इस कारण भंग का अनभव होना उन को असम्भव था इसही हेतु उन्होंने यह गलती खाई है परन्तु हम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार ही वेद वाक्यों से सोम को भंग और धतूरा सिद्ध करेंगे-सोम भंग और धतूरे के सिवाय और कोई वस्तु होही नहीं सक्ती-है-सोम का अर्थ वास्तव में चन्द्रमा है चन्द्रमा शीतल होता है और इसदेश के कवि लोग शीतल वस्तुको चन्द्रमा से उपमा दिया करते हैं भंग पीने वाले भंगको ठंढाई कहते हैं इस ही से ऐसा मालूम होता है कि कवियों ने भंग का नाम सोम रखलिया था—

भंग का पत्ता देखने पर मालूम हुवा कि उस पर छोटे छोटे बहुत रोम होते हैं और पत्ते पर तिर्छी लकीर होती हैं ऐसा ही स्वरूप वेद में सोम का वर्णन किया है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ ऋ० ६

यज्ञ की चाहना करने वालों ने जलों में उत्पन्न किई (सोमः) बड़ी २ ओषधि पुष्टि करती हुई तुम दोनों को देवे और शुद्ध वे लेवें जो ये इकट्ठे होते और तुम दोनों की इच्छा करते हुए (सोमासः) ऐश्वर्य युक्त नाश रहित (अतिरोमाणि) **अतीवरोमा** अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार सनातन सुखों के समान **औरोंसे तिरछे** शुद्धि करने वाले पदार्थों और तुम दोनों को चारों ओर से सिद्ध करें उन को तुम पिओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ—

(नोट) वेद में अतिरोमाणि शब्द जिसका अर्थ है बहुत रोमवाला स्वामी जी ने भी अतीवरोमा अर्थ किया है परन्तु अर्थ को दलाने के वास्ते यह भी लिख दिया है कि अर्थात नारियल की जटाओं के आकार।

भंग सिल बट्टे पर रगड़ी जाती है जिसका वर्णन नीचे लिखे वाक्यों में है और रगड़ कर पानी मिलाने का कथन है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० ऋ० २

हे सभापति. अतीव प्यासे बैल के समान बलिष्ठ विभाग करने वाले आप शिलाखंडों से निकालनेके योग्य मेघसे बढ़े और संयुक्त किये हुवे के समान सोम को अच्छे प्रकार पिओ—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३७ ऋ० ३

हे प्राण और उदान के समान सर्व मित्र और सर्वोत्तम सज्जनो हमारे अभिमुख होते हुए तुम तुम्हारी जिस निवास कराने वाली धेनु के समान पत्थरों से बढ़ी हुई सोम बल्ली को

दुहते जलादिसे पूर्ण करते मेघों से (सोमपीतये) उत्तम ओषधि रस जिस में पिये जाते उसके लिये ऐश्वर्य को परिपूर्ण करते उसको हमारे समीप पहुंचाओ जो यह मनुष्यों ने सोम रस सिद्ध किया है वह तुम्हारे लिये अच्छे प्रकार पीने को सिद्ध किया गया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ ऋ० ५

अच्छे प्रकार पर्वत के टूक वा उखली मूसलों से सिद्ध किये अर्थात् कूट पीट बनाये हुये पदार्थों के रस को (मदाय) आनन्द के लिये तुम पीओ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० २-६

सेचनों से मथे हुए बढ़ाने वाले रस का पान कीजिये।

जो राजा श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ सभाओं को प्राप्त होवे इससे वह गुणों से पूर्ण ओषधियों का सार भाग और (सोमः) ओषधियों का समूह जल को जैसे प्राप्त होवे वैसे सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देता है।

भंगमें दूध मिलाया जाता है उसका भी वर्णन इस प्रकार है:—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५८ ऋ० ४

गौवों के दूध आदि से मिले हुए सोमलता रूप ओषधियों के रसों को मित्र लोगों के सदृश देवें।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २३ ऋचा १

उत्तम (सोमम्) दुग्ध आदि रसको पीता है।

दूध मिलाने से भंग सफेद दूधिया हो जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २७ ऋचा ५

हे मनुष्यों जो बहुत श्रेष्ठ धन युक्त गौओंसे सम्बद्ध बढ़े हुए श्वेत वर्ण वाले घड़े जल और अन्नको पीनेके लिये (मदाय) आनन्दके लिये धारण करता है और जो (शूर) भयसे रहित अत्यन्त ऐश्वर्यवाला (मदाय) आनन्दके लिये अपने नहीं नाश होनेकी इच्छा करने वालोंके साथ मधुर आदि गुणोंके प्रथम प्रयत्नसे सिद्ध करने योग्य आनन्दके पीने को धारण करता है वह नहीं नष्ट होने वाले बलको प्राप्त होता है।"

भंगमें मीठा मिलाया जाता है उस का वर्णन निम्न प्रकार है और वेदोंके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि वेदोंके समयमें शहदकी ही मिठाई थी और कोई मिठाई नहीं थी।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा २१

"आप उत्तम सुखके वर्षाने वालेके लिये पानको स्वादसे युक्त सोमलताका रस (मधुपेयः) शहद के साथ पीने योग्य हो।„

भंग पीकर दही आदिक भोजन खाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३७ ऋचा २

"हे पढ़ने वा पढ़ाने वाले जो सुन्दर मित्रके लिये पीनेको और उत्तम जनके लिये सत्याचरण और पीनेको प्रभात

बेलाके प्रबोधमें सूर्य मंडलकी किरणों के साथ औषधियोंका रस सब ओरसे सिद्ध किया गया है उसको तुम प्राप्त हो तुम्हारे लिये ये गोले वा टपकते हुए (सोमासः) दिव्य औषधियोंके रस और जो पदार्थ दहीके साथ भोजन किये जाते उनके समान दही से मिले हुए भोजन सिद्ध किये गये हैं उन्हें भी प्राप्त होओ ।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५२ ऋचा७

हे (शूर) दुष्ट पुरुषके नाश कर्त्ता उस आपके लिये दधि आदिसे युक्त भोजन करनेके पदार्थ विशेष और भूंजे अन्न तथा पुआको देवे उसको समूहके सहित वर्तमान आप उत्तम मनुष्योंके साथ भक्षण कीजिये और सोमकोपान कीजिये।,,

धतूरेके बीज भी भंगमें मिलाये जाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है:—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८७ ऋचा ९

हे (सोम) यवादि औषधि रस व्यापी ईश्वर गौके रससे बनाये वा यवादि औषधियोंके संयोगसे बनाये हुए उस अन्नके जिस सेवनीय अंशको हम लोग सेवते हैं उससे हे (वातापे) पवन के समान सब पदार्थोंमें व्यापक परमेश्वर उत्तम वृद्धि करने वाले हूजिये ।,,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋचा८

"जिस पुरुषके दोनों ओरके उदर के अवयव (सोमधानाः) सोमरूप औषधियोंके बीजोंसे युक्त गम्भीर जलाशयोंके सदृश वर्तमान हैं ।,,

आर्यमत लीला ॥

(१२)

वेदों में सोम पीने वाले की बड़ी तारीफ (प्रशंसा) की गई है यहां तक कि जो चोरी करके पीवे उसकी बहुत ही प्रशंसा है भंगड़ लोगभी भंग पीने वाले की इस ही प्रकार प्रशंसा किया करते हैं हम इस विषय में स्वामी जी के वेदभाष्य के हिन्दी अर्थों से कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४८ ऋ० ४

जो यह भक्षण करने वाली सेनाओं में साम की चोरी करके पीवे "वह राज्य करने के योग्य होवे—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३१ ऋचा १

हे मित्रो तुम्हारे मनुष्य वा हरणशील घोड़े जिसके विद्यमान हैं उस सोम पीने वाले परम ऐश्वर्यवान्के लिये आनंद से तुम अच्छे प्रकार गाओ ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे वायु के सदृश बलयुक्त जिस से आप श्रेष्ठ क्रियाओंमें पूर्व वर्त्तमान जनों का पालन करने वाले हो इससे मधुर रसों के बीच में उत्तम उत्पन्न कियेगये रसको पान कीजिये ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २९ ऋ० ५

जो सम्पूर्ण विद्वान् जन सोम औषधि पान करने योग्य रस को अनुकूल देते हैं वे बुद्धिसे विशेष ज्ञानी होते हैं।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० ४

जो सोमरसका पीने वाला दुष्ट शत्रुओंका नाश करने वाला हो उसही को अधिष्ठाता करो ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७१ ऋ० २

हे निश्चित रक्षण और यज्ञ कराते हुए जनों वाले मनुष्यो जो तुम धर्म के और धर्म युक्त कर्मके साथ वर्त्तमान होवे सोम पीने के लिये उत्तम व्यवहार में उपस्थित हूजिये,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋचा ८

सोम के पीने वाले धार्मिक विद्वान पुरुष कर्म से वृद्ध शत्रुओं के बल नाशक"वे सब आप की सभा में बैठने योग्य सभासद और भृत्य होवें।

आज कल जिस प्रकार भंग पीने वाले भंगड़ भंग न पीने वालों की बुराई करते हैं और भंग की तरंग में गीत गाते हैं कि, वेटा होकर भंग न पीवै वेटा नहीं वह बेटी है।

इस ही प्रकार वेदों में भी न पीने वाले की बुराई की गई है, वरन उस पर क्रोध किया गया है यहां तक कि उसको मारने और लूट लेने का उपदेश किया है यथा—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋ० ४

हे राजन् आप उस पदार्थों के सार खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित और दुःख से बिनाशने योग्य समस्त आलसी गण को मारो दंडदेओ कि जो विद्वान् के समान व्यवहारों की प्राप्ति करता है और तुम्हारे सुख को नहीं पहुंचता तथा आप इस के धनको हमारे अर्थ धारण करो—

सोम की तरंग में इस प्रकार वेतुका गीत गाया गया है।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० ४-५

हे परम ऐश्वर्य युक्त बुलाये हुए आप दो हरण शील पदार्थों के साथ यान से आइये चार हरण शील पदार्थों के साथ यान से आओ छः पदार्थों से युक्त यान से आओ आठ वा दश पदार्थों से युक्त यान से आओ जो यह उत्पन्न किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस है उस पदार्थों के रस के पीनेके लिये आओ।

हे असंख्य ऐश्वर्य देने वाले युक्त होते हुए आप बीस और तीस हरने वाले पदार्थों से चलाये हुए यानसे जो पी के जाता है उस सोम आदि औषधियों में पीने योग्य रस को प्राप्त होओ आओ चालीस पदार्थों से युक्त रथसे आओ पचास हरणशील पदार्थों से युक्त सुन्दर रथों से आओ साठ वा सत्तर हरणशील पदार्थोंसे युक्त सुन्दर रथोंसे आओ--"

(इसही प्रकार आगेकी ऋचामें नव्वे और सौ भी कहते चलेगये हैं हम कहां तक लिखें)

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ७

"हे मनुष्यो! जो मुझे तृप्त करे जो मुझको सुख देवे तो मुझ को निश्चित बोध करावे जो इन्द्रियों से यत्न करते हुए मुझ को अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होवे वह मुझ को सेवने योग्य है जो मुझको नहीं चाहता नहीं श्रम कराता और नहीं मोह करता हम लोग जिस को ऐसा नहीं कहैं उस (सोमम्) औ-

षधि रसको तुम लोग मत खींचो । "

ऋग्वेद् छठा मंडल सूक्त ४७ ऋचा ३

" हे मनुष्यो ! जैसे यह पान किया गया सोमलता का रस मेरी वाणी को कामना करती हुई बुद्धिको बढ़ाता है जिससे यह जन कामनाको प्राप्त होता है जिससे यह छः प्रकारकी भूमियोंको ध्यान करने वाला बुद्धिमान् जन जैसे निर्माण करता है और जिनसे दूर वा समीप में कभी भी संसारको रचता है यह विद्युक्शास्त्रकी रीतिसे बनाने योग्य है । "

सोमके नशेमें जो कोई अपराध हो जावे उसको क्षमा इस प्रकार मांगी गई है-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७९ ऋचा ५

" मैं जिस इस हृदयों में पिये हुए (सोमम्) ओषधियोंके रसको उपदेश पूर्वक कहता हूं उस को बहुत कामना वाला पुरुष ही सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे जिन अपराधको हम लोग करें उसको शीघ्र सब ओरसे समीपसे सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें- "

सोम पीकर कामदेव उत्पन्न होता था और भोजन की इच्छा होती थी जिस प्रकार भंगसे होती है । यथा--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋ० ३

" मैं जो पवनोंके समान विद्वान् जिनसे सूर्य किरण आदि पदार्थ तृप्त होते और वे कूट पीट निकाले हुए सोमादि औषधि रस हृदयोंमें पिये हुए हों उनके समान वा सेवन करने वालोंके समान बैठते स्थिर होते इनके भुज स्कन्धोंमें जैसे प्रत्येक कामका आरम्भ करने वाली स्त्री संलग्न हो वैसे संलग्न होता हूं जिन्होंने हाथोंमें भोजन और क्रिया भी धारण किई है उनके साथ सब क्रियाओं को अच्छे प्रकार धारण करता हूं । "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४८ ऋचा १२

"हे प्रभातके तुल्य स्त्री मैं सोम पीनेके लिये ऊपरसे अखिल दिव्य गुण युक्त पदार्थों और जिस तुझको प्राप्त होता हूं उन्हींको तू भी अच्छे प्रकार प्राप्त हो-"

सोम इकट्ठे होकर पिया जाता था जिस प्रकार भंग इकट्ठे होकर पीते हैं । यथा:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४५ ऋचा ९

" हे-विद्वानो ! मैं सज्जन...आज सोम रसके पीनेके लिये प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले विद्वानों... और उत्तम आसनको प्राप्त कर । "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४७ ऋचा १०

" हे बहुत विद्वानोंमें वसने वाले... जहां विद्वानोंकी पियारी सभामें आप लोगोंको अतिशय श्रद्धा कर बुलाते हैं वहां तुम लोग पीछे सनातन सुख को प्राप्त होओ और निश्चय से सोम को पीओ । "

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३७ ऋचा ३

" सब ओर से उद्यम कर और मेल कर प्राप्तिसे आप वसन्तादि ऋतुओंके साथ सोमको पीओ--"

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १६ ऋ० ४४

"हे विद्वान्! आप इन लोगोंको उत्तम प्रकार सोम रसके पानके लिये सब ओर से प्राप्त होओ-"

किसीके राजा होनेपर सोम रस बांटा जाता था। यथाः-

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त २९ ऋ० ४

"हे विद्वानो में अग्रणी जनो! जिन राजाके होनेपर पाक पकाया जाता है भुंजे हुए अन्न हैं चारों ओरसे अत्यन्त मिला हुआ उत्पन्न सोम रस होता है... वह आप हम लोगोंके राजा हूजिये-"

सोमको पेट भर कर पीने की प्रेरणा की जाती थी जिस प्रकार भंगड़ दो दो लोटे पी जाते हैं।" यथाः—

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त १४ ऋ० ११

उन ऐश्वयवान को यव अन्न से जैसे मटका को वा डिहरा को वैसे (सोमभिः) सोमादि औषधियों से पूरो पूरिपूर्ण करो-

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २२ ऋ० १

घोड़े के समान सोम को पीओ-

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४४ ऋ० ४

हे सत्याचरण वाले अध्यापक और उपदेशक जनो! आप दोनों इस यज्ञको प्राप्त होओ और मधुर आदि गुणों से युक्त सोमरस का पान करो।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४०ऋ०२-४-५

हे इन्द्र अत्यन्त तृप्ति करने और यज्ञ के सिद्ध करने वाले उत्तम संस्कारों से उत्पन्न सोमकी कामना और पान करो उससे बैल के सदृश बलिष्ठ होओ।

हे इन्द्र जो ये आनन्दकारक गीले सोम आप के रहने के स्थान को प्राप्त होते हैं उनका आप सेवन करो।

जो आप के स्नेह करने वाले होवें उनके समीप से भोग करने योग्य उत्तम प्रकार बनाया सोम को उत्पन्नहो सुख जिन में उस पेट में आप धरो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७२ ऋ० १

हे अध्यापक और उपदेशक जनो...... आप सोम रसका पान करने के लिये उत्तम गृह वा आसन में बैठिये।

वेदों में सोमरस पीनेके वास्ते मनुष्यों को बुलाने के बहुत गीत हैं जिस प्रकार भांग पीने वाले भंग घोटकर बुलाया करते हैं। यथाः-

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७८ ऋ० २

सोमलता के पश्चात् जैसे हरिण दौड़ते हैं वैसे और जैसे दो मृग दौड़ते हैं वैसे आइये।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ९

हे नायक सोमपान के लिये इन अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए जिनसे उत्पन्न करते हैं उन के समीप प्राप्त होओ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०८ ऋ० ७-८

हे स्वामी और सेवको सुख की वर्षा करते हुवे आओ-सोम को पिओ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २४ ऋ० ३

सोम को पीने के लिये हमारे इस वर्तमान उत्तम स्थान वा अवकाश को आओ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे बहुधन और प्रशस्त मनुष्य युक्त दारिद्र्य विनाशने वाले जो यह सोम रस है जिसको मैं तो तुम्हारे लिये खींचता हूं उस को तुम पीओ वह श्रेष्ठ गृह जिसका है ऐसे होते हुए आओ इस सुन्दर निर्माण किये और सुन्दर जन के धनों को प्राप्त होते हुए हमारे लिये देओ ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० व ४१ ऋ० क्रमशः ४ व १

पीने योग्य सोमलताके रसको पीने के लिये समीप प्राप्त हूजिये ।

उत्पन्न किये गये सोमलता आदि के जल पवित्र करते हैं उसके समीप आइये।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५९ ऋ० १०

उत्तम शिक्षायुक्त वाणियोंके साथ इस सोम के पीने को आओ ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ४

सोमरसके पीनेके वास्ते (जिस अत्यंत विद्या आदि ऐश्वर्य वालेको इस संसार में पुकारें वह हम लोगों के समीप बहुत बार आवे ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७१ ऋचा ३

हे मित्रश्रेष्ठ ! आप दोनों इस देने वाले के सोमरस को पीनेके लिये हम लोगों के उत्पन्न किये हुए पदार्थ के समीप में आइये ।

सोम की प्रशंसा और पीने की प्रेरणा में अनेक गीत गाये गये हैं उन में से कुछ हम यहां लिखते हैं ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० १-२

हे यज्ञपते आदि भूत आप उत्तम क्रिया के साथ अत्युत्तमता से गृहीत दान के कारण क्रिया से सिद्ध किये हुए सोमरस को अच्छे प्रकार पिओ।

हे धारण करने वाले के पुत्रो नायक मनुष्यो जैसे अच्छे प्रकार मिले हुए श्वेत वर्ण प्यारे जन अच्छी क्रियाओं से युक्त प्राप्ति कराने वाली पवन की गतियों से प्राप्त हुए समय में और कामना करते हुओं में अन्तरिक्ष को पहुंच कर पवित्र व्यवहार से उत्पन्न हुए प्रकाश से सोमरस को पीते हैं वैसे तुम पिओ ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० ४

"हे...अध्यापको ! जो यह तुम दोनों से सोमरस उत्पन्न हुआ उसको पीके ही यहां मेरे आवाहनको सुनिये--"

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४३ ऋ० १

"यह (सोम) बुद्धि और बल का बढ़ाने वाला रस आपके लिये उत्पन्न किया गया है उसका आप पान करिये ।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ५

"निरन्तर अनादि सिद्ध बलके लिये सोम रसको पीओ--"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५१ ऋ० १०

"आप बलसे इसके इस सिद्ध किये गये सोमलता रूप रसका पान कीजिये निश्चयसे और पान करनेकी इच्छा से इस सोमलताका पान करो--"

ऋग्वेद मंडल चौथा सूक्त ४९ ऋ० ५-६

"हे अध्यापक ! और उपदेशक ज-

तो जैसे हम लोग ऋत्विजोंसे इस (सोमस्य) औषधियोंसे उत्पन्न हुए रसके पानके लिये आप दोनोंका स्वीकार करते हैं वैसे इस के उत्पन्न होने पर हम लोगोंका स्वीकार करो--„

" हे राजा और मन्त्री जनो ! आप दोनों दाता जनके स्थानमें (सोमम्) अति उत्तम रसका पान करो और हम लोगोंको निरन्तर (मादयेथाम्) आनन्द देओ ।"

सोम पीकर युद्धमें जानेकी प्रेरणा इस प्रकारकी गई है--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७७ ऋ० ३

" हे--बलिष्ठ राजन् ! हम लोगों को प्राप्त होते और रस आदिसे परिपूर्ण होते हुए आप जो अपने लिये सोम रस उत्पन्न किया गया है उसमें मीठे मीठे पदार्थ सब ओरसे सींचे हुए हैं उस रसको पीकर मनुष्योंके प्रबल हरण शील घोड़ोंसे कूड़ रथको जोड़ युद्ध का यत्न करो वा युद्धकी प्रतिज्ञा पूर्ण करो नीचे मार्गसे समीप आओ । „

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० २

" जो सभाध्यक्ष...सोम पीनेके लिये बैलके समान आचरण करता है वह युद्ध करने वाला पुरुष...राज्य और सत्कार करने योग्य है ।"

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४७ ऋ०२-४

"सकल विद्याओंका जाननेवाला पुरुष सोमलता के रस को पीजिये और शत्रुओं को देश से बाहर करके नष्ट करिये ।

वीर पुरुषों के सहित सोमका पान कीजिये ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ४-६

जब कब हम लोग सोमलता के रस संचित करें उसको आप शत्रुओंके संताप देने वाले बिजुली के समान प्राप्त होवें ।

सोमका पान करिये और पीकर श्रेष्ठ संग्राम जिससे उसको प्राप्त हो होइये ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १८ ऋ० ३

जैसे सेना का ईश प्रकाश के स्थान में "सोमको सेनाओंके मध्यमें पीता है ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४५ ऋ० ३-५

हे सेना के ईश "मधुर रसों को पीने वाले वीर पुरुषों के साथ मधुर आदि गुण से युक्त पदार्थ के मनोहर रसको पिओ जो मधुर आदि गुण युक्त सोम को उत्पन्न करता है उसको-सिद्धकरो ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० १

हे सोमपते "सोम को पान कीजिये और संग्राम को प्राप्त हूजिये ।

वेदों में सोम पीने का समय सुबह और दोपहर वर्णन किया है भंगड़ भी इस ही समय में भंग पीते हैं । यथा-

ऋग्वेद तीसरा मण्डल सूक्त ३२ ऋ० ३

वीर पुरुषों के साथ समूह के सहित वर्तमान आप मध्य दिन में "सोम लतादि औषधि का पान करो ।

ऋग्वेद पंचम मण्डल सूक्त ३४ ऋ० ३

हे मनुष्यो जो इस के लिये दिन में

भी अथवा प्रभात समय में (सोमम्) जल का पान करता है।

ऋग्वेद पंचम मण्डल सूक्त ४४ ऋ० १४

जो (जागार) अविद्या रूप निद्रा से उठके जागने वाला उसको यह (सोमः) सोमलता आदि औषधियों का समूह वा ऐश्वर्यके सदृश निश्चित स्थान वाला मित्रत्व में आप का मैं हूं इस प्रकार कहता है।

ऋग्वेद पंचम मण्डल सूक्त ५१ ऋ० ३

हे बुद्धिमान आप प्रातकाल में जाने वाले विद्वानों के और बुद्धिमानों के साथ सोमलता नामक औषधि के रस के पीने के लिये प्राप्त हूजिये।

आर्यमत लीला ॥

[ग—भाग]

यजुर्वेद।

(१३)

वेद चार हैं जिन में से ऋग्वेद और यजुवद का भाष्य स्वामी दयानन्दजी ने किया है बाकी दो वेदों का भाष्य नहीं किया है। स्वामी दयानन्दजीके अर्थों के अनुसार हमने ऋग्वेदके बहुतसे वाक्य लिखकर पिछले लेखोंमें यह सिद्ध किया है कि वेद कोई धर्मशिक्षा की पुस्तक नहीं है यहां तक कि वह साधारण शिक्षाकी भी पुस्तक नहीं है बरन ग्रामीण किसानोंके गीतोंका सेसिलसिले संग्रह है-शायद हमारे पाठकों मेंसे कोई यह सन्देह करता हो कि ऋग्वेद में ही अनाड़ी किसानों के गंवरू गीत हैं परन्तु अन्य वेदों में नहीं सा-मूल क्या विषय होगा? इस कारण हमको यजुर्वेद के विषय का भी नमूना दिखानेकी जरूरत हुई है जिस से प्रगट हो जावे कि यजुर्वेदमें भी ऐसे ही गंवारू गीत हैं। हम अपने पाठकोंको यह भी निश्चय कराते हैं और आगामी सिद्ध भी करेंगे कि ऋग्वेद और यजुर्वेदके अतिरिक्त जो अन्य दो वेद हैं उन में भी वैसे ही गीत है जैसे ऋग्वेद में दिखाये गये हैं। वरन उन दो वेदों में तो बहुधा वह ही गीत हैं जो ऋग्वेद में हैं और यह ही कारण है कि स्वामी दयानन्द जी ने उन दो वेदों का अर्थ प्रकाश करना व्यर्थ समझा है

यजुर्वेदके मजमून को सिलसिलेवार तो हम आगामी लेखों में दिखावेंगे—परन्तु इससे पहले हम बानगीके तौर पर कुछ ऋचाओं का अर्थ स्वामी दयानन्द जी के भाष्य में से लिखते हैं जिससे मालूम हो जावेगा कि यजुर्वेद में किस प्रकार के गंवारू गीत हैं:—

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १२

"मेरे चावल और साठीके धान मेरे जौ और अरहर मेरे उरद और मटर मेरा तिल और नारियल मेरे मूंग और उसका बनाना मेरे चने और उसका सिद्ध करना मेरी कंगुनी और उसका बनाना मेरे सूक्ष्म चावल और उन का पाक मेरा समा (श्यामाकाः) और महुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न मेरा पसाई के चावल जो कि बिना बोए उत्पन्न होते हैं और इन

का पाक मेरे गेहूं और उनका पकाना तथा मेरी मसूर और इनका संबन्धी अन्य अन्न ये सब अन्नोंके दाता परमेश्वर से समर्थ हों"

(नोट) "यज्ञेन कल्पन्ताम्"-इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह किया है सब अन्नोंके दाता परमेश्वरसे समर्थहों।

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १४

"मेरा अग्नि और बिजुली आदि ['च' शब्द का अर्थ बिजुली आदि किया है] मेरे जल और जलमें होने वाले रत्न मोती आदि ['च, शब्दका अर्थ जलमें होने वाले रत्न मोती आदि किया है] मेरे लता गुच्छा और शाक आदि मेरी सोमलता आदि औषधि और फल पुष्पादि मेरे खेतों में पकते हुए अन्न आदि और उत्तम अन्न मेरे जो जंगल में पकते हैं वे अन्न और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न मेरे गांव में हुए गौ आदि और नगर में ठहरे हुए ['च, शब्द का अर्थ नगर में ठहरे हुये किया है] तथा मेरे बन में होनेहारे मृग आदि और सिंह आदि पशु मेरा पाया हुआ पदार्थ और सब धन मेरी प्राप्ति और पाने योग्य मेरा रूप और नाना प्रकार का पदार्थ तथा मेरा ऐश्वर्य्य और उसका साधन ये सब पदार्थ मेल करने योग शिल्पविद्या से समर्थ हों [यज्ञेन कल्पन्ताम्] इस वाक्य का अर्थ मेल करने योग्य शिल्पविद्या से समर्थ हों किया है]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २६

मेरा तीन प्रकारका भेड़ों वाला और इससे भिन्न सामग्री मेरी तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इनसे उत्पन्न हुए घृतादि मेरे खंडित क्रियाओंमें हुए विघ्नों को पृथक् करने वाला और इसके संबन्धी मेरी उन्हीं क्रियाओं की प्राप्त कराने हारी गाय आदि और उसकी रक्षा मेरा पांच प्रकार की भेड़ों वाला और उसके घृतादि मेरी पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इसके उद्योग आदि मेरा तीन बछड़े वाला और उसके बछड़े आदि मेरी तीन बछड़े वाली गौ और उस के घृतादि मेरा चौथे वर्ष को प्राप्त हुवा बैल आदि इसको काम में लाना मेरी चौथे वर्ष को प्राप्त गौ और इस की शिक्षा यह सब पदार्थ पशुओं के पालन के विधान से समर्थ होवें [यज्ञेन कल्पन्ताम] इस वाक्य का अर्थ-पशुओं के पालन के विधानसे समर्थ होवें कियाहै]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २७

मेरे पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि और उन के संबंधी मेरी पीठसे भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी और उनसे उठाये गये पदार्थ मेरा वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि मेरी वंध्या गौ और वीर्य्यहीन बैल मेरा समर्थ बैल और बलवती गौ मेरी गर्भ गिराने वाली और सामर्थ्य हीन गौ मेरा हल और गाड़ी आदि को चलाने

में समर्थ बैल और गाड़ीवान आदि मेरी नवीन व्याती दूध देने हारी गाय और उसको दोहने वाला जन ये सब पशुशिक्षा रूप यज्ञकर्म से समर्थ होवें। [यज्ञेन कल्पन्ताम्] का अर्थ पशु शिक्षा रूप यज्ञ कर्म से समर्थ होवें किया है]

यजुर्वेद अध्याय २४ ऋचा १२

जो ऐसे हैं कि जिनकी तीन भेड़े वे गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये जिनके पांच भेड़े हैं वे तीन अर्थात् शरीर वाणी और मनसंबन्धी सुखों के स्थिर करनेके लिये जो विनाश में न प्रसिद्ध हों उन की प्राप्ती कराने वाले संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उसके लिये जिन के तीन बछड़ा वा जिनके तीन स्थानोंमें निवास वे पीछे से रोकने की क्रियाके लिये और जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे जिस क्रिया से उत्तमताके साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों।

यजुर्वेद प्रथम अध्याय ऋचा १४

हे मनुष्यो तुम्हारा घर सुख देनेवाला हो। उस घर से दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी अलग करो और दान आदि धर्म रहित शत्रु दूर हों। उक्त गृह पृथिवी की त्वचा के तुल्य हों। ज्ञान स्वरूप ईश्वर ही से उस घर को सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो बनस्पती के निमित्त से उत्पन्न होने अति विस्तार युक्त अंतरिक्ष से रहने तथा जलका ग्रहण करनेवाला मेघ है उस और इस विद्या को जगदीश्वर तुम्हारे लिये कृपा करके जनावें। विद्वान् पुरुष भी पृथिवी की त्वचा के समान उक्त घरकी रचना को जानें।

(नोट) इस से मालूम होता है कि उस समय सब लोग घर बनाकर नहीं रहते थे वरन गंवारों से भी अधिक गंवार थे।

यजुर्वेद तीसरा अध्याय ऋ० ४४

हम लोग अविद्या रूपी दुःख होने से अलग होके बराबर प्रीति के सेवन करने और पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुलाते रहें।

(नोट) इससे मालूम होता है कि उस समय के लोग ऐसे गंवार थे कि सब भोजन को पकाकर नहीं खाते थे वरन जो कोई २ भोजन पकाकर खाता था वह बड़ा गिना जाता था।

यजुर्वेद छठा अध्याय ऋ० २८

हे वैश्यजन! तू हल जोतने योग्य है तुझे अन्तरिक्ष के परिपूर्ण होने के लिये अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं तुम सब लोग यज्ञ शोधित जलों से जल और औषधियों से औषधियों को प्राप्त होओ।

यजुर्वेद १९ वां अध्याय ऋ० २१

हे मनुष्यो तुम लोग होमकरने योग्य यंत्र द्वारा खींचने योग्य औषधि रूप

इसके रूपको भुने हुए अन्न मथन का साधन सत्तू सन्न ओदसे बीजका बोना दूधदही दहीदूध सौठेका मिलाया हुआ प्रशस्त अन्नों की सम्बन्धी सार वस्तु और शहत के गुण को जानो।"

यजुर्वेद १९ वां अध्याय म० २२

"हे मनुष्यो तुम लोग भुंजे हुए सौआदि अन्नोंका कोमल वेर सा रूप पिसान आदि का गेहूं रूप सतुओं का वेर फलके समान रूप दही मिले सत्तू का समीप प्राप्त जौ रूप है ऐसा जाना करो।"

यजुर्वेद १९ वां अध्याय म० २३

"हे मनुष्यो तुम लोग जो यव हैं उन को पानी वा दूध के रूप मोटे पके हुये वेरी के फलोंके समान दही के स्वरूप बहुत अन्न के सार के समान सोम औषधि के स्वरूप और दूध दही के संयोगसे बने पदार्थके समान सोमादि औषधियोंके सार होने के स्वरूप को सिद्ध किया करें।"

यजुर्वेद बीसवां अध्याय म० ७८

"हे विद्वन्! घोड़े और उत्तम बैल तथा अतिबली वीर्यके सेचन करने हारे बैल बंध्यागायें और मेढ़ा अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और सब ओर से ग्रहण किये हुए जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उस में तू अन्तःकरण से सोम विद्या को पूछने और उत्तम अन्न के रस को पीने हारे बुद्धिमान अग्नि के समान प्रकाश मान जन के लिये अति उत्तम बुद्धि को प्रगट कर।"

यजुर्वेद २१ वां अध्याय म० ४१

"हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता) और देने हारा अनेक प्रकार के व्यवहारोंकी संगति करे पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशु संबन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के लेने देने योग्य व्यवहार का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर। हे देने हारे जन तू जैसे (होता) लेने हारा मेंढ़ाके (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और चिकने पदार्थसंबंधी अग्नि आदिमें छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और विशेष ज्ञान वाली वाणीका (जुषतां) सेवन करे वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे सब पदार्थोंका यथायोग्य मेल कर। हे देने हारे तू! जैसे लेने हारा बैलको (वपायाः) बढ़ाने वाली रीति और चिकने पदार्थ संबन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और परम ऐश्वर्य करने वाले का सेवन करे वा यथायोग्य उक्त पदार्थोंका मेल करे वैसे (यज) यथायोग्य पदार्थोंका मेल कर--"

यजुर्वेद २३ वां अध्याय म० १३

"हे विद्यार्थी जन! अच्छे प्रकार पाकोंसे स्थूल कार्यरूप पवन काटने की क्रियाओं से काली चोटियों वाला अग्नि और मेघोंसे वट वृक्ष उन्नतिके साथ वैर वृक्ष तुझको पाले--"

यजुर्वेद २३ वां अध्याय ऋचा २३

"हे गणके समान आचरण करने हारे राजा तू हम लोगों के प्रति झूठ मत बोलो और बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान तेरा मुख मत हो यदि इस प्रकार जो यह राजा गप्प सप्प करेगा तो निर्बल पखेरू के समान भलीभांति उच्छिन्न जैसे हो इस प्रकार ठगा जायगा।"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३८

"हे मित्र! बहुत विज्ञान युक्त तू इस व्यवहार में इन मनुष्यों से जैसे बहुत से जौ आदि अन्नाज के समूह को भुस आदि से पृथक् कर और क्रम से छेदन करते हैं उन के और जो जल वा अन्न सम्बन्धी वचनको कहकर सत्कार करते हैं उनके भोजनोंको करो।"

आर्यमत लीला।

(१४)

इससे पूर्वके लेखमें जो ऋचाएं यजुर्वेदकी हमने स्वामी दयानन्दके भाष्य के अनुसार लिखी हैं उनसे हमारे पाठक भलीभांति समझ जावेंगे कि भेड़ बकरियों के चराने वाले गंवार लोगों के गीत यजुर्वेद में भी इस ही प्रकार हैं जिस प्रकार ऋग्वेदमें हैं--इस प्रकार नमूना दिखाकर अब हम सबसे पहले यजुर्वेदके २४ वें अध्यायको स्वामी दयानन्द जी के भाष्यसे हिन्दी अर्थों के अनुसार दिखाते हैं और अपने आर्य्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा कर अपने विद्वान् पण्डितों से पूछ कर हमको बतावें कि इस २४ वें अध्याय के मजमूनका क्या आशय है? क्या सोम पीकर भंगकी तरंगमें वेदके गीत बनाने वालोंमें से किसीने यह बरड़ हांकी है? वा वास्तवमें परमेश्वरने वेदके द्वारा आर्य भाइयोंको कोई अद्भुत शिक्षा दी है जिसको कोई दूसरा नहीं समझ सकता है और हमारे आर्य्य भाई उन देवताओं का पूजन करते हैं वा नहीं जिन का वर्णन इस अध्याय में आया है और इन देवताओं का पशु पक्षियों से क्या सम्बन्ध है? और कौन कौन पशु पक्षी किस २ देवताके निमित्त हैं?

यजुर्वेद अध्याय २४ ऋचा १

"हे मनुष्यो तुम! जो शीघ्र चलनेहारा घोड़ा हिंसा करने वाला पशु और गौके समान वर्त्तमान नीलगाय है वे प्रजा पालक सूर्य देवता वाले अर्थात सूर्य मंडलके गुणों से युक्त जिसकी काली गर्दन वह पशु अग्नि देवतावाला प्रथमसे ललाट के निमित्त मेढ़ी सरस्वती देवता वाली नीचे से ठोढ़ी वाम दक्षिण भागों के और भुजाओं के निमित्त नीचे रमण करने वाले जिन का अश्वदेवता वे पशु सोम और पूषा देवता वाला काले रंग से युक्त पशु तुन्दी के निमित्त और बांई दाहनी ओर के नियत सुफेद रंग और काला रंग वाला और सूर्य वा यम सम्बन्धी पशु वा पैरोंकी गांठियों के पास के भागों के निमित्त जिसके बहुत रोम विद्यमान ऐसे गां-

ठियों के पास के भाग से युक्त त्वष्टा देवता वाले पशु वा पूंछ के निमित्त सुफेद रंग वाला वायु जिसका देवता है वह वा जो कामोद्दीपन समय के विना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा विष्णु देवता वाला और नाटा शरीर से कुछ टेढे अंगवाला पशु इन सभों को जिन के सुन्दर २ कर्म उस ऐश्वर्य युक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंगके आनंद निमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ।

(नोट) कृपाकर हमारे आर्य भाई बतावें कि शरीरके पृथक् २ अवयव जैसे ललाट, ठाढ़ी, भुजा, तुंदी पैरों की गठियां, आदिक के निमित्त पृथक् पृथक् पशु पक्षी क्यों वर्णन किये गये हैं--

ऋचा २

हे मनुष्यो तुमको जो सामान्य लाल धुमेला लाल और पके बेर के समान लाल पशु हैं वे सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले जो न्योला के समान धुमेला लालासी लिये हुए न्योले के समान रंग वाला और शुग्गा की समता को लिये हुए के समान रंग युक्त पशु हैं वे सब वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो शिति रन्ध्र अर्थात् जिस के मर्म स्थान आदिमें सुपेदी जो और अंग में छेद से हो वैसी जिसके जहां तहां सुपेदी और जिसके सब ओर से छदों के समान सुपेदी के चिन्ह हैं वे सब सविता देवता वाले जिस के अगले भुजाओं में सुपेदी के चिन्ह जिस के और अंग से और अंगमें सुपेदी के चिन्ह और जिसके सब ओरसे अगले गोड़ों में सुपदी के चिन्ह हैं ऐसे जो पशु हैं वे बृहस्पति देवता वाले तथा जो सब अंगोंसे अच्छी छिटकी हुई सी जिस के छोटे २ रंग बिरंग छींटे और जिस के मोटे २ छींटे हैं वे सब प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये--,,

ऋचा ३

"हे मनुष्यो ! तुम को जो जिस के शुद्ध वाल वा शुद्ध छाटे छोटे अंग जिसके समस्त शुद्ध वाल और जिसके मणिके समान चिलकते हुए वाल हैं ऐसे जो पशु वे सब सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो सुपेद रंग युक्त जिनकी सुपेद आंखें और जो लाल रंग वाला है वे पशुओं की रक्षा करने और दुष्टों को रुलाने हारेके लिये जो ऐसे हैं कि जिनसे काम करते हैं वे वायु देवता वाले जिनके उन्नति युक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे प्राण वायु आदि देवता वाले तथा जिनका आकाशके समान नीलारूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब मेघ देवता वाले जानने चाहिये।,,

ऋचा ४ ॥

"हे मनुष्यो ! जो पूछने योग्य जिसका तिरछा स्पर्श और जिसका ऊंचा वा उत्तम स्पर्श है वे वायु देवता वाले जो फलोंको प्राप्त हों जिनकी लाल ऊर्ण अर्थात् देह के वाल और जिस की चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं वे स-

रखती देवता वाले जिसके कानमें प्लीहा रोग के आकार चिन्ह हों जिसके सूखे कान और जिसके अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं वे सब त्वष्टा देवता वाले जो काले गले वाले जिसके पांजरकी ओर सुपेद अंग और जिस की प्रसिद्ध जंघा अर्थात् स्थूल होनेसे अलग विदित हो ऐसे जो पशु हैं वे सब पवन और विजुली देवता वाले तथा जिसकी करोदी हुई चाल जिसकी थोड़ी चाल और जिस की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं वे सब उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये।" ऋचा ५

"हे मनुष्यो! तुमको जो सुन्दर रूपवान् और शिल्प कार्यों की सिद्धि करने वाली विश्वेदेव देवता वाले वाणी के लिये नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य जो तीन प्रकारकी भेड़ें पृथिवीके लिये विशेष कर न जानी हुई भेड़ आदि धारण करने के लिये एकसे रूप वाली तथा दिव्य गुण वाले विद्वानोंकी स्त्रियोंके लिये अतीव छोटी २ थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये।"

(नोट) हम नहीं समझते कि विद्वानोंकी स्त्रियां थोड़ी अवस्था वाली छोटी २ बछियाओंसे क्या कारज सिद्ध कर सकती हैं और यदि स्त्रियोंका कोई कार्य इन से सिद्ध होता है तो विशेष कर विद्वानोंकी ही स्त्रियोंके वास्ते ही क्यों यह छोटी २ बछिया वर्णन की गई हैं। ऋचा ६

"हे मनुष्यो! जो ऐसे हैं कि जिनकी खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना वे अग्नि देवता वाले जिनकी सुपेद भौंहें हैं वे पृथिवी आदि वसुओं के जो लाल रंगके हैं वे प्राण आदि ग्यारह रुद्रोंके जो सुपेद रंगके और अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे सूर्य सम्बन्धी महीनोंके और जो ऐसे हैं कि जिन का जलके समान रूप है वे जीव मेघ देवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहिये।"

ऋचा ७

"हे मनुष्यो! तुमको जो ऊंचा और श्रेष्ठ टेढ़े अंगों वाले नाटा पशु हैं वे विजुली और पवन देवता वाले जो ऊंचा जिसका दूसरे पदार्थको काटती छांटती हुई भुजाओं के समान बल और जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं वे वायु और सूर्य देवता वाले जिनका सुग्गोंके समान रूप और वेग वाले कबरे भी हैं वे अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो कालेरंग के हैं वे पुष्टि निमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें।" ऋचा ८

"हे मनुष्यो! तुमको ये पूर्वोक्त द्विरूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप हैं वे वायु और विजुली के संगी जो टेढ़े अंगों वाले व नाटे और बैल हैं वे सोम और अग्नि देवता वाले तथा अग्नि और वायु देवता वाले जो वन्ध्या गौ हैं वे प्राण और उदान देवता वाली और जो कहीं से प्राप्त हों वे मित्र के प्रिय व्यवहारमें जानने चाहिये।"

ऋचा ९

"हे मनुष्यो ! तुमको जो काले गलेके हैं वे अग्निदेवता वाले जो न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे सोमदेवता वाले जो सुपेद हैं वे वायु देवता वाले जो विशेष चिन्ह से कुछ न जाने गये वे जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये जो ऐसे हैं कि जिनका एकसा रूप है वे धारण करने हारे पवन के लिये और जो छोटी २ बछिया हैं व सूय आदि लोकों की पालना करने वाली क्रियाओं के जानने चाहिये।"

(नोट) आश्चर्य है कि छोटी २ बछिया सूर्य लोक में क्या काम देसक्ती हैं और सूर्य लोक का उपकार उनसे किस बिधि से लेना चाहिये ?॥

ऋचा १०

"हे मनुष्यो ! तुमको जो काले रंग के चा खेत आदि के जताने वाले हैं वे भूमि देवता वाले जो धूमेले हैं वे अन्तरिक्ष देवता वाले जो दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त बढ़ते हुए और थोड़े सुपेद हैं वे विजुली देवतावाले और जो मंगल करानेहारे हैं वे दुख के पार उतारने वाले जानने चाहिये।"

ऋचा १४

"हे मनुष्यो ! तुम को जो काले गले वाले हैं वे अग्नि देवता वाले जो सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे सोम देवता वाले जो नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे सविता देवता वाले जो छोटी २ बछिया हैं वे वाणी देवता वाली जो काले वर्ण के हैं वे पुष्टि करने हारे मेघ देवता वाले जो पूछने योग्य हैं वे मनुष्य देवता वाले जो बहु रूपी अर्थात् जिनके अनेक रूप हैं वे समस्त विद्वान् देवता वाले और जो निरन्तर चिलकते हुए हैं वे आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहिये।"

ऋचा १५

"हे मनुष्यो ! तुमको ये कहे हुए जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे इन्द्र और अग्नि देवता वाले जो खींचने वा जोतने हारे हैं वे वरुण देवता वाले और जो चित्र बिचित्र चिन्ह युक्त मनुष्य कैसे स्वभाव वाले हिंसक हैं वे प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये।"

ऋचा १७

"हे मनुष्यो ! तुमको जो ये वायु और बिजुली देवता वाले वा जिन के उत्तम शींग हैं वे महेन्द्र देवता वाले वा बहुत रंग युक्त विश्व कर्म देवता वाले जिनमें अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग निरूपण किये उनमें जाना आना चाहिये।"

ऋचा १९

"हे मनुष्यो ! तुम जो ये शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेतीकी सिद्धि करने वाले आने जाने हारे पवन के समान दिव्य गुण युक्त सुपेद रंग वाले वा सूर्यके समान प्रकाशमान सुपेद रंग के पशु कहे हैं उन को अपने कार्यों में अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त करो।"

ऋचा २० ।

"हे मनुष्यो ! पक्षियोंको जानने वाला जन वसन्त ऋतुके लिये गिन कपिंजल नामके विशेष पक्षियों ग्रीष्म ऋतु के लिये चिरौटा नामके पक्षियों वर्षा ऋतुके लिये तीतरों शरद ऋतुके लिये बतकों हेमन्त ऋतुके लिये ककर नाम के पक्षियों और शिशिर ऋतु के अर्थ विककर नाम के पक्षियों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो । "

ऋचा २१

" हे मनुष्यो ! जैसे जलके जीवोंकी पालना करनेको जानने वाला जन महा जलाशय समुद्र के लिये जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों मेघके लिये मेडुकों जलोंके लिये मछलियों मित्रके समान सुख देते हुए सूर्यके लिये कुलीपय नामके जंगली पशुओं और वरुण के लिये नाके मगर जल जन्तुओंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २२

" हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुणका विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये हंसों पवनके लिये बगुलियों इन्द्र और अग्निके लिये सारसों मित्रके लिये जल के कव्वों वा मुर्गाबियों और वरुणके लिये चकई चकवोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २३

" हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुण जानने वाला जन अग्निके लिये मुर्गों वनस्पति अर्थात् विना पुष्प फल देने वाले वृक्षोंके लिये उल्लू पक्षियों अग्नि और सोमके लिये नीलकंठ पक्षियों सूर्य चन्द्रमाके लिये मयूरों तथा मित्र और वरुणके लिये कबूतरोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ।"

ऋचा २४

"हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जान ने वाला जन ऐश्वर्य के लिये बटेरों प्रकाश के लिये कौलीक नामके पक्षियों विद्वानों की स्त्रियों के लिये जो गौओंको मारती हैं उन पखेरियों विद्वानों की बहिनियोंके लिये कुलीक नामक पखेरियों और जो अग्निके समान वर्त्तमान गृह पालन करनेवाला उसके लिये पारुष्ण पक्षियों को प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ।,,

(नोट) समझ में नहीं आया कि विद्वानों की स्त्रियों के वास्ते गौओं का मारने वाला कौन सा पक्षी बताया है और है और किस कार्यके अर्थ? और विद्वानों की बहनोंके वास्ते कौन सा पक्षी नियत किया गया है और किस काम के वास्ते ? ॥

ऋचा० २५

"हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला दिवस के लिये कोमल शब्द करने वाले कबूतरों रात्रि के लिये सीचापू नामक पक्षियों दिन रात्रि के सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकालके लिये जतू नामक पक्षियों महीनोंके लिये

काले कौओं और वर्षके लिये बड़े २ सुन्दर २ पंखों वाले पक्षियोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनको प्राप्त होओ ।,,

ऋचा २६

"हे मनुष्यो ! जैसे भूमि के जंतुओंके गुण जानने वाला पुरुष भूमि के लिये मूषों अन्तरिक्ष के लिये पंक्ति रूपके चलने वाले विशेष पक्षियों प्रकाश के लिये कश नाम के पक्षियों पूर्वआदि दिशाओं के लिये नेवलों और अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओंके लिये भूरे भूरे विशेष नेवलों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ

ऋचा २७

"हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणोंका जानने वाला जन अग्नि आदि वसुओं के लिये ऋश्य गातिके हरिणों प्राण आदि रुद्रों के लिये रोज नामी जंतुओं बारह महीनों के लिये न्यङ्कु नामक पशुओं समस्त दिव्य पदार्थों वा विद्वानोंके लिये पृषत् जाति के मृग विशेषों और सिद्ध करने के योग्य हैं उनके लिये कुलुङ्ग नाम के पशु विशेषों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ।,,

(नोट) क्या बारह महीनोंको भी अग्नि वायु आदि के समान देवता माना है ? और बारह महीने के वास्ते न्यङ्कु नाम का पशु किस कारण से नियत किया है ? उस पशु को वारह महीने वाले देवता के नाम पर अर्पण कर देना चाहिये और यदि करना चाहिये तो किस प्रकार ? ॥

ऋचा ३१

"हे मनुष्यो ! तुमको प्रजापति देवता वाला किंनर निन्दित मनुष्य और जो छोटा कीड़ा विशेष सिंह और बिलार हैं वह धारणा कर ने वाले के लिये उजली चील्ह दिशाओंके हेतु धुङ्क्षा नामकी पक्षिणी अग्नि देवता वाली जो चिरौटा लाल सांप और तालाव में रहने वाला है वे सब त्वष्टा देवता वाले तथा वाणी के लिये सारस जानना चाहिये ।,,

ऋचा ३२

"हे मनुष्यो ! यदि तुमने सोम के लिये जो कुलंग नामक पशु वा बनेला बकरा न्योला और सामर्थ्य वाला विशेष पशु हैं वे पुष्टि करने वालेके सम्बन्धी वा विशेष सियार के हेतु सामान्य सियार वा ऐश्वर्य युक्त पुरुष के अर्थ गोरा हिरण वा जो विशेष मृग किसी और जातिका हरिण और कक्कट नाम का मृग है वे अनुमति के लिये तथा सुने पीछे सुनाने वाली के लिये चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्ति किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकैं ।,,

(नोट) सोमको ऋग्वेद में एक प्रकार की वनस्पति वर्णन किया है जिस को सिल बट्टे से पीसकर और पानी और दूध और मिठाई मिलाकर मद

के वास्ते पीते थे जिसको स्वामी जीने औषधि लिखा है और हमने अपने पिछले लेखों में भंग सिद्ध किया है उस सोमके साथ कुलंग नामका पशु वा जंगली बकरा किस प्रकार युक्त किया जा सक्ता है और उससे क्या कार्य सिद्ध होता है हमारी समझमें नहीं आया ?॥

ऋचा ३३

"हे मनुष्यो! तुमको जिसका सूर्य देवता है वह बगुलिया तथा जो पपीहा पक्षी सृजय नामवाला और शयांड पक्षी हैं वे प्राण देवता वाले शुग्गी पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा नदी के लिये सेही भूमि देवता वाली जो केशरी सिंह भेड़िया और सांप हैं वे क्रोध के लिये तथा शुद्धि करने हारा शुआ पक्षि और जिसकी मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी समुद्रके लिये जानना चाहिये।„

ऋचा ३६

"हे मनुष्यो! तुमको जो हरिणी है वह दिन के अर्थ जो मेंडुका मूंषटी और तीतरि पक्षणी हैं वे सर्पों के अर्थ जो कोई बनचर विशेष पशु वह अश्व देवता वाला जो काले रंगका हरिण आदि है वह रात्रि के लिये जो रीछ जतू नाम वाला और सुषिली का पक्षी है वे और मनुष्यों के अर्थ और अंगोंका संकोच करने हारी पक्षिणी विष्णु देवता वाली जानना चाहिये।„

ऋचा ३७

"हे मनुष्यो! तुमको जो कोकिला पक्षी है वह पखवाड़ोंके अर्थ जो ऋश्यजाति का मृग मयूर और अच्छे पंखों वाला विशेष पक्षी है वे गाने वालों के और जलोंके अर्थ जो जलचर गिंगचा है वह महीनों के अर्थ जो कछुआ विशेष मृग कुंड्ऋणाची नामकी बनमें रहने वाली और गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशु जाति है वह किरण, आदि पदार्थों के अर्थ और जो काले गुण वाला विशेष पशु है वह मृत्यु के लिये जानना चाहिये।

(नोट) अफसोस है कि परमेश्वर ने जिसको वेदका बनाने वाला कहा जाता है मृत्यु के लिये जो पशु है उस का कुछ भी पता न दिया केवल इतना ही कह कर छोड़ दिया कि काले गुण वाला विशेष पशु। स्वामी दयानन्द जी के कथनानुसार वेद तो मनुष्योंको उस समय दिये गये जब वह कुछ नहीं जानते थे और जो विद्यावेद में नहीं है उसको कोई मनुष्य जान नहीं सकता है। यदि ऐसा है तो वेद के बनाने वाले परमेश्वर को यह न सूझी कि जगत् के मनुष्य मृत्यु के पशु को किस तरह पहचानेंगे ? और वह परमेश्वर वेद में यह भी लिखना भूल गया कि उस पशु का मृत्यु से क्या सम्बंध है मृत्यु के लिये उस पशु से क्या और किस प्रकार काम लेना चाहिये ?॥

ऋचा ३८

"हे मनुष्यो! तुम को जो वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी वसन्त आदि ऋ-

तुओं के अर्थ सूषा सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और मान्थाल नामी विशेष जन्तु हैं वे पालना करने वालों के अर्थ बल के लिये बड़ा सांप अग्नि आदि वसुओं के अर्थ कपिंजल नामक जो कबूतर उल्लू और खरहा हैं वे निऋति के लिये और वरुण के लिये बनेला मेंढ़ा जानना चाहिये ।,,

(नोट) यह बात हमको वेदों से ही मालूम हुई कि वर्षा को मेंडक ही बुलाता है, यदि मेंडक न बुलावे तो शायद वर्षा न आवे। यदि ऐसा है तो मेंडक को अवश्य पूजना चाहिये क्यों कि वर्षा के विदून जगत के सर्व मनुष्यों का नाश हो जावे। वर्षा ही मनुष्य की पालना करती है और वर्षा आती है मेंडकों के बुलाने से तबतो मेंडक ही सारे जगत के प्रतिपालक हुये। भाईयो! जितना २ आप विचार करेंगे आप को यह ही सिद्ध होगा कि यह गंवारों के गीत हैं? ग्रामीण बुद्धि हीन अनाड़ी लोगों का जैसा विचार था वैसे वेतुके और बे मतलब गीत उन्होंने जोड़ लिये। बेचारे भेड़ बकरी चराने वाले गंवार इससे अच्छे और क्या गीत जोड़ सकते थे? ॥

ऋचा ३९

"हे मनुष्यों तुमको जो चित्र विचित्र रंगवाला पशु विशेष वह समय के अवयवों के अर्थ जो ऊंट तेजस्वि विशेष पशु और कंठ में जिसके थन ऐसा बड़ा बकरा है वे सब बुद्धि के लिये जो नीलगाय वह बन के लिये जो मृग विशेष है वह रुद्र देवता वाला जो कृयि नामका पक्षी मुर्गा और कौआ हैं वे घोड़ों के अर्थ और जो कोकिला है वह कामके लिये अच्छे प्रकार जानने चाहिये ।,,

(नोट) अफसोस है कि न तो वेद बनाने वाले परमेश्वरने ही वेदमें लिखा और न स्वामी दयानन्द जीने अपनेग्रंथों में जाहिर किया कि बड़ा बकरा जिस के कंठ में थन है बुद्धि के वास्ते किस प्रकार कार्यकारी हो सक्ता है? शायद आर्य भाइयों के कान में स्वामी जी इसकी तरकीब बता गये हों और आर्य भाइयोंने ऐसी कोई तरकीब की भी हो। यह ही कारण मालूम होता है कि वह ऐसे बड़े बुद्धिमान् होगये हैं कि वेदों के गंवारू गीतों को ईश्वरका वाक्य कहते हैं क्योंजी बुद्धिमान् आर्य भाइयो! स्वामी दयानन्दजीने तो वेदों को प्रकाश करके उनका भाष्य बनाकर जगत्का उपकार किया है आप कृपा कर इतना ही बता दीजिये कि मुर्गे और कव्वे घोड़ों के अर्थ किस प्रकार हैं? ॥

ऋचा ४०

"हे मनुष्यो तुम को जो ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है वह सब विद्वानोंका जो कालेरंग वाला कुत्ता बड़े कानों वाला गदहा और व्याघ्र हैं सब वे सब राक्षस दुष्ट हिंसक हवषियों के अर्थ जो सुअर है वह शत्रुओं को

बिदारने वाले राजाके लिये जो सिंह है वह मरुत देवता वाला जो गिर गिटान पिप्पका नाम की पक्षिणी और पक्षिमात्र हैं वे सब जो शरबियों में कुशल उत्तम है उसके लिये और जो पृषज्जाति के हरिण हैं वे सब विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ।”

(नोट) प्रिय पाठको अब आप समझ गये होंगे कि इस अध्याय में कैसे गीत हैं ? इसही प्रकारका वर्णन सारे अध्याय में है परन्तु भेड़ बकरी चराने वाले गंवारों की जैसी बुद्धि होती है वैसा ही उन विचारों ने गीतोंमें अटकलपच्चू वर्णन किया है ॥

आर्यमत लीला ।

(१५)

वेदोंमें मांसका भी वर्णन मिलता है स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थोंके अनुसार हम कुछ वेद मंत्र लिखते हैं और अपने उन आर्या भाइयोंसे जो मांसका निषेध करते हैं प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा कर इन मंत्रोंको पढ़ें और विचार करें कि—वेदोंमें मांसका वर्णन किस कारण आया है ? और यदि भले प्रकार विचारके पश्चात् भी उनकी यह ही सम्मति हो कि वेद ईश्वर वाक्य हैं और अवश्य मानने योग्य हैं तो परोपकार बुद्धिसे वह इन मंत्रों का आशय प्रकाशित कर देवें ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋ० १३

“जो मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस पाक सिद्ध करने वाली बटलोई का निरन्तर देखना करते उसमें वैमनस्य कर जो रसके अच्छे प्रकार सेचनके आधार वा पात्र वा गरमपन उत्तम पदार्थ बटलोइयोंके मुख ढांपनेकी ढकनियां अन्न आदिके पकानेके आधार बटलोई कड़ाही आदि बर्तनोंके लक्षण हैं उनको अच्छे जानते और घोड़ोंको सुशोभित करते हैं वे प्रत्येक काममें प्रेरित होते हैं ॥”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३४ ऋ० २

“हे मनुष्यो जो कामना करता हुआ बहुत धनसे युक्त जन सोमलतासे उत्पन्न रससे उदरकी अग्निको अच्छे प्रकार पूर्ण करे और मधुर आदि गुणोंसे युक्त अन्न आदिका भोग करके आनन्द करे और जो अत्यन्त नाश करने वाला (मृगाय) हरिणको मारनेके लिये हजारों दहन जिससे उस बधको सब प्रकारसे देवै वह सब सुखको प्राप्त होता है ॥”

यजुर्वेद २१वां अध्याय ऋ० ५९

“हे मनुष्यो जैसे यह पचानेके प्रकारों को पचाता अर्थात् सिद्ध करता और यज्ञ आदि कर्ममें प्रसिद्ध पाकोंको पचाता हुआ यज्ञ करने हारा सुखोंके देने वाले आगको स्वीकार वा जैसे प्राण और अपान के लिये छेरी (बकरी का बच्चा) विशेष ज्ञान युक्त वाणीके लिये भेड़ और परम ऐश्वर्यके लिये बैल को बांधते हुए वा प्राण अपान विशेष

ज्ञान युक्त वाणी और भली भांति रक्षा करने हारे राजाके लिये उत्तम रस युक्त पदार्थोंका सार निकालते हैं वैसे तुम आज करो-„

यजुर्वेद २१ वां अध्याय म०६०

"हे मनुष्यो जैसे आज भली भांति समीप स्थिर होने वाले और दिव्य गुण वाला पुरुष वट वृक्ष आदिके समान जिसर प्राण और अपानके लिये दुःख बिनाश करने वाले छेरी आदि पशुसे वाणीके लिये मेढ़ासे परम ऐश्वर्यके लिये बैलसे भोग करें उन सुन्दर चिकने पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओंका ग्रहण करें प्रथम उत्तम संस्कार किये हुए विशेष अन्नोंसे वृद्धिको प्राप्त हों प्राण अपान प्रशंसित वाणी भलीभांति रक्षा करने हारा परम ऐश्वर्यवान राज-को अरक खींचनेसे उत्पन्न हों उन औषधि रसोंको पीवें वैसे आप होवो-„

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० २९

"जो यज्ञ खंभाके छेदने बनाने और जो यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले घोड़ाके बांधनेके लिये खम्भाके खंडको काटते छांटते और जो घोड़ाके लिये जिसमें पाक किया जाय उस कामको अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते और जो उत्तम यत्न करते हैं उन का सब प्रकारसे उद्यम हम लोगोंको व्याप्त और प्राप्त होवे-"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३१-३२

"हे विद्वन् ! प्रशस्त वेग वाले इस बलवान् घोड़ेका जो उदर-बन्धन अर्थात् तंगी और अगाड़ी पिछाड़ी पर आदिमें बांधनेकी रस्सी वा जो शिर में होने वाली मुंहमें व्याप्त रस्सी मुहेरा आदि अथवा जो इस घोड़ेके मुख में घास दूब आदि विशेष तृण उत्तमतासे धरी हो वे सब पदार्थ तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु ही विद्वानोंमें भी हो--"

"हे मनुष्यो ! जो मक्खी चलते हुए शीघ्र जाने वाले घोड़ेका भोजन करती अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती अथवा जो स्वर वज्रके समान वर्त्तमान हैं वा यज्ञ करने हारेके हाथोंमें जो वस्तु प्राप्त और जो नखों में प्राप्त है वे सब पदार्थ तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार विद्वानोंमें भी होवें ।„

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३५

"जो घोड़ेके मांसके मांगनेकी उपासना करते और जो घोड़ा को मारा हुआ मारने योग्य कहते हैं उनको निरन्तर हरो दूर पहुंचाओ--जो वेगवान् घोड़ोंको पक्का सिखाके सब ओरसे देखते हैं और उनका अच्छा सुगन्ध और सब ओर से उद्यम हम लोगों को प्राप्त हो उनके अच्छे काम हम को प्राप्त हैं इस प्रकार दूर पहुंचाओ । "

यजुर्वेद २५ वां अध्याय म० ३६

"जो गरमियोंमें उत्तम ढांपने और सिचाने हारे पात्र वा जो मांस जिसमें पकाया जाय उस बटलोई का निकृष्ट देखना वा पात्रोंके लक्षण किएहुए प्रसिद्ध पदार्थ तथा बढ़ाने वालेके बो-

ड़ेको सब ओरसे सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं।"

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३७

"हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् जन जिस चाहे हुये प्राप्त चारों ओरसे जिसमें उद्यम किया गया ऐसे क्रियासे सिद्ध हुए वेगवान् घोड़ेको प्रति प्रतीतिसे ग्रहण करते उसको तुम सब ओरसे जानो उसको धुआंमें गन्ध जिसका वह अग्निमत शब्द करे वा उसको जिससे किसी वस्तुको सूंघते हैं वह चमकती वटलोई मत हिलवावे।,,

यजुर्वेद २८ वां अध्याय ऋ० ४६

"हे मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान पुरुष! जैसे यज्ञ करने हारा इस समय नाना प्रकार के पाकोंको पकाता और यज्ञमें होमनेके पदार्थको पकाता हुआ तेजस्वी होता को आज स्वीकार करे वैसे सबके जीवन को पढ़ाने हारे उत्तम ऐश्वर्यके लिये छेद न करने वाले बकरी आदि पशुको बांधते हुए स्वीकार कीजिये--,,

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ४२

"हे मनुष्यो! जैसे अकेला वसन्ति आदि ऋतु शोभायमान घोड़ेका विशेष करके रूपादिका भेद करने वाला होता है वा जो दो नियम करने वाले होते हैं वैसे जिन तुम्हारे अंगों वा पिछलोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थों को मैं करता हूं उन २ को आगमें होमता हूं-,,

(नोट) अंगों वा पिछलोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थ क्या वेही पशु पक्षी आदि हैं जिनका वर्णन यजुर्वेद अध्याय २४ वें में किया है?

आर्यमत लीला।

[घ—भाग]

आर्योंका मुक्ति सिद्धान्त।

(१६)

भेड़ बकरी चराने वाले गंवारोंके जो गीत वेदोंसे उद्धृत कर हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थों के अनुसार जैनगजट में [पिछले लेखों में] लिखते रहे हैं उस को पढ़ते पढ़ते हमारे भाई उकता गये होगें-हमने बहुत सा भाग वेदोंका जैनगजट में छाप दिया है शेष जो छपने से रह गया है उस में भी प्रायः इसही प्रकार के गंवारू गीत हैं इस कारण यदि आगामी भी हम वेदों के वाक्य छापते रहेंगे तो हमारे पाठकों को अरुचि हो जावैगी—

अतः अब हम वेद वाक्योंका लिखना छोड़कर आर्य्यमतके सिद्धान्तों और स्वामी दयानंद जी की करतूत को दिखाना चाहते हैं—

हमारे पाठक जानते हैं कि पृथ्वी पर अनेक देश हैं परन्तु हिन्दुस्तानके अतिरिक्त अन्य किसी देश वासियों को जीवात्मा के गुण स्वभाव और कर्म का ज्ञान नहीं है-आजकल अंगरेज़ लोग बहुत बुद्धिमान कहलाते हैं और पदार्थ विद्या में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने अनेक ऐसी कलें ब-

गई हैं जिन को देखकर हिंदुस्तानी आश्चर्य मानते हैं परंतु उनका सब ज्ञान जड़ अर्थात् अचेतन-पुद्गल पदार्थ के विषयमें है जीवात्मा के विषय को वह कुछ भी नहीं जानते हैं और वह यह मानते भी हैं कि जीवात्मा के विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह हिंदुस्तानसे ही हो सकता है--यह ही कारण है कि वह हिंदुस्तान के शास्त्रों की बहुत खोज करते हैं और हिंदुस्तान का जो कोई धार्मिक विद्वान् उनके देशमें जाता है उसका वह आदर सत्कार करते हैं और उसके व्याख्यान को ध्यानसे सुनतेहैं।

जीवात्मा के विषय को जानने वाले हिन्दुस्तानियों का यह सिद्धांत सर्व मान्य है कि जीव नित्य है, अनादि है, अनन्त है, जड़ अर्थात् अचेतन पदार्थ से भिन्न है, कर्म वश बंध में फंसा है इसी से दुःख भोगता है परंतु कर्मों को दूर कर बंधन से मुक्त हो सकता है जिस को मुक्ति कहते हैं और मुक्ति दशा को प्राप्त होकर सदा परमानन्द में मग्न रहता है। यह गूढ़ बात हिन्दुस्तान के ही शास्त्रों में मिलती है कि जीव का पुरुषार्थ सुख की प्राप्ति और दुःख का वियोग करना ही है। दुःख प्राप्त होता है इच्छा से और सुख नाम है इच्छा के न होने का इस कारण परम आनन्द जिस को मुक्ति कहते हैं वह इच्छाके सम्पूर्ण अभाव होने से ही होती है। इस ही हेतु इच्छा वा राग द्वेष के दूर करनेके साधनोंका नाम धर्म है। इसही साधन के गृहस्थ और सन्यास आदिक अनेक दर्जे महर्षियों ने बांधे हैं और इस ही के साधनों के वर्णन में अनेक शास्त्र रचे हैं। इन ही शास्त्रोंके कारण हिन्दुस्तानका गौरव है और सत्य धर्म की प्रवृत्ति है।

यद्यपि इस कलिकाल में इस धर्मपर चलने वाले विरले ही रह गये हैं विशेष कर बाह्य आडम्बर के ही धर्मात्मा दिखाई देते हैं परन्तु ऋषि प्रणीत शास्त्रोंका विद्यमान रहना और मनुष्यों की उन पर श्रद्धा होना भी ग़नीमत था और इतनेही से धर्म की बहुत कुछ स्थिति थी। परन्तु इस कलिकाल को इतना भी मंजूर नहीं है और कुछ न हुवा तो इस कलि के प्रभाव से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज पैदा होगये जिन्हों ने धर्म को सर्वथा निर्मूल करदेना ही अपना कर्तव्य समझा और धर्मको एक बच्चों का खेल बनाकर हजारों भोले भाईयों की मति (बुद्धि) पर अज्ञान का पर्दा डाल दिया और उस हिन्दुस्तान में जो जीवात्मा और धर्म के ज्ञान में जगत् प्रसिद्ध है ऐसा विषका बीज बोकर चलदिये कि जिससे सत्य धर्म बिल्कुल ही नष्ट भ्रष्ट हो जावे वह अपने चेलों को यह विलक्षण सिद्धान्त सिखा गये हैं कि जीवात्मा कभी कर्मों से रहित हो ही नहीं सकता है वरन इच्छा द्वेष आदिक उपाधि इस के सदा बनी ही रहती हैं।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! यदि आप धर्म के सिद्धान्त और उन के लक्षणों पर ध्यान देंगे तो आप को मालूम होजावेगा कि स्वामी जी का यह नवीन सिद्धान्त धर्म की जड़ पूरी तौर पर उखाड़कर फेंक देने वाला है परन्तु क्या किया जाय आप तो धर्मकी तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं ? आप ने अपना सारा पुरुषार्थ संसार की ही वृद्धि में लगा रक्खा है। प्यारे आर्य्य भाइयो ! संसार में अनेक प्रकार के अनन्त जीव हैं परन्तु धर्म को समझने और धर्म साधन करने की शक्ति एक मात्र मनुष्य को ही है नहीं मालूम आपका और हमारा कौन पुण्य उदय है जो यह मनुष्य जन्म प्राप्तहो गया है और नहीं मालूम कितने काल मनुष्य शरीर के अतिरिक्त अन्य कीड़ी मकौड़ी कुत्ता बिल्ली आदिक जीवों के शरीर धारण करते हुवे रुलते फिरते रहे हैं ? हमारा यह ही अहो भाग्य नहीं है है कि हमने मनुष्य जन्म पाया बरण इससे भी अधिक हमारा यह अहो भाग्य है कि हम ने हिन्दुस्तान में जन्म लिया जहां ऋषि प्रणीत अनेक सत् शास्त्र जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त कराने वाले हमको प्राप्त हो सकते हैं इस कारण हमको यह समय बहुत ग़नीमत समझना चाहिये और अपने कल्याण में अवश्य ध्यान देना चाहिये और सत्य सिद्धान्तोंकी खोज करनी चाहिये।

ज्यादा मुशकिल यह है कि आप लोग स्वामी दयानन्द जी से विरुद्ध कुछ सुनना नहीं चाहते हैं क्योंकि आप के हृदय में यह दृढ़ प्रतीति है कि स्वामी जी ने हिन्दुस्तान का बहुत उपकार किया है और जो कुछ धर्म का आन्दोलन हो रहा है वह उन ही की कृपा का फल है। प्यारे भाइयो ! यह आप का ख्याल एक प्रकार बिल्कुल सच्चा है और हम भी ऐसा ही मानते हैं परन्तु ज़रा ध्यान देकर विचारिये कि संसार में जो हज़ारों मत फैल रहे हैं वा जो लाखों मत फैलते रहे हैं उन मतों के चलाने वाले क्या परोपकारी नहीं थे ? और क्या उस समय उनसे संसार का उपकार नहीं हुवा है ? परंतु बहुतसे धर्म के चलाने वाले परोपकारियों का परोपकार उस समय के अनुकूल होने से थोड़े ही दिनों तक रहा है पश्चात् वहही उनके सिद्धांत विषके समान हानिकारक हो गये हैं-दृष्टान्त रूप विचारिये कि आपके ही कथनानुसार उस समय में जब कि यवन लोग हिंदुओं की कन्याओंको जबरदस्ती निकाह में लेने (विवाहने) लगेतोकाशीनाथजी इस आशय का श्लोक घड़के कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये हिन्दुओं का कितना बड़ा भारी उपकार किया परन्तु वास्तव में वह उपकार नहीं था अपकार था और पूरीदुश्मनीकी थी क्योंकि काशीनाथ जी ने सत्य रीति और सत्य शिक्षा से

काम नहीं लिया वरन धोके से काम लिया और उस समय के मनुष्यों को बहकाया कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये इसके उपरांत विवाह न करने से पाप होता है -यद्यपि उस समय के लोगों को उनका यह कृत्य उपकार नजर आया परंतु उसका यह जहर खिला (फैला) कि इस ही के कारण सारा हिंदुस्तान निर्बल और शक्ति शून्य हो गया और इसही के प्रचारके कारण बाल विवाह के रोकनेमें जो कठिनाई प्राप्त हो रही है वह आप का मन ही जानता है।

प्यारे आर्यभाइयो ! जितने मत मतान्तरोंका स्वामी जीने खण्डन किया है और आप खण्डन कर रहे हैं उनके चलाने वाले उसही प्रकार परोपकारी थे जिस प्रकार स्वामी दयानन्द जी और उस समयके लोगोंने उन को ऐसा ही परोपकारी मानाया जैसा कि स्वामी दयानन्द जी माने जाते हैं परन्तु जिन परोपकारियों ने सत्य से काम लिया यद्यपि उन के परोपकार का प्रचार कम हुआ परंतु वह सदा के वास्ते परोपकारी रहेंगे और जिन्होंने काशीनाथ की तरह बनावट से काम लिया और समय की जरूरत के अनुसार मनघड़ंत सिद्धांत स्थापित करके काम निकाला उन्होंने यद्यपि उस समय के वास्ते उपकार किया परंतु वे सदा के वास्ते अधर्म रूपी विष फैला गये हैं।

मेरे प्यारे भाइयो ! यदि आपने स्वामी दयानंद जी के वेदों के भाष्य को पढ़ा होगा और यदि नहीं पढ़ा तो जैनगजट में जो वेदों के विषय में लेख छपे हैं उनसे जान गये होंगे कि वेद कदाचित् भी ईश्वर कृत नहीं कहे जा सकते हैं वरण वह किसी विद्वान् मनुष्य के बनाये हुवे भी नहीं हैं वह केवल भेड़ बकरी चराने वाले मूर्ख गंवारों के गीत हैं। उनमें कोई विद्या की बात नहीं है परन्तु सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जीने वेदों को ईश्वरकृत समझाया है और दुनियां भरकी विद्या का भण्डार उनको बताया है। इसका कारण क्या ? स्वामी दयानन्द जी जिन्हों ने स्वयम् वेदों का अर्थ किया है क्या इस बात को जानते नहीं थे कि वे कोई ज्ञान की पुस्तक नहीं है? वह सब कुछ जानते थे परन्तु सीधे सच्चे रास्ते पर चलना उनका उद्देश नहीं था वह अपना परम धर्म इस ही में समझते थे कि जिस विधि हो अपना मतलब निकाला जावे। वह जानते थे कि हिन्दुस्तान के प्रायः सर्व ही मनुष्य वेदों पर श्रद्धा रखते हैं इस कारण उनको भय था कि वेदों के निषेध करने में कोई भी उनकी न सुनैगा इस कारण उन्हों ने वेदों की प्रशंसा की। परंतु सच पूछो तो इस काम में उन्हों ने आर्य्य समाज के साथ दुश्मनी की क्योंकि आज कल हिन्दी भाषा और संस्कृत विद्या का

प्रचार अधिक होता जाता है लोग पहले की तरह ब्राह्मणों वा उपदेशकों के वाक्यों पर निर्भर नहीं हैं वरण स्वयम् शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं इस कारण जब आर्य्य लोगों में वेदों के पढ़ने का प्रचार होगा तब ही उन को आर्य्य मत झूठा प्रतीत हो जावेगा।

प्यारे आर्य्य भाइयो! आपको संदेह होगा और आप प्रश्न करेंगे कि स्वामी जी को आर्य्य मत स्थापन करने और झूठ सच बातें बनाकर हिन्दुस्तान के लोगों को अपने झंडे तले लाने की क्या आवश्यकता थी? इस का उत्तर यदि आप बिचार करेंगे तो आप को स्वयम् ही मिल जावेगा कि स्वामी जी एक प्रकार से परोपकारी थे-उनके समय में बहुत हिंदू लोग ईसाई होने लगे और अंगरेजी लिखे पढ़ों को हिन्दू धर्म से घृणा होने लगी थी। स्वामी जी को इस का बड़ा दुःख था उन्हों ने जिस तिस प्रकार अंगरेजी पढ़ने वाले हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया और जो २ बातें उन लोगों को प्रिय थीं वह सब प्राचीन हिंदू ग्रन्थों में सिद्ध करके दिखाईं--और वेद जो सब से प्राचीन प्रसिद्ध थे उन को नवीन सिद्धान्तों का आश्रय बनालिया। अंगरेजी पढ़े लिखे हिंदू भाई जिन्हों ने अंगरेजी फ़िलासफ़ी में अचेतनपदार्थ का ही वर्णन पढ़ा था उनकी समझ में जीवात्मा का कर्म रहित होकर मुक्ति में नित्य के लिए रहने का सिद्धांत कब आने लगाथा? इस कारण स्वामी जी को उस समयके अंगरेजी पढ़े हिन्दुओंकी रुचिके वास्ते जहां अन्य अनेक नवीन सिद्धान्त घड़ने पड़े वहां मुक्तिके विषयमें भी धर्मका बिल्कुल विध्वंस करने वाला यह सिद्धान्त नियत करना पड़ा कि जीवात्मा कभी कर्मोंसे रहित होही नहीं सकता है और इच्छा द्वेष इससे कभी दूर होही नहीं सकते हैं॥

प्यारे आर्य भाइयो! हमारा यह अनुमान ही नहीं है वरण हम सत्यार्थप्रकाशसे स्पष्ट दिखाना चाहते हैं कि स्वामी जी अपने हृदयमें मानते थे कि इच्छाके दूर होनेसे ही सुख होता है। इच्छा द्वेषके पूर्ण अभावसे ही परमानन्द प्राप्त होता है। परमानन्द हीका नाम मुक्ति होता है और मुक्ति प्राप्त होकर फिर जीव कर्मोंके बंधनमें नहीं पड़ता है--परन्तु ऐसा मानते हुए भी स्वामीजीने इन सब सिद्धान्तोंके विरुद्ध कहना पसन्द किया। देखिये--

(१) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० पर स्वामीजी लिखते हैं---

"सब जीव स्वभावसे सुख प्राप्तिकी इच्छा और दुःखका वियोग होना चाहते हैं--।"

(२) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १९८ पर स्वामीजी लिखते हैं:--

"जब उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर आसन लगा प्राणायाम कर बाह्य विषयोंसे इन्द्रि-

योंको रोक.........अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवें „

"वैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे **सबदोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण स्वभाव पवित्र होजाते हैं"**

(३) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५७ पर स्वामीजी लिखते हैं–

"मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे **पूर्णज्ञानी होकर** उसको सब सन्निहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है„

(४) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३६ पर स्वामीजी प्रश्नोत्तररूपमें लिखते हैं:–

"(प्रश्न) मुक्ति किसको कहते हैं? (उत्तर) "मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिसमें छूटजाना हो उसका नाम मुक्ति है (प्रश्न) किससे छूटजाना? (उत्तर) जिससे छूटनेकी इच्छा सब जीव करते हैं? (प्रश्न) किससे छूटनेकी इच्छा करते हैं (उत्तर) जिससे छूटना चाहते हैं (प्रश्न) किस से छूटना चाहते हैं? (उत्तर) दुःखसे (प्रश्न) छूटकर किसको प्राप्त हों और कहां रहते हैं? (उत्तर) सुखको प्राप्त होते हैं और **ब्रह्ममें रहते हैं"**

(५) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३७ पर स्वामीजी लिखते हैं:—

"मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साथ नहीं रहते किन्तु **अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं"**

(६) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३८ पर स्वामी जी लिखते हैं:—

"क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःखसे रहित नहीं हो सकते जैसे इन्द्रसे प्रजापतिने कहा है कि हे परम पूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरण धर्मा है और जैसे सिंहके मुखमें बकरी होवे यह शरीर मृत्युके मुखके बीच है सो शरीर इस मरण और शरीर रहित जीवात्माका निवासस्थान इसीलिये यह जीव सुख और दुःखसे सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीवके सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती है और जो **शरीर रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्ममें रहता है उसको सांसारिक सुख दुःखका स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है"**

स्वामीजीके उपर्युक्त वाक्योंसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्य सिद्धान्तको भलकको समझते और जानते थे परन्तु अपने चेलोंको बहकाने और राजी रखने के वास्ते उन्होंने इसही सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी अनहोनी बातें कहीं हैं जिनको पढ़कर यह ही कहना पड़ता है कि वह कुछ भी नहीं जानते थे और बिलकुल अज्ञान ही थे।

देखिये इस बातके सिद्ध करनेमें कि मुक्तिसे लौटकर फिर जीव संसारके बंधनमें आता है स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४०—२४१ पर लिखते हैं:—

"दुःखके अनुभवके विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता जैसे कटु नहो तो मधुर क्या जो मधुर नहो तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वादके एक रसके विरुद्ध होनेसे दोनोंकी परीक्षा होती है जैसे कोई मनुष्य मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंको भोगने वालोंको होता है—और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जावे जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसा एक मनभर उठाने वाले के शिर पर दशमन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है। वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं"

पाठकगण! क्या उपरोक्त लेखको पढ़कर यह ही कहना नहीं पड़ेगा कि या तो स्वामीदयानन्दजी निरे मूर्ख थे और मुक्ति विषयको कुछ भी समझ नहीं सकते थे, अथवा जान बूझकर उन्होंने उलटी अधर्मकी बातें सिखानेकी कोशिश की है—हमारी समझमें तो नादान बालक भी ऐसी उलटी बातें न करेंगे ऐसी उलटी पुलटी बातें तो बावला ही किया करता है जिसके दिमागमें फरक आगया हो—

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको इन्द्रियोंके विषयकी अत्यन्त लोलुपता थी और विषय भोगको ही वह परम सुख मानते थे तवही तो वह मुक्ति सुखके निषेधमें लिखते हैं कि "कि जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों को भोगने वालेको होता है"—वाह! स्वामीजी वाह!! धन्य है आपको! वेशक मुक्तिके स्वरूप को आपके सिवाय और कौन समझ सकता है? इस प्रकार मुक्तिका स्वरूप न किसीने समझा और न आगेको कोई समझैगा! क्योंजी! मुक्तिको प्राप्त होकर और **ईश्वरसदृश गुण, कर्म, स्वभाव धारण कर** जीवात्मा को मुक्तिका आनन्द भोगते २ थकता जाना चाहिये और सांसारिक विषय भोगों के वास्ते संसारमें फंसना चाहिये? वाह स्वामीजी! क्या कहने हैं आपकी बुद्धिके! आपका तो अवश्य यह भी सिद्धान्त होगा कि जिस प्रकार एक मीठा ही खाता हुआ मनुष्य उतना सुख प्राप्त नहीं कर सकता है जितना सर्वप्रकारके रसोंको भोगने वालेको होता है। इस ही प्रकार एक पुरुषसे सन्तुष्ट विवाहिता स्त्री को इतना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना वेश्याओंको होता है जो अनेक पुरुषोंसे रमण करती हैं और आपका तो शायद यह ही उपदेश होगा कि जिस प्रकार इन्द्रियोंके नाना भोग भोगनेके वास्ते मुक्त जीवको संसारमें

फिर जन्म लेना चाहिये इस ही प्रकार विवाहिता स्त्रीको भी चाहिये कि वह निज भरतारको छोड़कर वेश्या बनकर अनेक पुरुषोंसे रमण करे—?

क्यों स्वामीजी ! ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर भी तो एकही स्वरूप है जब जीवात्माको मुक्तिदशा में **ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव के सदृश होकर** एक स्वरूपमें रहनेसे उतना सुख प्राप्त नहीं हो सकता जितना संसारमें जन्म लेकर इन्द्रियोंके अनेक विषय भोगोंके भोगनेसे होता है। तो अवश्य आपके कथनानुसार ईश्वर तो अवश्य दुखी रहता होगा और संसारी जीवोंकी नाईं अनेक जन्म लेकर संसारकी सर्वप्रकार की अवस्था भोगनेकी इच्छामें तड़फता रहता होगा कि मैंभी जीव क्यों न हो गया जो संसारके सर्वप्रकारके रस चखता?

पहले यह लिखकर भी कि " मुक्ति में जीव ब्रह्म में रहता है और ब्रह्मके सदृश उसके गुण कर्म स्वभाव होजाते हैं," मुक्ति जीवको संसारमें लानेकी आवश्यकता को सिद्ध करनेमें स्वामी जी ! आपको यह दृष्टान्त देते हुए कुछ भी लज्जा न आई कि एक मीठा मीठा ही खाते हुए को उतना सुख नहीं होता है जितना सर्वरसोंके चखने वालेको होता है। क्यों स्वामी जी ! आपके कथनानुसार तो सत्य ही बोलने वालेको उतना सुख नहीं होता होगा जितना उस को होता होगा जो कभी सत्य बोले और कभी झूठ ? इस कारण झूठ भी अवश्य बोलना चाहिये—

धर्मात्मा पुण्यवान् जीवोंको जब ही पूर्णसुख मिलता होगा जब वह साथ २ पाप भी करते रहैं। मनुष्य जन्म पाकर धर्मात्मा बनना और इस बातका यत्न करना मूर्खता होगा कि आगामी को भी मैं मनुष्य जन्म ही लेता रहूं बरण आपने तो मनुष्य जन्मके सुख से उकताकर इस ही बातकी कोशिश की होगी कि आगामीको मनुष्यजन्म प्राप्त नहो बरण कीड़ी मकोड़ा कुत्ता बिल्ली आदिक अनेक सर्वप्रकारके जन्मोंके भोग भोगनेको मिलैं ?॥

स्वामी जी ! आप मुक्तिके साधनके वास्ते स्वयम् लिखते हैं कि, " बाह्य विषयोंसे इन्द्रियोंको रोक अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न हो संयमी होवें, " जिस से स्पष्ट विदित है कि इच्छा और द्वेष से रहित होने से ही मुक्ति होती है जितना जितना इच्छा द्वेष दूर होता जावैगा उतना ही अन्तःकरण निर्मल होता जायगा अन्तःकरणकी ही सफाई को धर्म कहते हैं इस ही के अनेक साधन ऋषियोंने वर्णन किये हैं और इच्छा द्वेषके ही सर्वथा छूटजानेका नाम मुक्ति है परन्तु फिर भी आप जीवात्माको इतना अधिक विषयासक्त बनाना चाहते हैं कि मुक्तिसे भी लौट आनेका लालच दिलाते हैं और कहते हैं कि एक स्वरूपमें रहनेसे आनन्द नहीं

मिलेगा वरण मुक्तिसे लौटकर और संसार में भ्रमण कर संसारके सर्व विषय भोगोंसे ही आनन्द आवेगा।

प्यारे आर्य्य भाइयो! क्या उपरोक्त स्वामीजीके सिद्धान्तसे सत्यधर्मका नाश और अधर्मकी प्रवृत्ति नहीं होती है? अवश्य होती है क्योंकि धर्म वह ही हो सकता है जो जीवको रागद्वेषके कम करने वा दूर करनेकी विधि बतावे और अधर्म वह ही है जो रागद्वेषमें फंसावे वाममार्ग इस ही कारण तो निन्दनीय है कि वह विषयाशक्त बनाता है-इस ही हेतु जो सिद्धान्त रागद्वेष और संसारके विषयभोगकी प्रेरणा करै वह अवश्य निन्दनीय होना चाहिये॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अपने नवीन सिद्धान्तको सिद्ध करनेके वास्ते यह भी भय दिखाते हैं कि "जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट होजाय, जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एकमन भार उठाने वालेके शिर पर दश मन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं"—

प्यारे पाठको! इस हेतुसे भी स्वामी जीकी बुद्धिमानी टपकती है क्योंकि प्रथम यह लिखकर कि "परमेश्वरके गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं और जो शरीर रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है" फिर यह लिखना कि परमेश्वर फिर जीवात्माको मुक्तिसे लौटाकर संसारमें भ्रमाता है परमेश्वर को साक्षात् अन्यायी बनाना है-जीवात्मा ने तो अपने आप को निर्मल और पवित्र करके मुक्ति में पहुंचाया यहां तक कि उसको स्थान भी ब्रह्ममें ही वास करने का मिला परन्तु स्वामीजीके कथनानुसार ब्रह्मने फिर उस की निर्मलताको विगाड़ा और संसार के पापोंमें फंसानेके वास्ते मुक्तिसे बाहर निकाला—

स्वामीजी! यदि आपको यह सिद्ध करना था कि जीवात्मामें मुक्ति प्राप्त करने की शक्ति ही नहीं है-आप की अद्भुत समझके अनुसार यदि उसका निर्मल होना उस पर अधिक बोझ लादना है तो आपने यह क्यों लिखा कि "जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव ईश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुसार पवित्र हो जाते हैं और वह सदा आनन्दमें रहता है"-आपको तो यह ही लिखना था कि जीवात्मा कभी इन्द्रियोंके विषय भोगसे विरक्त हो ही नहीं सकता है वरण सदा संसार के ही मज़े उड़ाता रहता है-परन्तु स्वामी जी क्या करें ऋषियों ने तो सर्व ग्रन्थों में यह ही लिखदिया कि जीवात्मा रागद्वेषसे रहित होकर स्वच्छ और निर्मल हो-

जाता है और इस मुक्त दशा में वह परम आनन्द भोगता है जो कदाचित् भी संसारमें प्राप्त नहीं हो सकता है इस कारण उनको ऋषियोंके वाक्य लिखने ही पड़े परन्तु जिस जिस प्रकार उन को रद्द करने और संसार बढ़ानेका उपदेश देनेकी भी कोशिश की गई ।

आर्यमत लीला ।

(१७)

यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि एक असत्य बात को संभालने के वास्ते हजार झूंठ बोलने पड़ते हैं और फिर भी वह बात नहीं बनती है-यह ही मुशकिल स्वामी दयानन्द को पेशआई है-स्वामी जी ने अपने अंगरेज़ी पढ़े चेलों के राजी करने के वास्ते यह स्थापन तो कर दिया कि मुक्ति से जीव लौट कर फिर संसार में रुलता है परन्तु इस अद्भुत सिद्धांत के स्थिर रखने में उनको अनेक ऊट पटांग बातें बनानी पड़ी हैं-

स्वामी जी को यह तो लाचार मानना पड़ा कि जीवात्मा स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति को प्राप्त होकर ब्रह्म में वास करता है परन्तु मुक्ति में भी जीव को इच्छा के वश में फंसाने के वास्ते स्वामी जी ने अनेक बातें बनाई हैं । यथाः—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३६

"(प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है ? (उत्तर) विद्यमान रहता है (प्रश्न) कहां रहता है ? (उत्तर) ब्रह्म में (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है ? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्तजीव अव्याहत गति अर्थात् उस को कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र विचरता है—"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३८

"उस से उन को सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो जो संकल्प करते हैं वह वह लोक और वह वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर संकल्प मय शरीर से आकाशमें परमेश्वरमें विचरते हैं—"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४५

"मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरे"

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४९

"अर्थात् जिस जिस आनंद की कामना करता है उस २ आनन्द को प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है—"

पाठक वृंद ! विचार कीजिये कि जीव को इच्छा में फंसाने के वास्ते स्वामी जी ने मुक्ति को कैसा बालकों का खेल बनाया है ?—स्वामी जी को इतनी भी समझ न हुई कि जहां इच्छा है वहां आनंद कहां ? जब तक जीव में इच्छा बनी हुई है तब तक वह शुद्ध और निर्मल ही कहां हुआ है ?—इच्छा ही के तो दूर करनेके वास्ते संयम सन्यास और योगाभ्यास

आदि साधन किये जाते हैं–मुक्ति तो बहुत दूर बात है संसार में भी साधारण साधु की निन्दा की जाती है और वह बहुरूपिया गिना जाता है यदि वह इच्छाके वश होता है-संसार के सर्व जीव इच्छा ही के तो बंधनमें फंसे हुवे भटकते फिरते हैं परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने जीवात्माको सदा के लिये भटकने के वास्ते मुक्ति दशा में भी उस को इच्छा का गुलाम बना दिया। स्वामी जी को इतनी भी सूझ न हुई कि इच्छा ही का तो नाम दुःख है जहां इच्छा है वहीं दुःख है और जहां इच्छा नहीं है वहीं सुख है परन्तु स्वामी जी को यह बात सूझती कैसे ? उन का तो उद्देश्य ही यह था कि वैराग्य धर्म का लोप करके संसार वृद्धिकी शिक्षा मनुष्यमात्र को दीजावे–

स्वामी जी महाराज ! हम आप से पूछते हैं कि मुक्ति दशा में जीवात्मा ब्रह्म में बास करता है ऐसा जो आपने लिखा है इस का अर्थ क्या है ? क्या ब्रह्म कोई मकान वाले क्षेत्र हैं जिसमें मुक्ति जीव जा बसता है ? आप तो ब्रह्म को निराकार मानते हैं उस में कोई दूसरी वस्तु बास कैसे कर सक्ती है ? यदि आप यह कहैं कि जिस प्रकार ब्रह्म निराकार है उस ही प्रकार जीव भी निराकार है इस कारण निराकार वस्तु निराकार में बास कर सकती है। परंतु स्वामीजी महाराज! जरा अपनी कही हुई बात को याद भी रखना चाहिये आप तो यह भी कहते हैं कि जीवात्मा मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् संकल्प मय शरीर से इच्छानुसार विचरता रहता है शरीर संकल्प मय हो वा स्थूल हो परन्तु शरीर जब ही कहलावैगा जब कि आकार होगा और जब कि मुक्ति दशा में भी जीव का शरीर रहता है तो जीव को आप निराकार कह ही नहीं सकते हैं। आप ने तो अपना मुंह आप बन्द कर लिया। आप को तो जीव को स्वाभाविक साकार मानना पड़ गया। यदि आप यह कहैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक है कोई स्थान ब्रह्म से खाली नहीं है और सर्व जगत् उस ही में बास करता है तो यह कहना बिलकुल व्यर्थ हुआ कि मुक्ति दशा को प्राप्त होकर जीवात्मा ब्रह्म में बास करता है क्योंकि इस प्रकार तो जीव सदा ही ब्रह्म में बास करता है वह चाहे मुक्त हो चाहे संसारी चाहे पुन्यवान हो वा पापी बरण कुत्ता बिल्ली ईंट पत्थर सब ही ब्रह्म में बास कर रहा है मुक्त जीवके वास्ते ब्रह्म में बास करने की कोई विशेषता न हुई––

पाठक गणो ! स्वामी जी स्वयम् एक स्थान पर यह लिखते हैं कि **मुक्त होकर जीवात्माके गुण कर्म और स्वभाव ब्रह्मके समान हो जाते हैं** और स्वामीजी को यह भी लिखना पड़ा है कि

मुक्त जीव ब्रह्म में रहकर सदा आनन्द में रहता है

स्वामी जी के इन वाक्योंके साथ जब आप इस वाक्य पर ध्यान देंगें कि, मुक्ति जीव ब्रह्म में वास करता है तो इस का अर्थ स्पष्ट आप को यहही प्रतीत होगा कि मुक्त जीव ब्रह्म ही हो जाता है—परन्तु स्वामी जी ने इस बात को खलाने के वास्ते ऐसी ऐसी बेतुकी बातें मिलाई हैं कि मुक्त जीव इच्छा के अनुसार संकल्प मय शरीर बनाकर ब्रह्ममें बिचरता रहताहै।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी यह तो मानते हैं कि मनुष्य का जीव जन्मान्तर में अन्य पशु पक्षी का शरीर धारण कर लेता है परन्तु हाथी का शरीर बहुत बड़ा है और चींवटी का बहुत छोटा और बहुतसे ऐसे भी कीड़े हैं जो चींवटी से भी बहुत छोटे हैं और मनुष्य का मंझला शरीर है इस कारण हम स्वामी जी से पूछते हैं कि जीवात्मा स्वाभाविक कितना लम्बा चौड़ा है ? क्या जीव की लम्बाई चौड़ाई परिमाणबद्ध है और छोटी बड़ी नहीं हो सकती ? यदि ऐसा है तो जीव चींवटी आदिक छोटे जीवों का जन्म धारण करके शरीर से बाहर निकला रहता होगा और हाथी आदिक बड़े जीवों का जन्म धारण करके जीवात्मा शरीर के किसी एक ही अंग में रहता होगा और शेष अंग जीव से रहित ही रहता होगा परंतु ऐसी दशा में वह कौन से अंग में रहता है और शेष अंग किस प्रकार जीवित रहता है ? इन बातों के उत्तर देने में आप को बहुत कठिनाई प्राप्त होगी । इस कारण आप को निश्चय रूप यह ही मानना पड़ैगा कि जीवात्मा में संकोच बिस्तार की शक्ति है उस की परिमाणबद्ध कोई लम्बाई चौड़ाई नहीं है वरण जैसा शरीर उस को मिलता है उस हीके परिमाण जीव लम्बा चौड़ा हो जाता है और बालक अवस्था से वृद्धावस्था तक ज्यों ज्यों शरीर बढ़ता वा घटता रहता है उसही प्रकार जीवकी लम्बाई चौड़ाई भी घटती बढ़ती रहती है और यदि शरीर का कोई अंग कट जाता है तो जीव संकोच कर शेष शरीर में रहजाता है-इस प्रकार समझाने के पश्चात हम स्वामी दयानन्द जी से पूछते हैं कि जीव मुक्ति पाकर कितना लम्बा चौड़ा रहता है ? जिस प्रकार संसार में अनेक जीवों के शरीर का परिमाण है कि हाथी का शरीर बड़ा और चींवटी का शरीर बहुत छोटा इसही प्रकार क्या मुक्त जीव का कोई परिमाण है वा जिस शरीर से मुक्ति होती है उतना परिमाण मुक्त जीव का होता है ?

इस के उत्तर में यह ही कहना पड़ैगा कि मुक्ति जीव की मुक्ति होनेके समय वह ही लम्बाई चौड़ाई होगी जो उस मनुष्य शरीर की थी जिसको

त्यागकर मुक्ति प्राप्त की और यह न माना जावे और मुक्ति जीव का कोई नियमित शरीर माना जावे तो भी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज मुक्तजीव में इच्छा का दोष पैदा करने के वास्ते यह ही कहेंगे कि मुक्ति होते समय जीव का कुछ ही शरीर हो परन्तु मुक्ति अवस्था में मुक्त जीव अपनी कल्पना अर्थात् इच्छाके अनुसार अपना शरीर घटाता बढ़ाता रहता है।

इस पर हम यह पूछते हैं कि मुक्त जीव अपने आपको अपनी कल्पना के अनुसार इतना भी बढ़ावता सकता है वा नहीं कि वह सर्व ब्रह्मांड में फैल जावे अर्थात् ईश्वर की नाईं सर्व व्यापक हो जावे? यदि यह कहा जावे कि वह ऐसा कर सकता है तो सर्वमुक्त जीव मुक्ति पाते ही सर्वव्यापक क्यों नहीं हो जाते हैं जिस से उन को नाना प्रकार के संकल्पी रूप धारण करने और जगह जगह विचरने अर्थात् सुख की प्राप्ति में भटकते फिरने की आवश्यकता न रहै वरण एक ही समय में सुखों का मजा स्वामी जी के कथनानुसार उड़ाते रहैं।

यदि यह कहो कि मुक्ति जीव सर्व व्यापक नहीं हो सकता वरण आकाश और परमेश्वर यह दोही सर्वव्यापक हैं और हो सकते हैं तो यह क्यों कहते हो कि **मुक्त जीवन के गुण कर्म स्वभाव ब्रह्मके सदृश होकर वह परमानन्द भोगता है?** क्योंकि जब मुक्त जीव में भी स्वामी दयानन्द के कथनानुसार इच्छा है और वह अपनी इच्छा के अनुसार आनन्द भोगता फिरता रहता है तो क्या उस को ऐसी इच्छा होनी असम्भव है कि सर्व स्थानों का आनन्द एक ही बार भोगलूं? और जब उसको ऐसी इच्छा हो सकती है और उस इच्छा की पूर्ति न हो सकै तो उस इच्छा के विपरीत कार्य होने ही का तो नाम दुःख है-दुःख इसके सिवाय और तो कोई वस्तु नहीं है फिर परमानंद कहां रहा?

गरज स्वामी जी की यह असत्यबात कि, मुक्ति जीव में इच्छा रहती है, किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सक्ती है वरण असम्भवही है।

क्यों प्यारे आर्य भाइयो! हम आप से पूछते हैं कि स्वामी दयानन्दके इस सिद्धान्त पर कभी आपने ध्यान भी दिया है कि मुक्त जीव अपनी इच्छा के अनुसार अपने संकल्पी शरीर के साथ सब जगह विचरता हुआ परमानन्द भोगता रहता है? प्यारे भाइयों! यदि ज़रा भी आपने इस पर ध्यान दिया होता तो कदाचित् भी आप इस सिद्धान्त को न मानते। परन्तु स्वामी जीने आप को संसार की वृद्धि में ऐसा आसक्त कर दिया है कि आप को इन धार्मिक सिद्धान्तों पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता है। आप जानते हैं कि जीवको

एक प्रकार के कार्य को छोड़कर दूसरे प्रकार का कार्य ग्रहण करने की आवश्यकता तभी होती है जब प्रथम कार्य से घृणा हो जाती है अर्थात् वह दुखदाई हो जाता है व दूसरा कार्य उससे अधिक सुखदाई प्रतीत होने लगता है इस ही प्रकार मुक्त जीव अपने एक प्रकार के संकल्पी शरीर को तभी छोड़ेगा और एक स्थान से दूसरे स्थान में तब ही विचरेगा जब कि पहला संकल्पी शरीर उस को दुखदाई प्रतीत होगी वा दूसरे प्रकार का शरीर वा दूसरा स्थान अधिक सुखदाई मालूम होगा। अब आप ही विचार लीजिये कि यदि मुक्ति में इस प्रकार मुक्त जीव की अवस्था होती रहती है तो क्या यह कहना ठीक है कि मुक्तजीव परमानन्द में रहता है? कदापि नहीं॥

संसारमें जोकुछ दुःखहै वह यह इच्छा होती है उसके सिवाय संसारमें भी और क्या दुःख है? नहीं तो संसारकी कोई वस्तु वा कोई अवस्था भी जीवके वास्ते सुखदाई वा दुखदाई नहीं कही जा सकती है--इस हमारी बातको स्वामी दयानन्दने सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४७ पर एक दृष्टान्त देकर सिद्ध किया है जिस को हम ज्योंका त्यों लिखते हैं:—

"जैसे किसी साहूकारका विवाद राजघरमें लाख रुपयेका हो तो वह अपने घरसे पालकीमें बैठकर कचहरीमें उष्ण कालमें जाता हो बाज़ारमें होके उस को जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो पुन्य पापका फल, एक पालकीमें आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे बिना जूते पहिरे ऊपर नीचेसे तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर लेजाते हैं परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे २ कचहरी निकट आती जाती है वैसे साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारोंको आनन्द होता जाता है"—

प्रिय पाठको! उपर्युक्त लेखमें स्वामी जीने स्वयं सिद्ध करदिया कि सुख दुःख किसी सामग्रीके कम बेश मिलने पर नहीं है बरण इच्छाकी कमी वा बढ़ती पर है—परन्तु इन तमाम बातोंको जानते हुए भी स्वामी दयानन्दने धर्म को नष्ट भ्रष्ट करने और हिन्दुस्तानके जीवोंको संसार के विषयों में मोहित करनेके वास्ते इच्छाका यहां तक सबक़ या पाठ पढ़ाया कि मुक्तिदशामें भी इच्छा सिखादी और संसारको इतनी महिमा गाई कि मुक्तिसे भी संसारमें आनेकी आवश्यकता बतादी—

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीको अपनी असत्य और अधर्मकी बातों सिद्ध करनेके वास्ते बड़ी बेतुकी दलीलोंको काममें लाना पड़ा है। आप लिखते * हैं कि यदि मुक्तिमें जीव जाते ही रहैं और लौटें नहीं तो मुक्तिके स्थान में बहुत भीड़ भड़क्का होजावेगा।

* सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४७ पर।

हम रे आर्य भाई स्वामीजीके इस हेतु पर फूले नहीं समाते होंगे परन्तु हम कहते हैं कि ऐसी बेतुकी बातोंको हेतु कहना ही लज्जाकी बात है क्यों कि स्वामीजी स्वयम् कहते हैं कि, जीव मुक्ति पाकर ब्रह्ममें रहता है और ब्रह्म सर्वव्यापक है और मुक्ति जीव सब जगह विचरता फिरता रहता है—अफसोस! इतनी बात मूर्खसे मूर्ख भी समझ सकता है कि सर्वब्रह्माण्ड जिसमें ब्रह्म सर्वव्यापक है और जो मुक्तजीवों का स्थान स्वामीजीके कथनानुसार है उसमें ही जगतकी सर्वसामग्री स्थित है जगत्की सर्ववस्तुओं से तो भीड़ हुई नहीं परन्तु मुक्ति जीवोंसे भीड़ भड़क्का होजावेगा—ऐसी अद्भुत बुद्धि स्वामी दयानन्द की ही हो सकती है और किसकी होती?।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी परमेश्वर को सर्वव्यापक कहते हैं जब वह सर्वस्थानमें व्यापक होगया तो अन्य वस्तु उस ही स्थानमें कैसे आ सकती है? परन्तु स्वामीजी स्वयम् यह कहते हैं कि जिस सर्वस्थानमें ईश्वर व्यापक है उस ही सर्वस्थान में आकाश भी सर्व व्यापक है—ईश्वरने सबमें व्याप कर भीड़ नहीं करदी वरण जिस २ स्थान में ईश्वर है उस सर्वही स्थानमें आकाश भी व्याप गया और ईश्वर और आकाश के सर्वव्यापक होने पर भी उस ही स्थान में जगत् की सर्ववस्तुयें व्याप गई परन्तु जगत् की स्थूल वस्तु अन्य स्थूल वस्तुको उसही स्थानमें आने नहीं देती है और भीड़ करती हैं स्वामीजी विचारेने संसारी स्थूल वस्तओंको देखकर यह हेतु लिखमारा। वह वेचारे इन बातोंको क्या समझें? परन्तु हम समझाते हैं कि निराकार वस्तु भीड़ नहीं किया करती है वरण भीड़ स्थूल वस्तु से ही हुआ करते हैं--निराकार और स्थूलमें यह ही तो भेद है--ईश्वर को स्वामीजी निराकार कहते हैं इस कारण उसके सर्वव्यापक होनेसे भीड़ नहीं हो सकती--

इस ही प्रकार आकाश निराकार है इस हेतु उससे भी भीड़ न हुई परन्तु संसारकी अन्य स्थूल वस्तुओंसे भीड़ हुई स्वामीजीको चाहिये था कि पहले यह विचार लेते कि मुक्त जीव की बाबत यह कहाजाता है कि वह ब्रह्ममें वास करता है तो क्या वह स्थूल शरीरके साथ बास करता है? स्वामी जी स्वयम् ही कई स्थान पर लिखते हैं कि स्थूल शरीर मुक्ति अवस्था में नहीं रहता है तब तो यही कहना पड़ेगा कि मुक्ति में निराकार ब्रह्म में जीव निराकार अवस्था ही में बास करता है तब भीड़ भड़क्का की बात कैसे उठ सकती है? परन्तु स्वामी जी को तो अपना संसार सिद्ध करने के वास्ते वेतुकी हांकने से मतलब, चाहे वह बात युक्ति पूर्वक हो वा न हो।

आर्यमत लीला ।

(१८)

गत दो लेखों में हमने दिखाया है कि, स्वामी दयानन्दने वैराग्य धर्मको नष्ट करने और संसार के विषय कषायों में मनुष्यों को फंसाने के वास्ते हिन्दुस्तान के जगत् प्रसिद्ध सिद्धांत के विरुद्ध यह स्थापित किया है कि, मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् भी जीव बंधन में फंसता है और संसार में रुलता है। स्वामी जी को अपने इस अद्भुत और नवीन सिद्धान्त का यहां तक प्रेम हुआ है कि वह मुक्ति को जेलखाना बताते हैं सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४१ पर स्वामी जी लिखते हैंः—

इस लिये यही व्यवस्था ठीक हैकि मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दंड वाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है जब वहां से आना ही न होतो जन्म कारागार से इतना ही अंतर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है॥

पाठक गण! नहीं मालूम स्वामीजी को मुक्ति दशा से क्यों इतनी घृणा हुई है कि उन्होंने उस को कारागार और फांसी के समान बताया। यदि स्वामी जी को मुक्ति ऐसी ही बुरी मालूम होती थी, तो जिस प्रकार उन्होंने स्वर्ग और नरकका निषेध किया है और अपने चेलों को सिखाया है कि स्वर्ग और नरक कहीं नहीं है, इस ही प्रकार मुक्ति का भी निषेध कर देते, और कह देते कि कुछ सुख दुःख होता है वह इस पृथ्वी पर ही हो रहता है। परन्तु मुक्ति को स्थापन करके उसको कारागार बताना बहुत अन्याय है।

क्या मुक्ति से लौटा कर संसार में फिर वापिस आने की आवश्यकता को दिखाने के वास्ते स्वामी जी को कोई और दृष्टान्त नहीं मिलता था, जो कारागार का दृष्टान्त देकर यह समझाया कि अनित्य मुक्ति तो ऐसी है जैसा किसी को दो चार बरसके वास्ते कैद खाना हो जावै, और मियाद पूरी होने पर अपने घर पर फिर वापिस चला आवै और नित्य मुक्ति ऐसी है जैसा किसी को जन्म भरके वास्ते कैद खाना हो जावे और घर वापिस आने की उम्मेद ही न रहै, वा जैसा किसी को फांसी हो जावै कि वह फिर अपने घर वापिस ही न आसके? तात्पर्य इसका यह है कि जिस प्रकार गृहस्थी लोग अपने घरपर अपने बाल बच्चों में रहना पसन्द करते हैं और जेल खाने में फंसना महा कष्ट समझते हैं, इस ही प्रकार जीवका मनुष्य पशु पक्षी आदिक अनेक शरीर धारण करते हुवे संसार में विचरना अच्छा है, और मुक्ति का हो जाना महा कष्ट है स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में

और जेल खाने में इतना ही अन्तर है कि मुक्ति में मजदूरी नहीं करनी पड़ती और जेल खाने में करनी पड़ती है। परन्तु स्वामी जी को मालूम नहीं कि क़ैद भी दो प्रकार की होती है एक क़ैद मुशक्कत जिसमें मिहनत करनी पड़ती है और दूसरी क़ैद महज़ जिसमें मिहनत नहीं करनी पड़ती। इस कारण स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में जाना क़ैद महज हो जाने के समान है। इसी हेतु स्वामी जी चाहते हैं कि यदि मुक्ति हो भी तो सदा के वास्ते नहीं, वरण थोड़े दिनों के वास्ते हो जिस को जिस तिस प्रकार भुगत कर फिर जीव संसार में आसकै और संसार के विषय भोग भोग सकै।

प्यारे आर्य्य भाइयो! स्वामीजीके इस कथनसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजीको संसारके विषय भोगोंकी बड़ी लालसा थी और उन्होंने जितना उनसे होसका है, मनुष्योंको धर्म से हटाकर मुक्तिके साधनोंसे घृणा कराकर संसारको पुष्टि और वृद्धिमें लगानेकी कोशिश की है। इस कारण आपको उचित है कि आंख मीचकर स्वामी दयानन्दके वाक्योंका अनुकरण न करें वरण अपने कल्याणके अर्थ सत्यधर्मकी खोज करें और सत्यके ही ग्रहणकी चेष्टा करें।

प्यारे भाइयो! हम स्वामी जी के आभारी हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानमें रहने वाले प्रमादमें फंसे हुये मनुष्यों को सोते से जगाया। फजूल खर्ची, बाल विवाह और अन्य कुरीतियोंको हटाना सिखाया जिससे हमारा गृहस्थ अत्यन्त दुःखदाई होरहा था, संस्कृत विद्याके पढ़नेकी रुचि दिलाई जिस को हम बिल्कुल भूल बठे थे और सबसे बड़ा भारी उपकार यह किया कि हिन्दुओंको ईसाई और मुसलमान होनेसे बचाया। परन्तु इस प्रयोजनके वास्ते उनको सत्य धर्मको बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट करना पड़ा और ऐसे सिद्धांत स्थापन करने आवश्यक हुवे जो उन पुरुषोंकी रुचिकर थे जो अंगरेजी पढ़कर ईसाई वा मुसलमानी धर्मकी तरफ आकर्षित होते थे। इस कारण स्वामीजीका उपकार किसी समय में अपकारका काम देगा और संसार में अत्यन्त अधर्मको फैलाने वाला होजावेगा। इस हेतु प्यारे भाइयो! आप को उचित है कि आप कमर हिम्मत की बांधे और प्राचीन आचार्योंके मत की खोज करें और वेधड़क होकर स्वामीजीके उन सिद्धांतोंको रद्द कर देवें जो अधर्मके फैलाने वाले हैं। ऐसा करनेसे आपका आर्य्य नाम सार्थक हो जावेगा और आर्य्यसमाज सदाके लिये कल्याणकारी होकर अपनीवृद्धिकरेगा।

प्यारे भाइयो ज्यों ज्यों आप स्वामी जीके लेखोंपर विचार करेंगे त्यों त्यों आप को मालूम होगा कि या तो स्वामी जी आस्तिक धर्म को समझते ही नहीं थे या उन्होंने जान बूझ कर

बावला बनना पसन्द किया है। देखिये स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाशमें मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता को सिद्ध करने के वास्ते पृष्ठ २४१ पर लिखते हैं—

"और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय"

प्यारे भाइयो! क्या इस से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी मुक्ति प्राप्ति को भी कर्मों का फल समझते हैं? अर्थात जिस प्रकार जीव के कर्मों से मनुष्य, पशु पक्षी, आदिकी पर्याय मिलती है उसही प्रकार मुक्ति भी एक पर्याय है जो जीवके कर्मोंके अनुसार ईश्वर देता है—

प्यारे भाइयो! यदि आपने पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ पढ़े होंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है बरण कर्मोंसे रहित होकर जीव का स्वच्छ और शुद्ध होजाना है अर्थात् सर्व उपाधियां दूर होकर जीव का निज स्वभाव प्रगट होना है इस बात को हम आगामी सिद्ध करेंगे। परन्तु प्रथम तो हम यह पूछते हैं कि यह मानकर भी कि मुक्ति भी कर्मों का ही फल है क्या स्वामीजी का यह हेतु ठीक है कि अंत वाले कर्मोंका अनन्त फल नहीं मिल सकता है? क्या खश खश के दाने के समान एक छोटे से बीज से बड़ का बहुत बड़ा वृक्ष नहीं बन जाता है? और यदि ईश्वर जगत् कर्ता है और वृक्षभी वह ही पैदा करता है तो क्या स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि छोटे से बीज से अड़ा भारी वृक्ष बना देने में ईश्वर अन्याय करता है? यदि कोई किसी को एक थप्पड़ मार दे तो राजा उसको बहुत दिनों का कारागार का दंड देता है। क्या स्वामी जी के हेतु के अनुसार राजा इस प्रकार दंड देने में अन्याय करता है और एक थप्पड़ मारने का दंड एक ही थप्पड़ होना चाहिये क्या जितने दिनों तक जीव कोई कर्म उपार्जन करे उस कर्म का फल भी उतने ही दिनोंके वास्ते मिलना चाहिये? और वैसा ही मिलना चाहिये अर्थात् कोई किसी को गाली दे तो गाली मिले और भोजन दे तो भोजन मिले यदि ऐसा है तो भी स्वामी जी को समझना चाहिये था कि कर्मों का फल मुक्ति कदाचित् भी नहीं हो सकता है क्योंकि कोई भी कर्म ऐसा नहीं हो सकता है जो मुक्ति के समान हो क्योंकि कर्म संसार में किये जाते हैं और बंध अवस्था में किये जाते हैं और मुक्ति संसार और बंध दोनों से विलक्षण है।

प्यारे आर्य भाइयो! मुक्ति के स्वरूप को जानने की कोशिश करो। आचार्यों के लेखों को देखो और तर्क वितर्क से परीक्षा करो। मुक्ति कर्मों का फल कदापि नहीं हो सकती है बरण कर्मों के क्षय होने तथा जीवका

शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का नाम मुक्ति है। इस भय से कि स्वामी दयानन्द के वचनों में आसक्त होकर आप हमारे हेतुओं और आचार्यों के प्रमाणों को शायद न सुनें हम इस विषय की पुष्टि स्वामी दयानन्द के ही लेखों से करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

"कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ) अर्थात् कारण के सत्व, रजो और तमो गुण और उन के सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीवका तत्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुणोंसे युक्त होके शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं"

प्यारे पाठको! उपर्युक्त लेख के अनुसार मुक्ति कर्मों का फल है वा कर्मों के सर्वथा नष्ट होने से मुक्ति होती है? जब सत्व, रज और तम तीनों उपाधिक गुण और उनके कार्य नष्ट होगये और जीव शुद्ध यथावत जैसा जीव का तत्व है वैसा ही स्वभाविक शक्तिऔर गुण सहित रहगया तो क्या फिर भी जीव के साथ कोई कर्म बाकी रहगये? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार जो मुक्ति का लक्षण वर्णन किया है इससे तो किंचित् मात्र भी संदेह नहीं रहता है वरण स्पष्ट विदित होता है कि कर्मोंके क्षय होने और जीव के शुद्ध स्वच्छ और निर्मल हो जाने का ही नाम मुक्ति है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के ऊपरके लेख से यह भी विदित होता है कि मुक्ति नित्य के वास्ते है अनित्य नहीं है। बेशक जब कि सर्व उपाधि दूर होकर अर्थात् कर्मों का सर्वथा नाश होकर जीव के शुद्ध निज स्वभाव के प्रगट होने का नाम मुक्ति है तो यह सम्भव ही नहीं हो सकता है कि जीव मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आवे क्योंकि संसार को दुःख सागर और मुक्ति को परम आनंद बार २ कई स्थान में स्वयम् स्वामी दयानंद जीने भी लिखा है। इस कारण मुक्ति जीव अपने आप तो मुक्ति के परमानंदको छोड़कर संसार के दुःख में फंसना पसंद करही नहीं सकता है और किसी प्रकार भी संसार में आही नहीं सक्ता है और यदि ईश्वर जगत्का कर्ता हो तो वह भी ऐसा अन्याई और अपराधी नहीं हो सकता है कि शुद्ध, निर्मल और उपाधि रहित मुक्ति जीवको बिना किसी कारण, बिना उसके किसी प्रकार के अपराध के परमानन्द रूप मुक्तिस्थान से धक्का देकर दुःखदाई संसार कूप में गिरादे और मुक्त जीव की स्वच्छता और शुद्धता को नष्ट भ्रष्ट करके सत, रज, और तम आदि उपाधियें उस के साथ चिमटादे। ऐसा कठोर हृदय तो सिवाय स्वामी

दयानन्द जीके और किसी का भी नहीं हो सकता है कि निरपराधी मुक्त जीवों को स्वयम् संसारमें फंसाकर अपराध करना सिखावें।

पाठक गण ! जीव की दो ही तो अवस्था हैं एक बंध और दूसरी मोक्ष यह दोनों अवस्था प्रति पक्षी हैं। बंध शब्द ही इस बात को बता रहा है कि जब तक जीव उपाधियों में फंसा रहता है तब तक बंध अवस्था कहाती है और जब उन उपाधियोंसे मुक्त हो जाता है अर्थात् छूट जाता है तब मोक्ष अवस्था होती है। आश्चर्य है ! कि स्वामीजीको इतनी भी समझ न हुई कि कर्म उपाधिसे मुक्त होना अर्थात् छूटनेका नाम मुक्ति है वा मुक्ति भी कोई उपाधी है जो कर्मोंके अनुसार प्राप्त होती है परन्तु वे सोचे समझे भोले लोगोंको बहकानेके वास्ते यह लिखमारा कि अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति नहीं हो सकती है। स्वामीजी जब कर्म उपाधि जीवने क्षय करदी और वह शुद्ध निर्मल होगया तभी तो वह मुक्त कहाया। वह कर्म कौनसा बाकी रहगया जिस का फल आप मोक्ष बताते हैं ? क्या आपके न्यायमें किसी वस्तुके शुद्ध होजानेके पश्चात् फिर उसका अशुद्ध और मल सहित होना बिना कारण भी आवश्यक है ?

यह बात, कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है बरण कर्मोंको क्षय करके जीवका शुद्ध होजाना है, ऐसी मोटी और सीधी है कि इसके वास्ते किसी हेतु की जरूरत नहीं है परन्तु स्वामी दयानन्दके प्रेमी भोले भाइयोंके समझानेके वास्ते हमने स्वयम् स्वामीजी की बनाई पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाका भी लेख दिखादिया है-इस पर भी यदि किसी भाईको यह शंका हो कि नहीं मालूम स्वामीजीने यह लेख भूमिकामें किस अभिप्रायसे लिखा हो हम स्वामीजीकी पुस्तकके और भी बहुतसे लेख उद्धृत करते हैं जिनके पढ़नेसे कुछ भी सन्देह बाकी न रहैगा—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

" जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती तब जीवके सब दोष जब नष्ट होजाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयासक्ति आदिकी वासना सब दूर होजाती है। उसके नाश होनेसे (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नहीं होता उसके न होनेसे सब दुःखोंका अत्यन्त अभाव होजाता है। दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानन्द मोक्षमें अर्थात् सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनन्द ही भोगनेको बाकी रहजाता है इसीका नाम मोक्ष है,,

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८७

" अर्थात् सब दोषोंसे छूटके परमानन्द मोक्षको प्राप्त होते हैं जहां कि पूर्ण पुरुष सबमें भरपूर सबसे सूक्ष्म अर्थात् अविनाशी और जिसमें हानि

लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमपदको प्राप्त होके सदा आनन्दमें रहते हैं"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९७

"पूर्व लिखी हुई चित्तकी पांच वृत्तियोंको यथावत् रोकने और मोक्षके साधनमें सब दिन प्रवृत्त रहनेसे पांच क्लेश नष्ट होजाते हैं १ अविद्या २ अस्मिता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश उन मेंसे अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्या भाषणादि दोषोंकी माता अविद्या है जो कि मूढ़ जीवोंको अन्धकार में फंसाके जन्म मरणादि दुःखसागरमें सदा डुबाती है। परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकोंकी सत्यविद्या से अविद्या भिन्न २ होके नष्ट होजाती है तब वे जीव मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं।"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

"जब अविद्यादि क्लेश दूर होके विद्यादि शुभ गुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बन्धनों और दुःखोंसे छूटके मुक्ति को प्राप्त होजाता है"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

"जब सब दोषोंसे अलग होके ज्ञान की ओर आत्मा झुकता है तब कैवल्य मोक्ष धर्मके संस्कारसे चित्त परिपूर्ण होजाता है तभी जीवको मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जबतक बन्धनके कामोंमें जीव फंसता जाता है तबतक उसको मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है-"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८१ पर मुक्तिके साधनोंमेंसे एक साधन तप है जिसकी व्याख्या स्वामीजी इस प्रकार करते हैं-

"जैसे सोनेको अग्निमें तपाके निर्मल करदेते हैं वैसे ही आत्मा और मनको धर्माचरण और शुभ गुणोंके आचरण रूपसे निर्मल करदेना"

पाठकगणो! आपको आश्चर्य होगा कि स्वामी दयानन्दजी अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में स्वयम् उपर्युक्त प्रकार लिखकर फिर सत्यार्थप्रकाशमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि मुक्ति सदाके वास्ते नहीं होती है और कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं होती है बरण मुक्ति भी कर्मोंका फल है। परन्तु यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि जो कोई असत्यकी पुष्टि करता है उसके वचन पूर्वापर विरोध रहित हुआ ही नहीं करते हैं। स्वामीजीने अनेक ग्रन्थोंको पढ़ा और प्रायः सर्वशास्त्रोंमें मुक्तिको सदाके वास्ते लिखापाया और मुक्ति प्राप्त होनेका कारण सर्वकर्मोंका क्षय होकर जीवका शुद्ध और निर्मल होजाना ही सर्व आचार्योंके वाक्योंमें पाया इस कारण स्वामीजी सत्य बातको छिपा न सके और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें उनको ऐसा लिखना ही पड़ा। परन्तु अपने शिष्योंको खुश करनेके वास्ते इधर उधर की अटकलपच्चू बातोंसे उन्हों ने मुक्तिसे लौटना भी सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन करदिया॥

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के उपर्युक्त वाक्योंसे हमारे आर्य भाइयों को यह भी विदित होगया होगा कि मुक्ति का-

ारागार नहीं है-जेलखाना नहीं है जिससे छूटना जरूरी हो वरण मुक्ति तो ऐसा परमानन्दका स्थान है कि वह आनन्द संसारमें प्राप्त ही नहीं हो सकता है। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वतीने मुक्तिको अनित्य वर्णन करके और मुक्तिसे लौटकर फिर संसारके वन्धनमें पड़नेको आवश्यक स्थापित करके मुक्तिके परमानन्दको धूलिमें मिला दिया। क्योंकि प्रियपाठको! आप जानते हैं कि यदि हम किसी मनुष्यको कहदेवें कि तुझको राजा कैद करदेगा वा अन्य कोई महान् विपत्ति तुझ पर आने वाली है और उसको इस बात का निश्चय वा संदेह तक भी होजावे तो कैदमें जाने वा अन्य विपत्तिके आने से जो क्लेश होगा, उससे अधिक क्लेश उस मनुष्यको अभीसे प्राप्त हो जावेगा और यदि वह इस समय आनन्दमें भी था तो उसका वह आनन्द सब मिट्टी में मिल जावेगा। इस ही प्रकार यदि मुक्तिसे लौटकर संसारके वन्धनमें फंसना मुक्ति जीवोंके भाग्यमें आवश्यक है तो यह वात मुक्ति जीवोंको अवश्य मालूम होगी क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने स्वयम् सत्यार्थप्रकाशमें सिद्ध किया है कि मुक्ति जीव परमेश्वरके सदृश होजाते हैं और उनका संसारियों की तरह स्थूल शरीर नहीं होता है और न इन्द्रियोंका भोग रहता है वरण वह अपने ज्ञानसे ही परमानन्द भोगते हैं। यह मालूम होने पर कि हमको यह परम आनन्द छोड़कर संसार में फिर रुलना पड़ेगा और दुःख सागरमें डूबना होगा, मुक्त जीवोंको जितना क्लेश हो सकता है उसका वर्णन जिह्वासे नहीं हो सकता है और उनकी दशाको परमानन्दकी दशा कहना तो क्या सामान्य आनंदकी भी दशा नहीं कह सकते हैं। इस हेतु मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेके सिद्धान्तको मानकर मुक्तिका सर्व वर्णन ही नष्ट भ्रष्ट होता है-और सर्व कथन मिथ्या हो जाता है ॥

आर्यमत लीला।

(१९)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी को संसारके विषय भोगोंका इतना प्रेम है कि वह संसारके विषयोंको भोगनेके वास्ते मुक्त जीवोंका भी मुक्तिसे वापिस आना आवश्यक समझते हैं और इस ही पर वस नहीं करते वरण वह सिद्ध करना चहते हैं कि जितने दिन जीव मुक्तिमें रहता है उन दिनोंमें भी मुक्ति जीव इच्छासे वंचित नहीं रहता है वरण मुक्त दशा में भी स्वेच्छानुसार सर्व ब्रह्माण्ड में विचरता रहता है और जगह २ का स्वाद लेता रहता है यदि कोई ऐसा कहै कि मुक्ति में जीव इच्छा द्वेष से रहित रहता है तो स्वामीजी को वहुत बुरा मालूम होता है और तुरंत उसके खण्डन पर तय्यार होते हैं स्वामीजीको तो संसार के मनुष्यों की

संसार से प्रेम कराना है इस कारण मुक्ति जीवका एक स्थान में स्थिर रहना उनको कब सुहाता है। वह तो यह ही चाहते हैं कि जिस प्रकार संसारी जीव इच्छा वश विचरते फिरते हैं उस ही प्रकार मुक्त जीवों की बाबत कहा जावै मुक्त जीवोंमें संसार के जीवोंसे कुछ विशेषता सिद्ध नहो

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४४५ पर लिखते हैं:-

"वह शिला पैंतालीस लाखसे दूनी नब्वे लाख कोशकी होती तो भी वे मुक्त जीव बंधन में हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलने से उनकी मुक्ति छूट जाती होगी और सदा उसमें रहने की प्रीति और उससे बाहर जाने में अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्यों कर कह सकते हैं"

पाठकगण! इस लेख का अभिप्राय यह है कि जैनी लोग पैंतालीस लाख योजन का एक स्थान मानते हैं जिस में मुक्तजीव रहते हैं स्वामीजी इसके विरुद्ध यह सिखाना चाहते हैं कि मुक्त जीव सर्व ब्रह्माण्डमें घूमता फिरता रहता है इसकारण स्वामीजी जैनियों के सिद्धान्तकी हंसी उड़ाते हैं कि यदि मुक्त जीव मुक्ति लोकसे बाहर चला जाता होगा तो उसकी मुक्ति छूट जाती होगी और मुक्ति स्थान में ही रहते रहते उसको मुक्ति स्थानसे प्रीति और मुक्ति स्थान से बाहर जो लोक है उस से अप्रीति होजाती होगी। परन्तु स्वामी जी ने यह न समझा कि ऐसा कहने से स्वामीजी अपनी ही हंसी कराते हैं क्योंकि यह अनोखा सिद्धान्त कि, कर्मोंके बंधनसे मुक्त होकर और रागद्वेष को छोड़कर और स्वच्छ निर्मल होकर और मुक्तिको प्राप्त होकर भी प्रीति और अप्रीति करने का गुण बाकी रहता है और इधर उधर विचरने की भी इच्छा रहती है, स्वामी जीके ही मुखसे शोभता है अन्य कोई विद्वान् ऐसा ढीठ नहीं हो सक्ता है कि ऐसी उलटी बातें बनावे। अफसोस! स्वामीजीने अनेक ग्रंथ पढ़े परंतु मुक्ति और आनन्द का लक्षण न जाना स्वामीजी बेचारे तो आनन्द इस ही में समझते रहे कि जीव सर्व प्रकारके भोग करता हुआ स्वच्छन्द फिरता रहे और किसी प्रकारका अटकावा किसी काम में रोक टोक न माने और जो चाहे सो करे॥

पाठकगण! जिस प्रकार बाजारी रंडियें गृह स्वामी स्वभर्त्तार संतुष्टा स्त्रियों पर हंसा करती हैं कि हम स्वच्छन्द हैं और विवाहिता स्त्रियें बंधन में फंसी हुई कारागारका दुःख भोगतीहैं वा जिस प्रकार शराबी कबाबी लोग त्यागियों की हंसी उड़ाया करते हैं कि यह त्यागी लोग संसारका कुछ भी स्वाद न ले सकैंगे इस ही प्रकार स्वामी दयानन्दजी भी शुद्ध निर्मल स्वभावमें स्थित उन मुक्त जीवोंकी हंसी उड़ाते

हैं जिनको कुछ भी इच्छा नहीं है और एक स्थानमें स्थिर हैं और उनको बंधन में बतलाते हैं और इसके विरुद्ध यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्त होकर भी जीव सारे ब्रह्मांड में मजे उड़ाता फिरता रहता है "उलटा चोर कोतवालको डांटे" वाला दृष्टान्त यहीं घटता है—

प्यारे आर्य्य भाइयो ! हम वारम्वार आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप सिद्धान्तों को विचारें और आचार्योंके लेखोंको पढ़ें स्वामी दयानन्दजीके पूर्वापर विरुद्ध वाक्यों पर निर्भर न रहैं क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने कोई धर्म व धर्म का मार्ग प्रकाश नहीं किया है वरण भ्रमजाल रचा है । आइये ! हम आप को स्वयम् स्वामी दयानन्दजीके ही लेख दिखावें जिससे उनका सब भ्रम जाल प्रगट हो जावे।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

"जैसे जलके प्रवाहको एक ओर से दृढ़ बांधके रोक देते हैं तब जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलके कहीं स्थिर होजाता है । इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वरमें स्थिर होजाती है। एक तो चित्तकी वृत्ति को रोकनेका यह प्रयोजन है और दूसरा यह है कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं तब योगीकी वृत्ति सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है और संसारके मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है"

प्यारे पाठकों ! जरा स्वामीजी के इस लेख पर विचार कीजिये । जिस प्रकार तालाव का जल स्थिर होजाता है । इस प्रकार मनकी वृत्तिको रोक कर स्थिर करने का उपदेश स्वामीजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें लिखते हैं और चित्तके स्थिर होजाने से आनन्द और चंचल होने से दुःख बताते हैं परन्तु सत्यार्थ प्रकाशमें जहां उनको जैनियोंके खण्डन पर लेखनी उठाने की आवश्यका हुई वहां मुक्ति जीवोंके एक स्थानमें स्थिर रहने को बंधन बताया और सर्व ब्रह्माण्ड में स्वेच्छानुसार घूमते फिरने को परमानन्द समझाया । यदि इस ही प्रकार स्वामीजी को जैनियोंका खण्डन करना था तो उनको उचित था कि मुक्ति का मोक्ष न चित्त वृत्ति का रोकना और मनको स्थिर करना न बताते वरण वाममार्गियों की तरह स्वेच्छाचारी रहने और मनको बिलकुल न रोकने में ही मुक्ति बताते और चित्तकी वृत्ति को रोकना, उपासना और ध्यान आदिक को महा बंधन और दुःख का कारण बताते । मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता सिद्ध करने में जो २ हेतु स्वामीजीने दिये हैं उन से तो यहही मालूम होता है कि स्वामीजीकी इच्छा तो ऐसी ही थी क्योंकि उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, मीठा वा

और जेल खाने में इतना ही अन्तर है कि मुक्ति में मजदूरी नहीं करनी पड़ती और जेल खाने में करनी पड़ती है। परन्तु स्वामी जी को मालूम नहीं कि कैद भी दो प्रकार की होती है एक कैद मुशक्कत जिसमें मिहनत करनी पड़ती है और दूसरी कैद महज़ जिसमें मिहनत नहीं करनी पड़ती। इस कारण स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में जाना कैद महज़ हो जाने के समान है। इसी हेतु स्वामी जी चाहते हैं कि यदि मुक्ति हो भी तो सदा के वास्ते नहीं, वरण थोड़े दिनों के वास्ते हो जिस को जिस तिस प्रकार भुगत कर फिर जीव संसार में आसके और संसार के विषय भोग भोग सकै।

प्यारे आर्य्य भाइयो! स्वामीजीके इस कथनसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजीको संसारके विषय भोगोंकी बड़ी लालसा थी और उन्होंने जितना उनसे होसका है, मनुष्योंको धर्म से हटाकर मुक्तिके साधनोंसे घृणा कराकर संसारकी पुष्टि और वृद्धिमें लगानेकी कोशिश की है। इस कारण आपको उचित है कि आंख मींचकर स्वामी दयानन्दके वाक्योंका अनुकरण न करें वरण अपने कल्याणके अर्थ सत्यधर्मकी खोज करें और सत्यके ही ग्रहणकी चेष्टा करें।

प्यारे भाइयो! हम स्वामी जी के आभारी हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानमें रहने वाले प्रमादमें फंसे हुये मनुष्यों को सोते से जगाया। फज़ूल खर्ची, बाल विवाह और अन्य कुरीतियोंको हटाना सिखाया जिससे हमारा गृहस्थ अत्यन्त दुःखदाई होरहा था, संस्कृत विद्याके पढ़नेकी रुचि दिलाई जिस को हम बिल्कुल भूल बैठे थे और सबसे बड़ा भारी उपकार यह किया कि हिन्दुओंको ईसाई और मुसलमान होनेसे बचाया। परन्तु इस प्रयोजनके वास्ते उनको सत्य धर्मको बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट करना पड़ा और ऐसे सिद्धांत स्थापन करने आवश्यक हुवे जो उन पुरुषोंको रुचिकर थे जो अंगरेज़ी पढ़कर ईसाई वा मुसलमानी धर्मकी तरफ आकर्षित होते थे। इस कारण स्वामीजीका उपकार किसी समय में अपकारका काम देगा और संसार में अत्यन्त अधर्मको फैलाने वाला होजावेगा। इस हेतु प्यारे भाइयो! आप को उचित है कि आप कमर हिम्मत की बांधे और प्राचीन आचार्योंके मत की खोज करें और बेधड़क होकर स्वामीजीके उन सिद्धांतोंको रद्दकर देवें जो अधर्मके फैलाने वाले हैं। ऐसा करनेसे आपका आर्य्य नाम सार्थक हो जावेगा और आर्य्यसमाज सदाके लिये कल्याणकारी होकर अपनी वृद्धिकरेगा।

प्यारे भाइयो ज्यों ज्यों आप स्वामी जीके लेखोंपर विचार करेंगे त्यों त्यों आप को मालूम होगा कि या तो स्वामी जी आत्मिक धर्म को समझते ही नहीं थे या उन्होंने जान बूझ कर

बादला बनना पसन्द किया है। देखिये स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाशमें मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता को सिद्ध करने के वास्ते पृष्ठ २४१ पर लिखते हैं—

"और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय"

प्यारे भाइयो! क्या इस से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी मुक्ति प्राप्ति को भी कर्मों का फल समझते हैं? अर्थात जिस प्रकार जीव के कर्मों से मनुष्य, पशु पक्षी, आदिकी पर्याय मिलती है उसही प्रकार मुक्ति भी एक पर्याय है जो जीवके कर्मोंके अनुसार ईश्वर देता है—

प्यारे भाइयो! यदि आपने पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ पढ़े होंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है वरण कर्मोंसे रहित होकर जीव का स्वच्छ और शुद्ध होजाना है अर्थात् सर्व उपाधियां दूर होकर जीवका निज स्वभाव प्रगट होना है इस बात को हम आगामी सिद्ध करेंगे। परन्तु प्रथम तो हम यह पूछते हैं कि यह मानकर भी कि मुक्ति भी कर्मों का ही फल है क्या स्वामीजी का यह हेतु ठीक है कि अंत वाले कर्मोंका अनन्त फल नहीं मिल सकता है? क्या खश खश के दाने के समान एक छोटे से बीज से बड़ का बहुत बड़ा वृक्ष नहीं बन जाता है? और यदि ईश्वर जगत् कर्ता है और वृक्षभी वह ही पैदा करता है तो क्या स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि छोटे से बीज से बड़ा भारी वृक्ष बना देने में ईश्वर अन्याय करता है? यदि कोई किसी को एक थप्पड़ मार दे तो राजा उसको बहुत दिनों का कारागार का दंड देता है। क्या स्वामी जी के हेतु के अनुसार राजा इस प्रकार दंड देने में अन्याय करता है और एक थप्पड़ मारने का दंड एक ही थप्पड़ होना चाहिये क्या जितने दिनों तक जीव कोई कर्म उपार्जन करे उस कर्म का फल भी उतने ही दिनोंके वास्ते मिलना चाहिये? और वैसा ही मिलना चाहिये अर्थात् कोई किसी को गाली दे तो गाली मिले और भोजन दे तो भोजन मिले यदि ऐसा है तो भी स्वामी जी को समझना चाहिये था कि कर्मों का फल मुक्ति कदाचित् भी नहीं हो सकता है क्योंकि कोई भी कर्म ऐसा नहीं हो सकता है जो मुक्ति के समान हो क्योंकि कर्म संसार में किये जाते हैं और बंध अवस्था में किये जाते हैं और मुक्ति संसार और बंध दोनों से विलक्षण है।

प्यारे आर्य भाइयो! मुक्ति के स्वरूप को जानने की कोशिश करो। आचार्यों के लेखों को देखो और तर्क वितर्क से परीक्षा करो। मुक्ति कर्मों का फल कदापि नहीं हो सकती है वरण कर्मों के क्षय होने तथा जीवका

शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का नाम मुक्ति है। इस भय से कि स्वामी दयानन्द के वचनों में आसक्त होकर आप हमारे हेतुओं और आचार्यों के प्रमाणों को शायद न सुनें हम इस विषय की पुष्टि स्वामी दयानन्द के ही लेखों से करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

"कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ) अर्थात् कारण के सत्व, रजो और तमो गुण और उन के सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीवका तत्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुणोंसे युक्त होके शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं"

प्यारे पाठको! उपर्युक्त लेखके अनुसार मुक्ति कर्मों का फल है या कर्मों के सर्वथा नष्ट होने से मुक्ति होती है? जब सत्य, रज और तम तीनों उपाधिक गुण और उनके कार्य नष्ट होगये और जीव शुद्ध यथावत जैसा जीवका तत्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुण सहित रहगया तो क्या फिर भी जीव के साथ कोई कर्म बाकी रहगये? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार जो मुक्ति का लक्षण वर्णन किया है इससे तो किंचित् मात्र भी संदेह नहीं रहता है बरण स्पष्ट विदित होता है कि कर्मोंके क्षय होने और जीव के शुद्ध स्वच्छ और निर्मल हो जाने का ही नाम मुक्ति है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के ऊपरके लेख से यह भी विदित होता है कि मुक्ति नित्य के वास्ते है अनित्य नहीं है। बेशक जब कि सर्व उपाधि दूर होकर अर्थात कर्मों का सर्वथा नाश होकर जीव के शुद्ध निज स्वभाव के प्रगट होने का नाम मुक्ति है तो यह सम्भव ही नहीं हो सकता है कि जीव मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आवै क्योंकि संसार को दुःख सागर और मुक्ति को परम आनंद बार २ कई स्थान में स्वयम् स्वामी दयानंद जीने भी लिखा है। इस कारण मुक्ति जीव अपने आप तो मुक्ति के परमानंदको छोड़कर संसार के दुःख में फंसना पसंद करही नहीं सकता है और किसी प्रकार भी संसार में आही नहीं सक्ता है और यदि ईश्वर जगत्का कर्ता हो तो वह भी ऐसा अन्याई और अपराधी नहीं हो सकता है कि शुद्ध, निर्मल और उपाधि रहित मुक्ति जीवको बिना किसी कारण, बिना उसके किसी प्रकार के अपराध के परमानन्द रूप मुक्तिस्थान से धक्का देकर दुःख दाई संसार कूप में गिरादे और मुक्त जीव की स्वच्छता और शुद्धता को नष्ट भ्रष्ट करके सत, रज, और तम आदि उपाधियें उस के साथ चिमटादे। ऐसा कठोर हृदय तो सिवाय स्वामी

दयानन्द जीके और किसी का भी नहीं हो सकता है कि निरपराधी मुक्त जीवों को स्वयम् संसारमें फंसाकर अपराध करना सिखावें।

पाठक गण! जीव की दो ही तो अवस्था हैं एक बंध और दूसरी मोक्ष यह दोनों अवस्था प्रति पक्षी हैं। बंध शब्द ही इस बात को बता रहा है कि जब तक जीव उपाधियों में फंसा रहता है तब तक बंध अवस्था कहाती है और जब उन उपाधियोंसे मुक्त हो जाता है अर्थात् छूट जाता है तब मोक्ष अवस्था होती है। आश्चर्य है! कि स्वामीजीको इतनी भी समझ न हुई कि कर्म उपाधिसे मुक्त होना अर्थात् छूटनेका नाम मुक्ति है वा मुक्ति भी कोई उपाधी है जो कर्मोंके अनुसार प्राप्त होती है परन्तु वे सोचे समझे भोले लोगोंको बहकानेके वास्ते यह लिखमारा कि अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति नहीं हो सकती है। स्वामीजी जब कर्म उपाधि जीवने क्षय करदी और वह शुद्ध निर्मल होगया तभी तो वह मुक्त कहाया। वह कर्म कौनसा बाकी रहगया जिस का फल आप मोक्ष बताते हैं? क्या आपके न्यायमें किसी वस्तुके शुद्ध होजानेके पश्चात् फिर उसका अशुद्ध और मल सहित होना बिना कारण भी आवश्यक है?

यह बात, कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है वरण कर्मोंको क्षय करके जीव का शुद्ध होजाना है, ऐसी मोटी और सीधी है कि इसके वास्ते किसी हेतु की जरूरत नहीं है परन्तु स्वामी दयानन्दके प्रेमी भोले भाइयोंके समझानेके वास्ते हमने स्वयम् स्वामीजी की बनाई पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाका भी लेख दिखादिया है-इस पर भी यदि किसी भाईको यह शंका हो कि नहीं मालूम स्वामीजीने यह लेख भूमिकामें किस अभिप्रायसे लिखा हो इस स्वामीजीकी पुस्तकके और भी बहुतसे लेख उद्धृत करते हैं जिनके पढ़नेसे कुछ भी सन्देह बाकी न रहैगा—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९२

"जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती तब जीवके सब दोष जब नष्ट होजाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयाशक्ति आदिकी वासना सब दूर होजाती है। उसके नाश होनेसे (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नहीं होता उसके न होनेसे सब दुःखोंका अत्यन्त अभाव होजाता है। दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानन्द मोक्षमें अर्थात् सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनन्द ही भोगनेको बाकी रहजाता है इसीका नाम मोक्ष है,,

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८७

"अर्थात् सब दोषोंसे छूटके परमानन्द मोक्षको प्राप्त होते हैं जहां कि पूर्ण पुरुष सबमें भरपूर सबसे सूक्ष्म अर्थात् अविनाशी और जिसमें हानि

लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमपदको प्राप्त होके सदा आनन्दमें रहते हैं "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९७

" पूर्व लिखी हुई चित्तकी पांच वृत्तियोंको यथावत् रोकने और मोक्षके साधनमें सब दिन प्रवृत्त रहनेसे पांच क्लेश नष्ट होजाते हैं १ अविद्या २ अस्मिता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश इन मेंसे अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्या भाषणादि दोषोंकी माता अविद्या है जो कि मूढ़ जीवोंको अन्धकार में फंसाके जन्म मरणादि दुःखसागरमें सदा डुबाती है । परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकोंकी सत्यविद्या से अविद्या भिन्न २ होके नष्ट होजाती है तब वे जीव मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं ।"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

" जब अविद्यादि क्लेश दूर होके विद्यादि शुभ गुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बन्धनों और दुःखोंसे छूटके मुक्ति को प्राप्त होजाता है "

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १९२

" जब सब दोषोंसे अलग होके ज्ञान की ओर आत्मा झुकता है तब कैवल्य मोक्ष धर्मके संस्कारसे चित्त परिपूर्ण होजाता है तभी जीवको मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जबतक बन्धनके कामोंमें जीव फंसता जाता है तबतक उसको मुक्ति प्राप्त होना असम्भव है-"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८१ पर मुक्तिके साधनोंमेंसे एक साधन तप है जिसकी व्याख्या स्वामीजी इस प्रकार करते हैं-

" जैसे सोनेको अग्निमें तपाके निर्मल करदेते हैं वैसे ही आत्मा और मनको धर्माचरण और शुभ गुणोंके आचरण रूपसे निर्मल करदेना "

पाठकगणो ! आपको आश्चर्य होगा कि स्वामी दयानन्दजी अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में स्वयम् उपर्युक्त प्रकार लिखकर फिर सत्यार्थप्रकाशमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि मुक्ति सदाके वास्ते नहीं होती है और कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं होती है वरण मुक्ति भी कर्मोंका फल है । परन्तु यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि जो कोई असत्यकी पुष्टि करता है उसके वचन पूर्वापर विरोध रहित हुआ ही नहीं करते हैं । स्वामीजीने अनेक ग्रन्थोंको पढ़ा और प्रायः सर्वशास्त्रोंमें मुक्तिको सदाके वास्ते लिखापाया और मुक्ति प्राप्त होनेका कारण सर्वकर्मोंका क्षय होकर जीवका शुद्ध और निर्मल होजाना ही सर्व आचार्योंके वाक्योंमें पाया इस कारण स्वामीजी सत्य बातको छिपा न सके और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें उनको ऐसा लिखना ही पड़ा । परन्तु अपने शिष्योंको खुश करनेके वास्ते इधर उधर की अटकलपच्चू बातोंसे उन्होंने मुक्तिसे लौटना भी सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन करदिया ॥

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के उपर्युक्त वाक्योंसे हमारे आर्य भाइयों को यह भी विदित होगया होगा कि मुक्ति का-

रागार नहीं है—जेलखाना नहीं है जिससे छूटना जरूरी हो वरण मुक्ति तो ऐसा परमानन्दका स्थान है कि वह आनन्द संसारमें प्राप्त ही नहीं हो सकता है। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वतीने मुक्तिको अनित्य वर्णन करके और मुक्तिसे लौटकर फिर संसारके बन्धनमें पड़नेको आवश्यक स्थापित करके मुक्तिके परमानन्दको धूलिमें मिला दिया। क्योंकि प्रियपाठको! आप जानते हैं कि यदि हम किसी मनुष्यको कहदेवें कि तुझको राजा कैद करदेगा वा अन्य कोई महान् विपत्ति तुझ पर आने वाली है और उसको इस वात का निश्चय वा संदेह तक भी होजावे तो कैदमें जाने वा अन्य विपत्तिके आने से जो क्लेश होगा, उससे अधिक क्लेश उस मनुष्यको अभीसे प्राप्त हो जावेगा और यदि वह इस समय आनन्दमें भी था तो उसका वह आनन्द सब मिट्टी में मिल जावेगा। इस ही प्रकार यदि मुक्तिसे लौटकर संसारके वन्धनमें फंसना मुक्ति जीवोंके भाग्यमें आवश्यक है तो यह बात मुक्ति जीवोंको अवश्य मालूम होगी क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने स्वयम् सत्यार्थप्रकाशमें सिद्ध किया है कि मुक्ति जीव परमेश्वरके सदृश होजाते हैं और उनका संसारियों की तरह स्थूल शरीर नहीं होता है और न इन्द्रियोंका भोग रहता है बरण वह अपने ज्ञानसे ही परमानन्द भोगते हैं। यह मालूम होने पर कि हमको यह परम आनन्द छोड़कर संसार में फिर रुलना पड़ेगा और दुःख सागरमें डूबना होगा, मुक्त जीवोंको जितना क्लेश हो सकता है उसका वर्णन जिह्वासे नहीं हो सकता है और उनकी दशाको परमानन्दकी दशा कहना तो क्या सामान्य आनंदकी भी दशा नहीं कह सकते हैं। इस हेतु मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेके सिद्धान्तको मानकर मुक्तिका सर्व वर्णन ही नष्ट भ्रष्ट होता है—और सर्व कथन मिथ्या हो जाता है॥

आर्यमत लीला।

(१९)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी को संसारके विषय भोगोंका इतना प्रेम है कि वह संसारके विषयोंको भोगनेके वास्ते मुक्त जीवोंका भी मुक्तिसे वापिस आना आवश्यक समझते हैं और इस ही पर बस नहीं करते वरण वह सिद्ध करना चहते हैं कि जितने दिन जीव मुक्तिमें रहता है उन दिनोंमें भी मुक्ति जीव इच्छासे वंचित नहीं रहता है वरण मुक्त दशा में भी स्वेच्छानुसार सर्व ब्रह्मांड में विचरता रहता है और जगह २ का स्वाद लेता रहता है यदि कोई ऐसा कहै कि मुक्ति में जीव इच्छा द्वेष से रहित रहता है तो स्वामीजी को बहुत बुरा मालूम होता है और तुरंत उसके खण्डन पर तय्यार होते हैं स्वामीजीको तो संसार के मनुष्यों को

संसार से प्रेम कराना है इस कारण मुक्ति जीवका एक स्थान में स्थिर रहना उनको कब सुहाता है। वह तो यह ही चाहते हैं कि जिस प्रकार संसारी जीव इच्छा वश विचरते फिरते हैं उस ही प्रकार मुक्त जीवों की बाबत कहा जावे मुक्त जीवोंमें संसार के जीवोंसे कुछ विशेषता सिद्ध नहो

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४४५ पर लिखते हैं:—

"यह शिला पैंतालीस लाखसे दूनी नब्बे लाख कोशकी होती तो भी वे मुक्त जीव बंधन में हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलने से उन की मुक्ति छूट जाती होगी और सदा उसमें रहने की प्रीति और उससे बाहर जाने में अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्यों कर कह सकते हैं"

पाठक गण! इस लेख का अभिप्राय यह है कि जैनी लोग पैंतालीस लाख योजन का एक स्थान मानते हैं जिस में मुक्तजीव रहते हैं स्वामीजी इसके विरुद्ध यह सिखाना चाहते हैं कि मुक्त जीव सर्व ब्रह्माण्डमें घूमता फिरता रहता है इसकारण स्वामीजी जैनियों के सिद्धान्तकी हंसी उड़ाते हैं कि यदि मुक्त जीव मुक्ति लोकसे बाहर चला जाता होगा तो उसकी मुक्ति छूट जाती होगी और मुक्ति स्थान में ही रहते रहते उसको मुक्ति स्थानसे प्रीति और मुक्ति स्थान से बाहर जो लोक है उस से अप्रीति होजाती होगी। परन्तु स्वामी जी ने यह न समझा कि ऐसा कहने से स्वामीजी अपनी ही हंसीकराते हैं क्योंकि यह अनोखा सिद्धान्त कि, कर्मोंके बंधनसे मुक्त होकर और रागद्वेष को छोड़कर और स्वच्छ निर्मल होकर और मुक्तिको प्राप्त होकर भी प्रीति और अप्रीति करने का गुण बाकी रहता है और इधर उधर विचरने की भी इच्छा रहती है, स्वामी जीके ही मुखसे शोभता है अन्य कोई विद्वान् ऐसा ढीठ नहीं हो सक्ता है कि ऐसी उलटी बातें बनावे। अफसोस! स्वामीजीने अनेक ग्रंथ पढ़े परंतु मुक्ति और आनन्द का लक्षण न जाना स्वामीजी बेचारे तो आनन्द इस ही में समझते रहे कि जीव सर्व प्रकारके भोग करता हुआ स्वच्छन्द फिरता रहे और किसी प्रकारका अटकावा किसी काम में रोक टोक न माने और जो चाहे सो करे॥

पाठकगण! जिस प्रकार बाजारी रंडियें गृह स्वामी स्वभर्त्तार संतुष्टा स्त्रियों पर हंसा करती हैं कि हम स्वच्छन्द हैं और विवाहिता स्त्रियें बंधन में फंसी हुई कारागारका दुःख भोगती हैं वा जिस प्रकार शराबी कबाबी लोग त्यागियों की हंसी उड़ाया करते हैं कि यह त्यागी लोग संसारका कुछ भी स्वाद न ले सकेंगे इस ही प्रकार स्वामी दयानन्दजी भी शुद्ध निर्मल स्वभावमें स्थित उन मुक्त जीवोंकी हंसी उड़ाते

हैं जिनको कुछ भी इच्छा नहीं है और एक स्थानमें स्थिर हैं और उनको बंधन में बतलाते हैं और इनके विरुद्ध यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्त होकर भी जीव सारे ब्रह्मांड में मजे उड़ाता फिरता रहता है "उल्टा चोर कोतवालको डांटे" वाला दृष्टान्त यहां घटता है—

प्यारे आर्य्य भाइयो! हम बारम्बार आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप सिद्धान्तों को विचारें और आचार्योंके लेखोंको पढ़ें स्वामी दयानन्दजीके पूर्वापर विरुद्ध वाक्यों पर निर्भर न रहैं क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने कोई धर्म व धर्म का मार्ग प्रकाश नहीं किया है वरण भ्रमजाल रचा है। आइये ! हम आप को स्वयम् स्वामी दयानन्दजीके ही लेख दिखावें जिससे उनका सब भ्रम जाल प्रगट हो जावे।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १७२

"जैसे जलके प्रवाहको एक ओर से दृढ़ बांधके रोक देते हैं तब जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलके कहीं स्थिर होजाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वरमें स्थिर होजाती है। एक तो चित्तकी वृत्ति को रोकनेका यह प्रयोजन है और दूसरा यह है कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं तब योगीकी वृत्ति सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है और संसारके मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है"

प्यारे पाठकों ! जरा स्वामीजी के इस लेख पर विचार कीजिये। जिस प्रकार तालाव का जल स्थिर होजाता है। इस प्रकार मनकी वृत्तिको रोक कर स्थिर करने का उपदेश स्वामीजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें लिखते हैं और चित्तके स्थिर होने से आनन्द और चंचल होने से दुःख बताते हैं परन्तु सत्यार्थ प्रकाशमें जहां उनको जैनियोंके खण्डन पर लेखनी उठाने की आवश्यक्ता हुई वहां मुक्ति जीवोंके एक स्थानमें स्थिर रहने को बंधन बताया और सर्व ब्रह्माण्ड में स्वेच्छानुसार घूमते फिरने को परमानन्द समझाया। यदि इस ही प्रकार स्वामीजी को जैनियोंका खण्डन करना था तो उनको उचित था कि मुक्ति का सोध न चित्त वृत्ति का रोकना और मनको स्थिर करना न बताते वरण वाममार्गियों की तरह स्वेच्छाचारी रहने और मनको बिलकुल न रोकने में ही मुक्ति बताते और चित्तकी वृत्ति को रोकना, उपासना और ध्यान आदिक को महा बंधन और दुःख का कारण बताते। मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता सिद्ध करने में जो २ हेतु स्वामीजीने दिये हैं उन से तो यहही मालूम होता है कि स्वामीजीकी इच्छा तो ऐसी ही थी क्योंकि उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, मीठा वा

खट्टा एक प्रकारका ही रस चखने से वह आनन्द नहीं आ सक्ता जो नाना प्रकार के रस चखनेसे आता है इस कारण मुक्ति जीवों को संसार के नानाप्रकार के विषयभोग भोगने के वास्ते मुक्ति को छोड़कर अवश्य संसारमें आना चाहिये केवल इतना ही नहीं वरण स्वामीजीने तो यहां तक लिख दिया है कि मुक्ति कैद के समान है यदि वह कुछ काल के वास्ते हो तो ज्यों त्यों भुगती भी जावे परन्तु यदि सदा के वास्ते हो तो अत्यन्त ही दुःख दाई है। इससे ज्यादा स्वामीजी अपने हृदयके विचारका और क्या परिचय देते?

यद्यपि मुक्तिके साधनोंका वर्णन करते हुये पूर्वाचार्यों के वाक्योंके अनुसार स्वामी जीको यह ही लिखना पड़ा कि सन्यासी अपने चित्तकी वृत्ति को संसार की ओर से रोककर स्थिर करे परन्तु ऐसा लिखनेका दुःख उनके हृदय में बराबर बनाही रहा और वह यह ही चाहते रहे कि मुक्ति का साधन करनेवाला वहही माना जावे जो संसार में ही लगा रहे। इस ही हेतु स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १३५ पर नीचे लिखा एक श्लोक लिखकर उसका खण्डन करते हैं-

यतीनांकाञ्चनंदद्या-
त्ताम्बूलंब्रह्मचारिणाम् ।
चौराणानभयंदद्या-
त्सनरोनरकं व्रजेत् ॥

"इत्यादि बचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुवर्ण दान दे तो दाता नरक को प्राप्त होवे"-

पाठक गणो! संन्यासी का काम है कि संसार को त्याग करने और अपने चित्त को स्थिर करने की कोशिश करता रहै और संसार व्यवहार में न पड़े परंतु सुवर्ण अर्थात् नक़दी माल संसार में फंसाने का कारण होता है इस कारण इस श्लोक में किसी ने उपदेश दिया है कि जो कोई सन्यासी को नक़दी का दान देता है वह उस संन्यासी को संसार में फंसानेका कारण बनता है अर्थात् अधर्म करता है परंतु स्वामी दयानंद जी इस श्लोक से बहुत नाराज हुवे हैं और श्लोक लिखकर वह अपनी टिप्पणी इस प्रकार देते हैं।

"यह बात भी वर्णाश्रम विरोधी संप्रदायी और स्वार्थसिंधु वाले पौराणिकों की कल्पी हुई है। क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा खंडन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे"-

इस उपर्युक्त लेख से स्वामी दयानंद जी का अभिप्राय पाठकों को मालूम होगया होगा कि वह संन्यासियों की वृत्ति किस प्रकार की हो जानी चाहते थे और यह पहले ही मालूम हो

चुका है कि वह मोक्षको कैसा दुःखदाई मानते थे।

स्वामी जी का अभिप्राय कुछ भी हो हमको यह खोज करनी है कि जिस प्रकार जैनी मानते हैं-जीव के स्थिर रहने में परमानंद है वा जिस प्रकार स्वामी दयानंद जी सिखाते हैं-जीवके स्वेच्छानुसार सर्वस्थान में विचरने में सुख है? इस की परीक्षा में हम अपने आर्य्य भाइयों के वास्ते उपनिषद् का एक लेख पेश करते हैं जिसको स्वामी जी ने भी स्वीकार करके सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८७ पर लिखाहै-

समाधि निर्धूतमलस्य चेतसोनिवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तः करणेन गृह्यते॥

जिस पुरुष के समाधि योगसे अविद्यादि मल नष्ट हो गये हैं आत्मस्थहोकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है उस को जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनंदको जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है।

पाठक गण! इस उपर्युक्त श्लोक में यह दिखाया गया है कि समाधि से अविद्यादि मल नष्ट हो जाते हैं और जीव इस योग्य हो जाता है कि वह अपनी आत्मा में स्थिर हो सके इस प्रकार जब जीव अपनी आत्मामें स्थिर होकर परमात्मासे योग लगाता है तो उस को परमानन्द प्राप्त होता है-

स्वामी दयानन्द जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखा है कि मुक्तजीव ब्रह्म में वास करता है उस के भी केवल यह ही अर्थ हो सकते हैं कि जीव अपनी आत्मा में स्थिर होकर परमात्मा से युक्त हो जाता है इस ही कारण स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि मुक्त जीव ब्रह्मके सदृश हो जाता है। इस अर्थ को स्पष्ट करने के वास्ते स्वयम् स्वामी दयानन्द जी ऋग्वेदादि भाष्य भूमि का के पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं-

जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञानसे परिपूर्ण करनेको समाधि कहते हैं-

पूर्वोक्त उपनिषद् के श्लोक में यह दिखलाया था कि प्रथम समाधि लगाकर अविद्यादि मल अर्थात् इच्छा, द्वेष आदिक को दूर करे फिर अपनी आत्मा में स्थिर हो जावे और इस वाक्य में समाधि का स्वरूप दिखलाया है कि संसार से चित्त की वृत्तिको हटा कर यहां तक कि अपने शरीरको भी भूल कर परमात्मा के ध्यान में इस प्रकार लीन हो जावे कि अपने आपे का भी ध्यान न रहे जिस प्रकार कि

लोहा अग्नि में पड़कर लाल अग्नि रूप ही हो जाता है और अंगारा ही मालूम होने लगता है इस ही प्रकार परमात्मा के ध्यानमें ऐसा ही तल्लीन हो जावे कि अपने आपेका भी ध्यान न आवे इस ही अवस्था में परमानन्द प्राप्त होता है-

वह आनन्द ऐसा आनन्द नहीं है जो संसारियों को नानाप्रकार की वस्तुओं के भोगने वा नानाप्रकार की क्रियाओं के करने से प्राप्त होता है वरण संसार का सुख इस सुखके सामने दुःख ही है और झूठा सुख है। असली आनन्द और परमानन्द जीव की वृत्तियों के रुकने और आत्मामें स्थिर होनेमें ही होता है क्योंकि संसारका सुख तो यह है कि किसी बात की इच्छा उत्पन्न हुई और दुःख प्राप्त हुआ। फिर उस इच्छा के दूर होने से जो दुःख की निवृत्ति हुई उसको सुख मान लिया। संसार के जितने सुख हैं वह सब सापेक्षिक हैं। बिना दुःख के संसार में कोई सुखहो ही नहीं सकता है। यदि भूख न लगै तो भोजन खाने से सुख न हुआ करै यदि प्यास न लगै तो पानी पीने से सुख न हुआ करै या कामकी पीड़ा न हो तो स्त्री भोग में कुछ भी आनन्द न हो। इसही प्रकार चलना फिरना सैर सपाटा आदिक जिन २ संसारीक कामोंमें सुख कहा जाता है वह यही ही है कि प्रथम इच्छा उत्पन्न होती है और उस इच्छासे दुःख होता है फिर जब इच्छाके अनुसार काम होजाता है तो उस दुःख के दूर होने को यह जीव सुख मान लेता है परन्तु इच्छा द्वेष आदिक दूर होकर और इच्छा द्वेषके कारण जो चित्तकी प्रवृत्ति संसार की नाना वस्तुओं और नाना रूप कार्यों पर होती है उस प्रवृत्ति के रुकनेसे और जीवात्माके आत्मा में स्थिर होनेसे किसीप्रकार भी दुःख नहीं हो सकता है और न वह संसार का झूठा सुख प्राप्त होता है जो वास्तव में दुःख का किंचित् मात्र दूर होना है वरण इस प्रकार रागद्वेष दूर होकर और जीवात्मा शुद्ध और निर्मल होकर उसके ज्ञानके प्रकाश होनेसे जो सुख होता है वह ही सच्चासुख और परमानन्द है।

परमानंद का उपर्युक्त स्वरूप होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी संसार सुख को ही सुख मानते हैं और मुक्ति जीव को भी आनंद की खोजमें सर्व ब्रह्मांड में भ्रमता हुआ फिराना चाहते हैं और एक स्थान में स्थिर अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न मुक्त जीवों को बंधन में बंधा हुआ बताकर जैनियों की हंसी उड़ाते हैं-परंतु वास्तव में हंसी उसीकी उड़ती है जो अटकल पच्चू और उलटी बातें बनाता है-

हमको अत्यंत आश्चर्य है कि स्वामी जी ने यह कैसे कह दिया कि, मुक्त जीवों के एक स्थान में स्थिर रहने से उनको उस स्थान से प्रीति होजावैगी

और उस स्थान से बाहरके स्थान से अप्रीति करने लगें गे? क्या स्वामी जी की समझमें मुक्ति प्राप्त होने पर भी राग द्वेष जीव में बाकी रह जाता है और प्रीति करने की उपाधि उस में बनी रहती है? शायद यह ही समझ कर कि उस में ऐसी उपाधिका कोई अंश बाकी रह जाता है स्वामी जी ने यह कहा है कि मुक्ति जीव अपनी इच्छानुसार आनंद भोगता हुआ सर्व ब्रह्मांड में फिरता रहता है। परन्तु ऐसा मानने से तो बड़ी हानि आवेगी क्योंकि जब एक स्थान से प्रीति और अन्य स्थान से अप्रीति स्वामी जी के कथनानुसार हो सकती है तो अन्य वस्तुओं से प्रीति वा अप्रीति क्यों नहीं हो सकती? और जब स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति जीव सर्व ब्रह्मांडमें घूमता फिरता रहता है तो नहीं मालूम किस वस्तु से प्रीति कर बैठे और किस विषय में आसक्त हो जावे वा न मालूम किस वस्तु वा जीवसे अप्रीति अर्थात् द्वेष कर लेवे और उससे लड़ बैठे?

इस प्रकार मुक्ति जीव के एक स्थान में अपने ज्ञान स्वरूप में स्थिर न रहने और इच्छानुसार ब्रह्मांड में विचरते फिरने से संसारी और मुक्ति जीव में कुछ भी अंतर नहीं रहता है और शायद इस ही अंतर को हटाने और मुक्ति के साधनसे अरुचि दिलाने ही के वास्ते स्वामी जी ने यह सब प्रपंच रचा है--

स्वामी जी! यह मानने से कि मुक्त जीव इच्छानुसार घूमते फिरते रहते हैं बड़ा भारी बखेड़ा उठ खड़ा होगा क्योंकि आप सत्यार्थप्रकाश में यह लिख चुके हैं कि "यदि मुक्ति से जीव लौटता नहीं है तो मुक्ति में अवश्य भीड़ भड़क्का हो जावेगा" जिससे विदित होता है कि आप मुक्ति जीवों का ऐसा शरीर मानते हैं जो दूसरे मुक्त जीव के शरीर को रोक पैदा करे ऐसा शरीर धरते हुवे क्या यह सम्भव नहीं है कि एक मुक्ति जीव जिस समय जिस स्थान में जाना चाहे उसही स्थान में उस ही समय दूसरा मुक्त जीव जाने की वा प्रवेश करने की इच्छा रखता हो और स्वामी जी के कथनानुसार मुक्त जीवों का ऐसा शरीर है नहीं जो एक ही स्थान में कई जीव समा सकें वरण एक जीव दूसरे जीव के वास्ते भीड़ करता है तब तो उन दोनों मुक्ति जीवों में जो एक ही स्थान में प्रवेश करना चाहते होंगे खूब लड़ाई होती होगी वा एक मुक्त जीव को निराश होकर वहां से लौटना पड़ता होगा और इस में अवश्य उसको दुःख होता होगा और ऐसा भी हो सकता है कि जिधर एक मुक्त जीव जाता हो उधर से दूसरा मुक्त जीव आता हो और दोनों आपुस में टकरा जावैं यदि कोई कहने लगे कि एक उन में से अलग हट कर दूसरे को रास्ता दे

देता होगा तो स्वच्छन्दता न रही दूसरे के कारण से अलहदा हटना पड़ा संसार बंधन में जो दुःख है वह यह ही तो है कि संसार के अन्य जीवों और अन्य वस्तुओं के कारण अपनी इच्छानुकूल नहीं प्रवर्त सकते हैं।

इस को बड़ा आश्चर्य है कि जब स्वयम् स्वामी जी यह लिखते हैं कि मुक्ति का साधन रागद्वेषका दूर करना और अपनी आत्मा में स्वरूप स्थिर होना है इस ही साधन से जीवात्मा शुद्ध और निर्मल होता है और इस ही से उसकी सर्व उपाधियां दूर होती हैं तब नहीं मालूम स्वामी दयानन्द की समझ में मुक्ति को प्राप्त करने के पश्चात् जीवात्मा में कौन सी उपाधि चिमट जाती है जिसके कारण वह अपनी स्वरूपस्थित स्थिर अवस्था को छोड़कर सारे ब्रह्मांड की सैर करता फिरने लगता है? देखिये मुक्ति के साधन में स्वयम् स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८३

"जो वायु बाहर से भीतर को आता है उसको श्वास और जो भीतर से बाहर जाता है उस को प्रश्वास कहते हैं उन दोनों के जाने आने को विचार से रोके नासिका को हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से ही उनके रोकने को प्राणायाम कहते हैं......इनका अनुष्ठान इस लिये है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहै,,

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १७९

"इसी प्रकार बारंबार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में होजाता है और प्राण के स्थिर होनेसे मन, मन के स्थिर होनेसे आत्मा भी स्थिर हो जाता है।"

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८५

"धारणा उसको कहते हैं कि मनको चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकारका जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना,,।

तथा धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेनेके योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर है उस के प्रकाश और आनन्द में अत्यंत विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८६

ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला जिस मनसे जिस चीजका ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर हीके आनन्द स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेद भाव नहीं रहता।

प्यारे पाठको! मुक्ति के साधन में तो स्वामी जीने उपर्युक्त लेखके अनुसार यह बताया कि ध्यान करने वा-

ला और जिस मनसे ध्यान करता है और जिस का ध्यान करता है इन तीनों बातों का भी भेद मिटाकर परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञान में ऐसा मग्न हो जावे कि इस बात का भेद ही न रहै कि कौन ध्यान करता है और किस का ध्यान करता है परन्तु मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् स्वामी जी यह बताते हैं कि वह सर्व ब्रह्मांड की सैर करता हुआ फिरै। क्या मुक्ति प्राप्त होनेके पश्चात् जीव को परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञानमें मग्न रहने और अपने आपे को भुलाकर परमेश्वर ही में लवलीन रहने की जरूरत नहीं रहती है क्या मुक्ति साधन के समय तो आनन्द ईश्वर में लवलीन होने से प्राप्त होता है और मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् इच्छानुसार सारे ब्रह्मांड में घूमते फिरने से प्राप्त होता है ?

अफसोस! स्वामी जी ने बिना विचारे जो चाहा लिखमारा और आनन्द के स्वरूप को ही न जाना।

आर्यमत लीला।

(२०)

सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से मालूम होता है कि स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने जीव के स्वरूप को उलटा समझ लिया और इस ही कारणसे जीव के मुक्ति से लौटने और मुक्ति में भी सुख के अर्थ विचरते फिरनेका सिद्धान्त स्थापित कर दिया। देखो स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ६०

इच्छाद्वेषप्रयत्न सुखदुःख ज्ञानान्यात्मनो लिंगमिति „ ॥ न्याय० ॥ अ० १। आ० १। सू० १०

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा। वैशेषिक में इतना विशेष है "प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः सुख दुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि„ ॥ वै० ॥ अ० ३। आ० २। सू० ४ ॥

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्माके लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

स्वामीजीने अनेक ग्रन्थ पढ़े और स्थान स्थान पर सत्यार्थ प्रकाशमें पूर्वाचार्यों के वाक्य उद्धृत भी किये परन्तु समझमें उनको कुछ भी न आया। वह न्याय और वैशेषिक शास्त्रों में उपरोक्त सूत्रों को पढ़कर यह ही समझ गये कि सांस लेना, आंख को खोलना मूंदना, जहां

चाहे आना जाना, इन्द्रियों का विषय भोग करना, भूख, प्यास, शारीरिक बीमारी, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न यह सब बातें जीव के स्वाभाविक गुण हैं, अर्थात् यह सब बातें जीव के साथ सदा बनी रहती हैं और कभी जीव से अलग नहीं हो सकतीं हैं। तब ही तो स्वामी जी यह कहते हैं कि मुक्ति दशा में भी जीवात्मा अपनी इच्छा के अनुसार सर्व ब्रह्मांड में घूमता फिरता रहता है और सर्व स्थान के स्वाद लेता रहता है और तब ही तो स्वामी जी यह समझाते हैं कि जैनी लोग मुक्त जीवों के वास्ते एक स्थान नियत करके और उनकी स्थिर अवस्था बना कर उनको जड़ वस्तु के समान बनाना चाहते हैं।

जिस प्रकार तोते को बहुत सी बोली बोलनी सिखा दी जाती हैं और वह पक्षी उन सिखाये हुवे शब्दों को बोलने लगता है परन्तु उन वाक्योंका अर्थ बिल्कुल भी नहीं समझता, इस ही प्रकार स्वामी जी की दशा मालूम होती है कि अनेक ग्रन्थ देख डाले परंतु समझा कुछ भी नहीं। स्वामीजी को इतनी भी मोटी समझ न हुई कि उपर्युक्त जो लक्षण जीव के न्याय वा वैशेषिक दर्शनों में वर्णन किये हैं वह संसारी जीव के हैं देहधारी के हैं। क्योंकि मुक्ति में जीव शरीर रहित निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। देह धारण करना जीवका औपाधिक भाव है स्वाभाविक भाव नहीं है इस ही कारण मुक्ति में शरीर नहीं होता है, यदि देह धारण करना जीव का स्वाभाविक भाव होता तो मुक्ति में भी शरीर कदाचित् न छूट सकता। देखो स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२८

"न ह शरीरस्यसतः प्रियप्रिययोर पहतिरस्त्यशरीरं वा वसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः" ॥ छान्दो० ॥

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता—

ऊपर के लेखसे स्पष्ट विदित है कि सांसारिक अवस्था औपाधिक अवस्था है स्वाभाविक अवस्था नहीं है क्योंकि मुक्ति में जीव शुद्ध अवस्था में रहता है और संसार में उसकी अवस्था अशुद्ध है-स्वभाव से विरुद्ध अवस्था को ही अशुद्ध अवस्था कहते हैं अशुद्धि, उपाधि और विकार यह सब शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं और इनके प्रतिपक्षी शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल एक अर्थ के वाचक हैं जब सर्व प्रकार की उपाधि जीव की दूर जाती हैं और जीव साफ होकर अपने असली स्वभाव में रह जाता है तब ही जीव की मुक्ति दशा कहलाती है। मुक्ति कहते हैं छूटनेको छूटना किससे ? विकारसे—

अब देखना यह है कि उपाधि वा विकार जो संसारी जीवों को लगे रहते हैं वह क्या है और जीव का असली स्वाभाव क्या है ?—

उपर्युक्त लेख से यह तो विदित ही है कि शरीर धारी होना जीवका स्वभाव नहीं है वरन शरीर भी जीवके वास्ते एक उपाधि है।

इस प्रकार समझने के पश्चात् जब हमारे प्यारे आर्य्य भाई न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के कथन किये हुये जीवके लक्षणों को जांच करेंगे तो मालूम होजावेगा कि वह सब लक्षण संसारी देहधारी जीवके हैं अर्थात् जीव के उपाधिक भाव के लक्षण हैं। जीव के असली स्वाभाव के वह लक्षण कदाचित् नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह सब लक्षण देहधारी जीव में ही हो सकते हैं, देह रहित में कदाचित नहीं हो सकते क्योंकि सांस लेना, आंखों को खोलना मूंदना, आंख, नाक, और जीभ आदिक इन्द्रियोंका होना और इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग करना आदिक सर्व क्रिया देहधारी जीव में ही हो सकती हैं। देहरहित मुक्त जीव में इनमें से कोई भी बात नहीं हो सकती है। और संसारमें जो कुछ दुःख कहलाता है वह भी देहधारी ही में होता है। मुक्त जीव तो संसारिक सुख दुःख से अलग होकर परमानन्द ही में रहता है। संसारिक सुख दुःखका कारण सिवाय रागद्वेषके और कुछ नहीं हो सकता है। इस वास्ते रागद्वेष भी संसारी देहधारी उपाधिसहित जीवोंमें ही होता है। मुक्त जीव में रागद्वेष भी नहीं हो सकता है। देखिये स्वामी दयानन्द जी मुक्ति सुखको इस प्रकार वर्णन करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ट १९२

"सब प्रकार की बाधा अर्थात् इच्छाविघात और परतन्त्रता का नाम दुःख है फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिनके लिये परमानन्द प्राप्त होताहै उसी सुखका नाम मोक्ष है—"

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट विदित होता है कि इच्छा और द्वेष ही जीव को बाधा पहुंचाती हैं और इन ही केदूर होनेसे जीव स्वच्छ और निर्मल होकर अपना असली स्वभाव प्राप्त करता है।

प्रयत्न भी संसारी जीव ही को करना पड़ता है क्योंकि प्रयत्न उसही बात के वास्ते किया जाता है जो पहले से प्राप्त नहीं है और जिसकी प्राप्ति की इच्छा है अर्थात् जिसकी अप्राप्ति से जीव दुःख मान रहा है। मुक्ति में न इच्छा है और न दुःख है इस कारण मुक्ति में प्रयत्न की कोई आवश्यक्ता ही नहीं है। इच्छानुसार गमनागमन भी एक प्रकार का प्रयत्न है इस कारण यह भी मुक्तिमें नहीं हो सका है

वरण मुक्ति में तो शांति और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीने भी स्थिरताको ही मुक्ति और परमानन्द का उपाय पूर्वाचार्यों के अनुसार लिखा है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८७

"जो......अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं,,

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १७५

"जिससे उपासक का मन एकाग्रता प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो,,

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२६

"यच्छेद्वाङ्मनसीप्राज्ञ-
स्तद्यच्छज् ज्ञानमात्मनि ।
ज्ञानमात्मनिमहति नियच्छे,
त्तद्यच्छेच्छान्तआत्मनि ॥

सन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोके उनको ज्ञान और आत्मामें लगावे और ज्ञानस्वात्माको परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्त स्वरूप आत्मामें स्थिर करे--"

उपर्युक्त स्वामीजी के ही लेखों से सिद्ध होगया कि शान्ति और स्थिरता ही जीवके वास्ते मुक्तिका साधन और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है! इस हेतु मुक्तिजीव इधर उधर डोलते नहीं फिरते हैं वरण राग द्वेष रहित स्थिर चित्त ज्ञान स्वरूप परमानन्दमें मग्न रहते हैं।

स्वामी दयानन्दजीने बड़ा धोखा खाया जो न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के पूर्वोक्त संसारी देहधारी जीवके लक्षणको अर्थात् औपाधिक भावको जीवका असली स्वभाव मान लिया और ऐसा मानकर शुद्ध स्वरूप मुक्त जीवों में भी यह सब उपाधियां लगा दी और मुक्त जीवको भी संसारी जीवके तुल्य बनाकर कल्याणके मार्गको नष्ट भ्रष्ट करदिया और धर्मकी जड़ काटदी।

प्यारे आर्य भाइयो! यह तो आप को मालूम होगया कि जिस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने जीवका लक्षण समझा है और न्याय और वैशेषिक दर्शनोंके हवाले से लिखा है वह विकार सहित बंधनमें फंसे हुये जीव का लक्षण है परन्तु अब आप यह जानना चाहते होंगे कि जीवका असली लक्षण क्या है? इस कारण हम आपको बताते हैं कि जीवका लक्षण ज्ञान है।

लक्षण वह होता है जो तीन प्रकार के दोषोंसे रहित हो। १ अव्याप्त २ अतिव्याप्त ३ असम्भव। जो लक्षण किसी वस्तु का किया जावे यदि वह लक्षण उस वस्तु में कभी पाया जावे और कभी न पाया जावे वा उस के एक देश में पाया जावे तो उस लक्षण में अव्याप्ति दोष कहलाता है जैसा कि जो लक्षण स्वामी जी ने न्याय और वैशेषिक शास्त्रके कथनके अनुसार वर्णन किये हैं वह जीवके लक्षण नहीं हो सके क्योंकि वह लक्षण संसारी जीव में पाये जाते हैं और मुक्ति जीव में नहीं, इस कारण इन लक्षणोंमें अ-

व्याप्त दोष है। वरण यदि अधिक विचार किया जावे तो संसारी जीव के भी यह लक्षण नहीं हो सक्ते हैं क्योंकि संसारी जीवों में स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाशमें वृक्ष आदिक स्थावर जीव भी माने हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार चल फिरनहीं सक्ते हैं और उन के आंखें भी नहीं होती हैं जिनको वह खोल मूंद सकें। और स्वामी दयानन्द जी ने वैशेषिक शास्त्रके आधार पर अपनी इच्छा के अनुसार चलना फिरना और आखोंका मूंदना खोलना भी जीवका लक्षण वर्णन किया है। लक्षण वहही हो सक्ता है जो कभी किसी अवस्थामें भी लक्ष्य वस्तुसे दूर न हो सके।

जो लक्षण किसी वस्तुका कहा जावे यदि वह लक्षण उस वस्तुसे पृथक् अन्य किसी वस्तु में भी पाया जावे तोउस लक्षणमें अतिव्याप्त दोष होता है जैसे आंखोंका खोलना मूंदना आदिक क्रिया धातुके खिलौने में भी हो जाती हैं जिनमें कोई कल लगा दी जाती है।

जिस वस्तुका लक्षण वर्णन कियाजावे यदि वह लक्षण उस वस्तुमें कभी भी न पाया जावे तो उस लक्षणमें असंभव दोष होता है॥

जीवका लक्षण वास्तवमें ज्ञानही हो सकता है क्योंकि इस लक्षणमें इन तीनों दोषोंमेंसे कोई भी दोष नहीं है। कोई अवस्था जीवकी ऐसी नहीं हो सकती है जब इसमें थोड़ा वा बहुत ज्ञान न हो क्योंकि जिसमें किंचिन्मात्र भी ज्ञान नहीं है वह ही तो वस्तु जड़ व अचेतन कहलाती है। इस हेतु इस लक्षणमें अव्याप्त दोष नहीं है। इस में अतिव्याप्ति दोष भी नहीं है क्योंकि जीवके सिवाय ज्ञान किसी अन्य वस्तु में होही नहीं सकता है। जीवमें ज्ञान प्रत्यक्ष विद्यमान है इस कारण इसमें असम्भव दोष भी नहीं है॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी यह तो मानतेही हैं कि मुक्ति अवस्थामें जीव देह रहित होता है और ज्ञान उसका देहधारी जीवोंसे अधिक होता है। इस हेतु जीवके ज्ञानका आधार आंख नाक कान आदिक इन्द्रियों पर नहीं हो सकता है वरण संसारी जीव रागद्वेष आदिक विकारोंके कारण अशुद्ध हो रहा है जिससे इसका ज्ञान गुण मैला रहता है और पूर्णकाम नहीं कर सकता है। इस कारण संसारी देहधारी जीवको इन्द्रियोंकी इस ही प्रकार आवश्यकता होती है जिस प्रकार आंखके विकार वालोंको ऐनककी आवश्यकता होती है वा जिस प्रकार बुड्ढे वा कमजोर मनुष्यको लाठी पकड़ कर चलनेकी जरूरत होती है। ज्यों ज्यों इच्छा द्वेष आदिक संसारी जीव के मैल ध्यान, तप और समाधि आदिकसे दूर होते जाते हैं त्यों त्यों जीवकी ज्ञानशक्ति प्रकट होती है और अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता जाता है। इस विषयमें स्वामी दयानन्द जी इस प्रकार लिखते हैं।—

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ १८५

"इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करनेसे आत्माके ज्ञानका आवरण अर्थात् ढांकने वाला जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञानका प्रकाश धीरे २ बढ़ता जाता है-"

स्वामी दयानन्दजीने यह सब कुछ लिखा परन्तु स्वामीजीको मुक्तिसे कुछ ऐसी चिढ़ थी कि उनको मुक्तजीवकी प्रशंसा तनक भी नहीं भाती थी। जब ही तो उन्होंने मुक्तिको क़ैदखानेके समान लिखा और नाना प्रकार के स्वाद लेनेके वास्ते मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेकी आवश्यकता बताई। तब यह यह कब मान सकते थे कि मुक्ति में जीवको पूर्णज्ञान प्रकट हो जाता है और वह सब कुछ जानने लगता है अर्थात् सर्वज्ञ होजाता है। इस कारण स्वामीजीने यह नियम बांध दिया कि जीव अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ होही नहीं सकता है अर्थात् मुक्तिमें भी अल्पज्ञ ही रहता है॥

मुक्तजीवोंकी बुराई करने में स्वामी जी ऐसे पक्षपाती बने हैं कि वह अपने लिखेको भूलजाते हैं. देखिये वह सत्यार्थप्रकाशमें इस प्रकार लिखते हैं।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४०

"प्राणायामादशुद्धिक्षयेज्ञान दीप्तिराविवेक ख्यातेः॥

"जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर कालमें अशुद्धि का नाश और ज्ञानका प्रकाश होजाता है-जबतक मुक्ति न हो तब तक उस के आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है-"

इस प्रकार लिखने पर भी स्वामी जीको यह न सूझी कि मुक्ति अवस्था तक बढ़ते बढ़ते कहांतक ज्ञान बढ़ जाता है। और कहां तक बढ़ना रुकजाता है। स्वामीजीको विचारना था कि ज्ञानका इस प्रकार बढ़ना जीवसे पृथक् किसी दूसरी वस्तुके सहारे पर नहीं है।

जिस प्रकार कि पानीका गर्म होना अग्निके सहारे पर होता है कि जितना अग्नि कमती बढ़ती होगा पानी गर्म होजावेगा वरण यहां तो जीवके निज स्वभावका प्रगट होना है। जीव के ज्ञानपर जो आवरण आरहा है उस का दूर होना है-अर्थात इच्छा द्वेषादिक मेल जितना दूर होता जाता है उतना उतना ही जीवके ज्ञानका आवरण दूर होता जाता है। और जीव का ज्ञान प्रगट होता जाता है। जब जीव पूर्ण शुद्ध हो जाता है अर्थात् पूर्ण आवरण नष्ट हो जाता तब जीव का पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो जाता है तात्पर्य यह है कि मुक्ति दशामें जीवके ज्ञानमें कोई रुकावट बाकी नहीं रहती है-अर्थात वह सर्वज्ञ होजाता है।

सर्वज्ञ के शब्द पर शायद हमारे आर्य भाई खटकगे क्योंकि वह कहेंगे कि सर्वज्ञ तो ईश्वरका गुण है। इस कारण यदि जीव मुक्ति पाकर सर्वज्ञ होजावे तो मानो वह तो ईश्वरके तुल्य होगया

परन्तु प्यारे आर्य भाइयो! आप घबराइये नहीं स्वयम् स्वामी दयानन्दने यह बात मानली है कि मुक्त जीव ईश्वर के तुल्य होता है-देखो वह इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १८८

"सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाशमें कई स्थान पर यह भी लिखा है कि मुक्त जीव ब्रह्ममें रहता है परन्तु ब्रह्म में रहने का अर्थ सिवाय इसके और कुछ भी नहीं हो सकता है कि वह ब्रह्मके सदृश हो जाता है क्योंकि ब्रह्मको सर्व व्यापक मानने से मुक्त अमुक्त सब ही जीवोंका ब्रह्ममें निवास सिद्ध होता है फिर मुक्त जीवों में कोई विशिष्टता बाकी नहीं रहती। प्यारे आर्य भाइयो! स्वामीजीने मुक्तजीव को अल्पज्ञ तो वर्णन कर दिया परन्तु उस अल्पज्ञता की कोई सीमा भी बांधी? यदि आप इस पर विचार करेंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि न तो स्वामीजी कोई सीमा मुक्त जीवके ज्ञानकी बांध सके और न बंध सक्ती है। देखिये स्वयं स्वामीजी इस प्रकार लिखते हैं:—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५१

"जैसे सांसारिक सुख शरीरके आधारसे भोगता है वैसे परमेश्वरके आधार मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भोगता है। वह मुक्तजीव अनन्त व्यापक ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्याको क्रमसे देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सब में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं देखता है जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है-मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होने से पूर्णज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है।"

प्यारे आर्य्य भाइयो! स्वामी दयानन्द जी का उपर्युक्त लेख पढ़नेसे स्वामी जी का यह मत तो स्पष्ट विदित हो गया कि सर्व ब्रह्मांडमें कोई स्थूल वा सूक्ष्म वस्तु ऐसी नहीं है जिसका ज्ञान मुक्त जीव को न हो सकता हो वरण सर्वका ज्ञान उसको होता है और वह पूर्ण ज्ञानी है। और ज्ञान ही उस का आनन्द है। स्वामीजी कोई सीमा जीवके ज्ञानकी नहीं बांध सके कि अमुक वस्तुका वा उसके स्वभावका ज्ञान होता है, और अमुक का नहीं, वरण वह स्पष्ट लिखते हैं कि उसको सर्व ज्ञान होता है और पूर्णज्ञान होता है। और इसके विरुद्ध लिखा भी कैसे जा सकता है? क्योंकि जब मुक्त जीव के आनन्द का आधार उसका ज्ञान ही है और जितना २ जीव निर्मल होता जाता है और उसका ज्ञान बढ़ता जाता है उतना आनन्द

बढ़ता जाता है। तब यदि मुक्तजीव अल्पज्ञ रहेगा उसका ज्ञान पूर्ण नहीं होगा अर्थात् वह सर्वज्ञ नहीं होगा तो उसको परमानन्द भी प्राप्त नहीं होगा। जितनी उसके ज्ञानमें कमी होगी उतना ही उसका आनंद कम होगा। परंतु स्वामी दयानन्द जी पूर्वाचार्योंके आधार पर बारबार यह लिख चुके हैं कि मुक्तजीव ईश्वर के सदृश होकर परम आनंद भोगता है। उसके आनंद में कोई बाधा नहीं रहती है। और न उसको कोई रुकावट रहती है जिससे उनको दुःख प्राप्त हो। फिर मुक्तजीव को सर्वज्ञ न मानना वास्तवमें उसको दुःखी वर्णन करता है।

प्यारे पाठको! सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० से जो लेख हमने स्वामीजी का लिखा है उसके पढ़नेसे आपको स्वामी जी की चालाकी भी मालूम हो गई होगी। यद्यपि पूर्वाचार्योंके कथनानुसार स्वामी जी को लाचार यह लिखना पड़ा कि ज्ञान ही मुक्तजीवोंका आनन्द है और उन को पूर्ण ज्ञान होकर पूर्ण आनन्द अर्थात् परम आनंद प्राप्त होता है, परन्तु स्वामीजी तो संसार सुखको सुख मानते हैं- प्रेम और प्रीतिके ही मोह जालमें फंसे हुवे हैं और नाना प्रकार के ही रस भोगने को आनन्द मानते हैं इस कारण इस लिखने से न रुके कि वह आपसमें मुक्त जीवोंसे मिलते हुये फिरते रहते हैं, अर्थात् मोहजाल में वह भी फंसे रहते हैं और मुक्त जीवोंके पूर्ण ज्ञान का विरोध करनेके वास्ते चुपके से यह भी लिख दिया कि यद्यपि उनको पूर्ण ज्ञान सर्व पदार्थों का होता है, परन्तु एक साथ नहीं होता है, वरण क्रम से ही होता है, और सन्निहित पदार्थोंका ही ज्ञान होता है अर्थात् जो पदार्थ उनके सन्मुख होता है उसही का ज्ञान होता है। मानो स्वामी जी ने मुक्त जीवके ज्ञानकी सीमा बांधदी और सर्वज्ञ से कमती ज्ञान सिद्ध करदिया।

सन्नहित अर्थात् सन्निकर्ष ज्ञान चार्वाक नास्तिकों ने माना है। जो वस्तु इन्द्रियोंसे भिड़जावे उस ही का ज्ञान होना दूरवर्ती पदार्थका ज्ञान न होना सन्निकर्ष ज्ञान कहलाता है। वेचारे स्वामी दयानन्द को मुक्त जीव की सर्वज्ञता नष्ट करने के वास्ते नास्तिक का भी सिद्धान्त ग्रहण करना पड़ा परन्तु कार्य कुछ न बना, क्योंकि संसारी जीव जो विकार सहित होनेके कारण इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करता है वह भी सूर्य्य और ध्रुवतारा आदिक बहुत दूरवर्ती पदार्थोंको देखसक्ता है। इस कारण विकार रहित ज्ञान स्वरूप मुक्तजीवमें सन्निकर्ष ज्ञान को स्थापन करना तो अत्यन्त ही मूर्खता है। स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थ प्रकाश में कहते हैं कि संसारी जीवों पर अज्ञान का आवरण होता है। यह आवरण दूर होकर ही जीवका ज्ञान बढ़ता है और जब यह आवरण

पूर्ण नष्ट होजाता है तब जीवको मुक्ति होजाती है। परन्तु मुक्तजीवमें स्वामी जी सन्निकर्ष ज्ञान स्थापित करते हैं अर्थात् संसारी जीवोंसे भी कमती ज्ञान सिद्ध करना चाहते हैं।

शायद कोई हमारा आर्य्यभाई यह कहने लगे कि सन्निहित पदार्थोंका अभिप्राय यह है कि जो पदार्थ मुक्तजीव के सन्मुख होते हैं उनहींको देख सक्ता है। परन्तु ऐसा कहना भी विना बिचारे है क्योंकि शरीर धारी जीवों में तो उनकी इन्द्री एक स्थान पर स्थित होती है जैसा कि आंख मुखके ऊपर होता है। संसारी जीव आंखके द्वारा देखता है। इस कारण आंख के सन्मुख जो पदार्थ है उसही को देख सक्ता है आंखके पीछे की वस्तुको नहीं देख सक्ता है। परन्तु मुक्त जीवके शरीर नहीं होता है उसका ज्ञान किसी इन्द्री के आश्रित नहीं होता है, वरण वह स्वयम् ही ज्ञान स्वरूप है अर्थात् सब ओरसे देखता है। उसके वास्ते सर्वही पदार्थ सन्मुख हैं। इस हेतु किसी प्रकार भी सन्निहित पदार्थ के ज्ञानका नियम कायम नहीं रह सक्ता है।

यदि स्वामी दयानन्दजीके कथनानुसार मुक्त जीवको पदार्थोंका ज्ञानक्रम रूप होता है अर्थात् सर्व पदार्थोंका एक समयमें ज्ञान नहीं होता है वरण जिस प्रकार संसारी जीव को संसार दशा को देखने के वास्ते एक नगर से दूसरे नगरमें और एक देशसे दूसरे देश में डोलते हुये फिरना पड़ता है। इस ही प्रकार मुक्त जीव को डोलना पड़ता है तो मुक्त जीवको परमानंदकी प्राप्ति कदाचित् भी नहीं कही जा सक्ती है। क्योंकि जितने स्थान वा जितनी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना बाकी है उतनी ही मुक्तजीवके आनंद में कमी है। यह बात स्वामीजी कह ही चुके हैं कि पूर्ण ज्ञानका होना ही मुक्त जीव का आनंद है। इसके अतिरिक्त जब मुक्त जीवको भी यह अभिलाषा रही कि मुझको अमुक २ स्थानों वा अमुक २ पदार्थों को जानना है तो उस को परम आनंद हो ही नहीं सक्ता है वरण दुःख है। जहां अभिलाषा है वहां दुःख अवश्य है। इस कारण यह ही मानना पड़ेगा कि मुक्तजीवमें पूर्ण ज्ञान होता है अर्थात् वह सर्वज्ञ ही होता है।

आर्य्यमत लीला।

[कर्म फल और ईश्वर]

(२१)

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि यदि परमेश्वर मुक्ति जीवों को, जो राग द्वेष रहित इंद्रियों के विषय भोगों से बिहीन स्वच्छ निर्मल रूप अपने आत्म स्वरूप में ठहरे हुये हैं और अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न परमानन्द भोग रहे हैं, मुक्ति स्थान से ढकेलकर संसार रूपी दुःखसागरमें न गिरावे और सदा के लिये मुक्ति ही में रहने दे तो

परमेश्वर अन्यायी ठहरता है। पाठक गण आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि अन्यायी तो मुक्ति से हटाकर फिर संसार में फंसाने से होता है न कि इस के विपरीत। परन्तु स्वामी जी तो मुक्ति को जेलखाना और संसार को मजे उड़ाने का स्थान स्थापित करना चाहते हैं इस कारण वह तो ईश्वरको अन्यायी ही बतावेंगे यदि वह मुक्त जीवों को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने दे।

स्वामी जी का कथन है कि ईश्वर ही जीवों के बुरे भले कर्मों का फल देता है और मुक्ति प्राप्त करना भी कर्मों का फल है। कर्म अनित्य हैं इस कारण उनका फल नित्य नहीं हो सकता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो अन्यायी हो जावेगा। परन्तु यह बात हम ने पिछले अंक में भलीभांति सिद्ध करदी है कि मुक्ति कर्मों का फल नहीं है वरण मुक्ति नाम है कर्मों के क्षय हो जाने का-सर्वथा नाश होजाने का और जीवात्मा के स्वच्छ और निर्मल हो जाने का सर्व औपाधिक भाव दूर हो जाने का। आज इस लेख में हम यह समझाना चाहते हैं कि मुक्तजीव को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने देने में ईश्वर अन्यायी नहीं होता है वरण बिना कारण मुक्ति से ढकेल कर संसार के पापों में फंसाने में अन्यायी होता है। और इस से भी अधिक हम यह समझाना चाहते हैं कि जीव को कर्मों का फल देने ही में ईश्वर अन्यायी होता है बरण इस से भी अधिक अर्थात् यह कि यदि ईश्वर कर्मों का फल देवे तो वह पापी हो जाता है और ईश्वर ही नहीं रहता है।

हमारे आर्य भाई जिन्हों ने अभी तक कर्म और कर्मफलका स्वरूप नहीं समझा है, इस बात से आश्चर्य करेंगे, परन्तु उनको हम प्रेम के साथ समझाते हैं और यकीन दिलाते हैं कि वह विचार पूर्वक आद्योपान्त इस लेख को पढ़ लेवें तब उनका यह सब आश्चर्य दूर हो जावेगा। इस बात के आश्चर्य करने में उनका कुछ दोष नहीं है क्योंकि स्वयम् स्वामी दयानन्दजी, जिन की शिक्षा पर वह निर्भर हैं, कर्म और कर्म फल के स्वरूप को नहीं समझते थे तब बिचारे आर्य भाई तो क्या समझ सकते हैं? परन्तु उन को उचित है कि वह इस प्रकार के सिद्धांतों की खोज करते रहें और सीखने का अभ्यास बनाये रक्खें-तब वह सब कुछ सीख सकते हैं, क्योंकि पूर्वाचार्यों और पूर्व विद्वानों की कृपा से हिन्दुस्तान में अभी तक आत्मिक तत्वके विषय में सर्व प्रकारके सिद्धांत हेतु और विचार सहित मिल सकते हैं।

प्यारे आर्य भाइयो! आप संसार में देखते हैं कि संसारी मनुष्य राग द्वेष में फंसे हुवे अनेक पाप किया क-

रते हैं और आप यह भी जानते हैं कि रागद्वेष जीव का निज स्वभाव नहीं है वरण यह उस का औपाधिक भाव है जो पूर्व कर्मों के वश उन को प्राप्त हुआ है। देखिये स्वयम् स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १२९-१३० पर लिखते हैं:-

"इंद्रियाणां निरोधेन,
राग द्वेष क्षयेणच।
अहिंसया च भूताना
ममृतत्वाय कल्पते॥
यदा भावेन भवति,
सर्वे भावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति,
प्रेत्य चेहच शाश्वतम्,,

इन श्लोकों का अर्थ स्वामी जी ने पृष्ठ १३१ पर इस प्रकार लिखा है-

(१) "इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग द्वेषको छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे॥

(२) जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह कांक्षा रहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है तभी इस देह में और मरण पाके निरंतर सुख को प्राप्त होता है"-

इस से स्पष्ट विदित हो गया कि राग द्वेष आदिक भावों को स्वामी जी भी औपाधिक भाव बताते हैं इस ही कारण तो मुक्ति के साधन के वास्ते संन्यासी को इन के छोड़ने का उपदेश देते हैं।

इस ही प्रकार स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ४८ पर लिखते हैं-

"इन्द्रियाणां विचरताम्,
विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठ-
द्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥,,

अर्थ-जसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन,
दोषमृच्छत्यसंशयम्।
सन्नियम्यतु तान्येव,
ततः सिद्धिं नियच्छति॥

अर्थ-जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निश्चित बड़े बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करताहै तभी सिद्धिको प्राप्त होताहै

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च,
नियमाश्च तपांसि च।
न विप्र दुष्ट भावस्य,
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

अर्थ-जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को नहीं प्राप्त होते।

प्यारे आर्य्य भाइयो! अब विचारणीय यह है कि राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय भोग की वांच्छा आदिक बीमारी जिनके कारण यह जीव

सर्व प्रकार के पाप करता है और जिन को दूर करने से इस को मुक्ति सुख मिलता है इस जीवात्मा में किस कारण लग जाती हैं? इस का उत्तर सब भाई शीघ्रताके साथ यह ही देवेंगे कि जीव के पूर्व उपार्जित कर्म ही इसके कारण हैं परन्तु उन पूर्वोपार्जित कर्मों का फल देता कौन है? इसका उत्तर देना जरा कठिन बात है क्योंकि यदि ईश्वर फल देता है तो ईश्वर अवश्य अन्यायी, पापी और पापकी प्रवृत्ति कराने वाला तथा पापकी सहायता करने वाला ठहरेगा।

विचारवान् पुरुषो! यदि किसी अपराधी को जिसने एक मनुष्य का सिर काट कर उसको प्राणांत करदिया है, राजा यह दंड देवे कि इसके सारे शरीरसे ऐसे हथियार बांध दो जिस से यह अपराधी मनुष्यों को मार ने के सिवाय और कोई काम ही न करे, वा किसी चोर को यह दंड देवे कि कूंवल (नक़ब) लगाने के हथियार और ताला तोड़नेके औज़ार इसके हाथोंसे बांध दिये जावें जिससे यह चोरी ही का काम किया करे, वा किसी अपराधी को जिसने परस्त्री सेवन किया हो यह दंड देवे कि उस को ऐसी औषधी खिला दो जिस से यह सदा कामातुर रहा करे और इस अपराधी को ऐसे नगर में छोड़ दो जहां व्यभिचारणी स्त्रियें बहुत मिल सक्ती हैं, और साथ ही इसके यह ढंढोरा भी पिटवाता है कि जो कोई मनुष्य हिंसा वा चोरी, जारी करेगा उसको बहुत बहुत दंड दिया जावेगा-तो क्या वह राजा स्वयम् अपराधी नहीं है? क्या वह स्वयम् अपराध की प्रेरणा और सहायता नहीं करता है? राजा और न्याय कर्ता वा दंड दाता का तो यह काम है और दंड इस ही हेतु दिया जाता है कि ऐसा दंड दिया जावे जिस से अपराधी फिर वह अपराध न करे। यह कदाचित् भी दंड नहीं हो सक्ता है कि अपराधी को ऐसा बना दिया जावे कि वह पहले से भी अधिक अपराध करने लगे।

प्यारे भाइयो! ईश्वर जीवों के वास्ते क्या कर्तव्य चाहता है? क्या वह यह चाहता है कि जीव सदैव राग द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसे रहें? वा यह चाहता है कि इनसे विरक्त होकर परमानंद रूप मुक्तिको प्राप्त हों? यदि वह राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसने को पाप समझता है तो राग, द्वेष करने वालों और इन्द्रियों के विषयमें फंसने वाले जीवों को उनके इस पाप का यह दंड क्यों देता है कि वह आगामी को भी राग द्वेष के वश में रहें और इन्द्रियों के विषय में फंसे। जिसने हिंसा का पाप किया उस को तो यह दंड दिया कि भील, डाकू आदिक म्लेच्छोंमें उस का जन्म हो जिससे वह सदा ही मनुष्यों को मार कर उनका धन हरण

किया करे, वा सिंह आदिक क्रूर जीव बना दिया जिससे उस का उदर पोषण भी जीव हिंसासे ही हुआ करे और हिंसा के सिवाय और कुछ काम ही न हो। जो कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो उस को यह दंड दिया कि वह रंडी के घर पैदा की जावै जहां सदा व्यभिचार ही होता रहै। इस ही प्रकार अन्य अपराधों के भी दंड दिये। अथवा यदि हिंसा के अपराध का दंड हिंसक बनाना और व्यभिचार के अपराध का दंड व्यभिचारी बनाना न भी हो तौ भी हिंसक, व्यभिचारी डाकू आदिक जितने पापी जीव दृष्ट पड़ते हैं वह सब किसी न किसी अपराधके ही दंड में ऐसे बनाये गये हैं जो आगामीको अधिक पाप करैं। देखिये स्वामी दयानन्द जी भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २५२-पर लिखते हैं:-

"मन से किये दुष्ट कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है-"

"जब रजो गुणका उदय सत्व और तमो गुण का अन्तर्भाव होता है तब आरंभ में रुचिता धैर्य्य त्याग असत् कर्मों का ग्रहण निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजो गुण प्रधानता से मुझ में वर्त्त रहा है"

"जब तमो गुणका उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यंत लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वरमें श्रद्धाका न रहना, भिन्न २ अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव और किन्हीं व्यसनों में फंसना होवे तब तमो गुणका लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है-

इस ही प्रकार सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ २५४ पर स्वामी जी लिखते हैं-

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ, निंदित कर्म करने हारे सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं। जो उत्तम तमो गुणी हैं वे चारण, सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुख के लिये अपनी प्रशंसा करने हारे राक्षस जो हिंसक, पिशाच, अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहार कर्ता और मलिन रहते हैं वह उत्तम तमोगुण के कर्मका फल है जो मद्य पीने में आसक्त हो ऐसे जन्म नीच रजो गुण का फल है-

प्यारे भाइयो! अब आपने जान लिया कि पाप कर्म का फल यह मिलता है कि आगामी को भी पाप में ही आसक्त रहे। परन्तु क्या ईश्वर ऐसा फल दे सकता है? कदाचित् नहीं वरण ऐसी दशा में ईश्वर को कर्मों के फलका देने वाला बताना परमेश्वर को कलंकित करना और उसको अपराधी ठहराना है क्योंकि जो कोई अपराध की सहायता वा प्रेरणा करता है वह भी अवश्य अपराधी ही होता है क्या कोई पिता ऐसा हो सकता है जो अपने बालक को जो पाठशाला में क

मती जाता है और पढ़ने में ध्यान कम लगाता है वरण अधिकतर खेल कूद में रहता है पाठशाला से उठा-लेवे, सर्व पुस्तकें उससे छीन लेवे और गेंद बल्ला ताश, चौपड़ आदिक खेल की वस्तु उसको ले देवै ? वा किसीका बालक व्यभिचारी मालूम पड़े तो उस को ले जाकर रंडियों के चकले में छोड़ देवे ? वा बालक और कोई अपराध करे तो उस को उसका पिता उस ही अपराधका अधिक अभ्यास करावे और अपराध करने का अधिक सुभीता और अधिक प्रेरणा देवै ? और साथ साथ यह भी कहता रहै कि जो कोई विद्या पढ़ेगा उसको मैं दुख दूंगा और जो अपराध करेगा उसको दंड दूंगा । क्या वह पिता महामूर्ख और अपनी संतान का पूरा शत्रु नहीं है ? अवश्य है-इस कारण प्यारे भाइयो ! जीव के कर्म का फल देने वाला कदाचित् भी परमेश्वर नहीं हो सकता है-परमेश्वर क्या वरण कोई भी चेतन अर्थात् कुछ भी ज्ञान रखने वाला ऐसा उलटा कृत्य नहीं कर सकता है ।

इसके अतिरिक्त यदि कोई चेतन शक्ति जीवोंके कर्म का फल दिया करती तो अवश्य जीव को यह सुझा दिया करती—अच्छी तरह बता दिया करती कि अमुक कर्म का तुम को यह फल दिया जाता है जिससे वह सावधान हो जावे और आगामी को उस पर असर पड़े जीव को कुछ भी नहीं मालूम होता है कि मुझ को मेरे किस किस कर्म का क्या क्या फल मिल रहा है ? इस से स्पष्ट विदित होता है कि कर्मों का फल देने वाली कोई चेतन शक्ति नहीं है वरण वस्तु स्वभाव ही कर्म फल का कारण है अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावानुसार काम करती है उस ही से जगत् के सब फल प्राप्त होते हैं । जो पुरुष मदिरा पीवेगा तो मदिरा और जीव वो शरीर का स्वभाव मिल कर यह फल अवश्य प्राप्त होगा कि पीने वाले को नशा होगा, उसके ज्ञान गुण में फरक आवेगा और अनेक कुचेष्टा उत्पन्न होगीं । मदिरा को इससे कुछ मतलब नहीं है कि किसी का भला होता है वा बुरा किसी को दंड मिलता है वा लाभ वह तो अपने स्वभाव के अनुसार अपना काम करैगी ।

बहुत से मनुष्य ऐसे मूर्ख और जिह्वा इंद्री के ऐसे वशीभूत होते हैं कि वह बीमारीमें परहेज नहीं करते और उन वस्तुओंको खा लेते हैं जिन को वैद्य बताता है कि इनके खाने से बीमारी अधिक बढ़ जावेगी ऐसी वस्तुओं के खाने का फल यह होता है कि बीमारी अधिक बढ़ जाती है और रोगी बहुत तकलीफ उठाता है । बहुत से लोग यह कह दिया करते हैं कि कोई मनुष्य अपना नुकसान नहीं चाहता है और कोई अपराधी अपनी राजी से कैदखाने में जाना नहीं चाहता है परन्तु नित्य यह ही देखने में आता है कि बहुत से रोगी कुपथ्य से-

बन करके अपने हाथों अपना रोग बढ़ा लेते हैं और अत्यंत दुःख उठाते हैं। बहुत से बालकों को देखा है कि वह खेल कूद में रहते हैं और विद्याध्ययन में ध्यान नहीं देते। उनके माता पिता और मित्र बहुतेरा समझाते हैं कि इस समय का खेल कूद तुम को बहुत दुःखदाई होगा परन्तु वह खेल कूद में रह कर स्वयम् विद्या विहीन रहते हैं और मूर्ख रहकर अपनी जिन्दगी में बहुत दुःख उठाते हैं। बहुत से पिताओं को समझाया जाता है कि तुम छोटी अवस्था में अपनी संतान का विवाह मत करो परन्तु वे नहीं मानते और जब संतान उन की वीर्य हीन निर्बल नपुंसक हो जाती है तो माथा पीटते हैं और हकीमों से पुष्टी के नुसखे लिखवाते फिरते हैं। बहुत से धनवालों को यह समझाया जाता है कि वह बेटा बेटीके विवाह में अधिक द्रव्य न लुटावें परन्तु वह नहीं मानते और बहुत कुछ व्यर्थ व्यय करके अपने हाथों दरिद्री हो जाते हैं। इत्यादिक संसार के सारे कामों में कोई फल देने वाला नहीं आता है वरण जैसा काम कोई करता है उसका जो फल है उसको अवश्य भोगना पड़ता है और यदि वह काम खोटा है और उसका फल दुःख है तो दुःख भी उसको अवश्य भोगना पड़ता है। वास्तव में वह दुःख उसने आप ही अपने वास्ते पैदा किया। जगत् में नित्य यह ही देखने में आता है कि अनेक प्रकार के उलटे काम करके नुक़सान उठाते हैं अर्थात् अपने हाथों अपने आप को मुसीबत में डालते हैं।

संसारी जीवों पर अभ्यास और संस्कार का बहुत असर पड़ता है। यदि वह विद्यार्थी जो पढ़ने पर बहुत ध्यान रखता है, एक महीने के वास्ते भी पाठशाला से अलग कर दिया जावे और उसको एक महीने तक खेल कूद ही में लगाया जावे तो महीने के पश्चात् पाठशाला में जाकर कई दिन तक उस की रुचि पढ़ने में नहीं लगेगी वरण खेल कूद का ही ध्यान आता रहेगा। इस ही प्रकार यदि भले आदमी को भी दुष्ट मनुष्य की संगति में अधिक रहना पड़े तो कुछ कुछ दुष्टता उस भले मनुष्य में भी आ जावेगी। इन सब कामों का फल देने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं आवेगी वरण यह उस के कर्म ही उस को बुरे फल के दायक होंगे।

कारण से कार्य की सिद्धि स्वयम् स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं। तब जीव का कर्म जो कारण है उस से कार्य अर्थात् कर्म फल अवश्य प्राप्त होगा इस में चाहे जीव को दुःख हो वा सुख। हमको आश्चर्य है कि स्वामीजी स्वयम् जीव और प्रकृति अर्थात् जड़ पदार्थों को नित्य मानते हैं और जब इनको नित्य मानते हैं तो इनके स्वभावको भी नित्य बताते हैं। तो क्या यह सर्व

अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य नहीं करती हैं और उन से फल नहीं प्राप्त होते हैं ? बहुत से मनुष्यों की बाबत आप ने सुना होगा कि उन्हों ने अपनी मूर्खता से मिट्टी के तेल का कनस्तर आग से ऐसी असावधानी से खोला कि आग कनस्तर के अंदर पहुंच गई और आग भड़क कर सारा मकान जल भुनकर खाक हो गया। इस महान् दुःख के कार्य में क्या उस की मूर्खता ही कारण नहीं हुई और क्या यह कहना चाहिये कि मूर्खताका काम तो मनुष्य ने किया परंतु उस का फल अर्थात् सारे मकान का जला देना यह काम ईश्वरने आकर किया।

प्यारे भाइयो! यह जीव जब मान माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों के वश होकर मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक करता है और जब यह इन्द्रियों के विषय में लगता है तो इस को इन मान माया आदिक का संस्कार होजाता है और इन कामों का इस को अभ्यास पड़ जाता है अर्थात् मान, माया, लोभ क्रोध आदिक उपाधियां इस में पैदा हो जाती हैं और उसका जीवात्मा मलिन हो जाता है। यह ही उसके कर्मों का फल है। इत्यादिक और भी जो जो कर्म यह जीव समय समय पर करता रहता है उसका असर इसके चित्त पर पड़ता रहता है और जीवात्मा अशुद्ध होता रहता है। और ज्यों ज्यों यह जीव धर्म सेवन करता है त्यों त्यों मान माया, लोभ, क्रोध आदिक की कालिमा उस से दूर होती रहती है क्योंकि धर्म उसही मार्ग का नाम है जो मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों को दूर करने वा दबाने वा कम करने का हेतु हो। और जब इन कषायों को बिलकुल रोककर यह जीव आत्मस्थ होता है अर्थात् अपनी ही आत्मा में स्थिर हो जाता है तब आगामी कर्म पैदा होने बंद हो जाते हैं और पिछले कर्म भी आहिस्ते २ क्षय हो जाते हैं तब ही यह जीव स्वच्छ और शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी इस ही प्रकार लिखा है:-

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५५

"इस प्रकार सत्व, रज और तमो गुण युक्त वेग से जिस २ प्रकारका कर्म जीव करता है उस २ को उसी २ प्रकार फल प्राप्त होता है। जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फंसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् ॥२॥

ये योग शास्त्र पातंजलि के सूत्र हैं। मनुष्य रजो गुण तमो गुण युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्व गुण युक्त कर्मों से भी मनको रोक शुद्ध सत्व गुण युक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर

एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्म युक्त कर्म इन के अग्र भागमें चित्तका ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥१॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है—

प्यारे भाइयो! इस सर्व लेख का अभिप्राय यह है कि स्वामी दयानन्द का यह कहना कि मुक्ति भी कर्मों का फल है बिल्कुल असत्य है, वरण मुक्ति तो सर्व कर्मों के क्षय से प्राप्त होती है अर्थात् जीव का सर्व प्रकार की उपाधी से रहित होकर स्वतत्व रूप निर्मल और स्वच्छ हो जाना ही मुक्तिहै। इस कारण स्वामी जी का यह कहना कि ईश्वर यदि मुक्ति जीव को मुक्ति से निकाल कर और उसका परमानन्द छुड़ाकर फिर उसको संसार में न डाले और दुःख और पापों में न फंसावे तो ईश्वर अन्यायी ठहरता है बिलकुल ही अनाड़ी पन की बात है—

असल यह है कि स्वामीदयानन्दजी ने कर्म और कर्म फलके गूढ़ सिद्धान्त को समझा ही नहीं। कर्म फिलोसफी Philosophy का वर्णन जितना जैन ग्रंथों में है उतना और किसी भी मत के ग्रन्थों में नहीं है। स्वामी जी ने संसारी जीव के तीन गुण सत्व, रज और तम वर्णन किए हैं। परन्तु जैन शास्त्रों में इस विषय को इतना विस्तार के साथ लिखा है कि इसके १४ गुणस्थान वर्णन किये हैं और प्रत्येक गुणस्थान के बहुत २ भेद किये हैं और कर्म प्रकृतियों के १४८ भेद किये हैं। प्रत्येक गुणस्थान में किसी २ कर्म की सत्ता, उदय और बंध होता है इसको वर्णन किया है-और कर्मों के उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण आदिक का वर्णन बहुत विस्तारके साथ किया है। इस कारण सत्य की खोज करने वालों को उचित है कि वह पक्षपात छोड़कर जैन ग्रन्थोंका स्वाध्याय करें जिससे उनकी अविद्या दूर होकर कल्याण का मार्ग प्राप्त होवे।

आर्यमतलीला।

(ईश्वरकी भक्ति और उपासना)

(२२)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १९२ पर यह प्रश्न उठाते हैं कि "ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं?" फिर आपही इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देते हैं—

" नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजावें क्योंकि क्षमा की बात सुनही कर उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय जैसे राजा अपराधको क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक अधिक बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा करदेगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने

आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा-लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करनेसे न डरकर पाप करनेमें प्रवृत्त होजायंगे। इसलिये सब कर्मोंका फल यथावत् देना ही ईश्वरका काम है क्षमा करना नहीं।"

प्यारे आर्य भाइयो! स्वामीजीके उपर्युक्त लेखसे स्पष्ट विदित है कि जो कोई ईश्वरकी भक्ति करता है वा जो कोई भक्ति स्तुति नहीं करता है वा जो कोई ईश्वरको मानता है वा नहीं मानता है, ईश्वर इन सब जीवोंको समान दृष्टिसे देखता है। भक्ति स्तुति करने वालेके ऊपर रिआयत नहीं करता अर्थात् उनके अपराधोंको छोड़ नहीं देता और उनके पापोंको मुआफ़ नहीं करता और उनके पुण्य कर्मोंसे अधिक कुछ लाभ नहीं पहुंचाता बरण जिसने जिसके पुण्य पाप हैं उनही के अनुसार फल देता है और भक्ति स्तुति न करने वालों पर क्रोध नहीं करता और उनपर नाराज होकर ऐसा नहीं करता है कि उनके पुण्य फलको न देवे वा न्यून पापका अधिक दुख देदेवे बरण उनके पाप पुण्य कर्मोंके अनुसार ही उनको फल देता है।

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८२ पर प्रश्न करते हैं "क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वालेका पाप छुड़ादेगा?" इसके उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं। नहीं" इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि ईश्वर स्तुति और प्रार्थना आदिक करनेसे वा न करनेसे राजी वा नाराज नहीं होता है॥

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं "ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसको स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बड़ा मेरीही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब होजायं इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरेके नाशके लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनोंका नाश कर दे? जो कोई कहै कि जिसका प्रेम अधिक हो उसकी प्रार्थना सफल होजावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रुका भी न्यून नाश होना चाहिये—ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये, मकानमें झाडू लगाइये वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये—"

स्वामी दयानन्दजीके उपरोक्त लेखसे तो खुल्लम खुल्ला यह ज्ञात होगया कि धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, स्त्री, कुटुम्ब, महल, मकान, जमीन, जायदाद, प्रतिष्ठा, और शरीर कुशल आदिक संसारी कार्योंके वास्ते ईश्वरसे प्रार्थना करना और इसके अर्थ उसकी भक्ति स्तुति करना बिलकुल व्यर्थ है। ईश्वर खुशामदी नहीं है जो किसीकी भक्ति स्तुति वा प्रार्थनासे खुश होकर उसका

काम करदेवे—वा खुशामदसे अहकायेमें आजावे--वा जो उनकी स्तुति आदिक न करे उससे रुष्ट होकर उसका काम बिगाड़ देवे। परन्तु ईश्वर तो बिलकुल निष्पक्ष रहता है उस पर निन्दा वा स्तुतिका कुछ भी असर नहीं होता है बरण पूर्ण न्याय रूप होकर जीव के भले बुरे कर्मोंका बुरा भला फल बराबर देता रहता है—

इसही की पुष्टिमें स्वामीजी पृष्ठ १८६ पर इसके आगे लिखते हैं:—

"इस प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वरकी पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा--"

इसहीकी पुष्टीमें स्वामीजी पृष्ठ १८७ पर लिखते हैं:—

"जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा बिलम्बसे गुड़ मिल ही जाता है"

अभिप्राय इस का यह है कि ईश्वर की स्तुति करने और ईश्वरके उत्तम गुणोंकी प्रशंसा करनेसे कुछ नहीं होता है बरण जीवको उचित है कि पुरुषार्थ करके ईश्वरके समान अपने गुण, कर्म और स्वभाव उत्तम बनावे और पुण्य उपार्जन करे जिस से उस के मनोरथ सिद्ध हों—

फिर सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८३ पर स्वामीजी यह प्रश्न करते हैं "तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना?" इसके उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं "उनके करनेका फल अन्य ही है" "स्तुतिसे ईश्वरमें प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभावका सुधारना, प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना-"

आशय स्वामी दयानन्दजीके लेखका यह है कि ईश्वर सबसे उत्तम गुणोंका धारी है इस कारण यदि ईश्वरके गुणोंका चिन्तवन और उसके उत्तम गुणोंकी स्तुति कीजावेगी तो स्तुति करने वाले जीवके भी उत्तम गुण हो जावेंगे क्योंकि जीव जैसी संगति करता है, जैसी बातें देखता है, जिन बातोंसे प्रेम करता है, जिन बातोंकी चर्चा वा चिन्तवन करता है और जैसी शिक्षा पाता है वैसे ही उसजीवके गुण, कर्म, स्वभाव होजाते हैं। जो मनुष्य बदमाशोंके पास बैठेगा वा बदमाशोंकी बातें सुनेगा वा बदमाशीकी बातोंमें प्रेम लगावेगा वा बदमाशोंकी प्रशंसा करेगा उसके चित्तमें बदमाशीका अंश अवश्य समाजावेगा और जो कोई धर्मात्माओंकी संगति करेगा, उनसे प्रेम रक्खेगा, उनकी प्रशंसा करेगा तो धर्म का अंश उसके हृदयमें अवश्य आवेगा यह ही कारण है कि जुवारीके पास बैठने वा रण्डियोंके मोहल्ले तकमें जाना वा अश्लील पुस्तकोंका पढ़ना और अश्लील मूर्त्तियों तकका देखना बुरा समझा जाता है॥

इस ही आशयकी पुष्टीमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं:--

" इससे अपने गुण कर्म स्वभाव भी करना जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है--"

अभिप्राय इस लेखका बहुत ही स्पष्ट है । स्वामी दयानन्द जी समझाते हैं कि जो कोई परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना इस कारण करता है कि परमेश्वर मुझ से प्रसन्न होगा तो उसका ऐसा करना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि परमेश्वर अपनी स्तुति प्रार्थना करने वालेसे राजी वा न करने वालेसे नाराज़ नहीं होता है वरण परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करनेका हेतु तो यह ही है कि परमेश्वरके गुणानुवादसे परमेश्वर जैसे गुण हममें होजावें इस कारण स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करने वालेको उचित है कि अपने गुण कर्म स्वभावोंको परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावों के अनकूल करनेकी कोशिश करता रहे और सदा इस बात का विचार रक्खे कि मैं परमेश्वरके जिन गुण कर्म स्वभावोंकी स्तुति करता हूं वैसे ही गुण कर्म स्वभाव मेरे भी होजावें--तबही उसकी स्तुति प्रार्थना फलदायक होगी और यहही ईश्वरकी स्तुति प्रार्थनाका अभिप्राय है ॥

इसही की पुष्टिमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८४--८५ पर प्रार्थना और स्तुतिका कुछ नमूना लिखते हैं कि किस प्रकार प्रार्थना और स्तुति करनी चाहिये? जो प्रार्थना करने वालेमें उत्तम गुणोंके देने वाली है उसका कुछ सारांश हम नीचे लिखते हैं

" आप प्रकाश स्वरूप हैं कृपाकर मुझमें भी प्रकाश स्थापन कीजिये ।" " आप निन्दा स्तुति और स्वअपराधियोंका सहन करने वाले हैं कृपासे मुझको वैसा ही कीजिये ।" " मेरा मन शुद्धगुणोंकी इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै । हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्य वर्तमान, व्यवहारोंको जानते जो नाश रहित जीवात्माको परमात्माके साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है उस योगरूप यज्ञको जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मनयोग विज्ञान युक्त होकर विद्यादि क्लेशोंसे पृथक् रहे ।" " हे सर्व नियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन रस्सीसे घोड़ोंके समान अथवा घोड़ोंके नियन्ता सारथीके तुल्य मनुष्योंको अत्यन्त इधर उधर डुलाता है जो हृदयमें प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है वह सब इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोकके धर्मपथमें सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये ।" हे सुखके दाता ! स्वप्रकाशरूप सबको

जानने हारे परमात्मन्! आप हमको श्रेष्ठमार्गसे संपूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिलपापाचरणरूपमार्ग है उससे पृथक् कीजिये । इसीलिये हमलोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुतसी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।"

स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८७ पर उपासनाका अर्थ इस प्रकार लिखते हैं--

" उपासना शब्दका अर्थ समीपस्थ होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये-"

स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८८ पर इस प्रकार लिखते हैं-

"परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं । इसलिये परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। "

प्यारे पाठको ! स्वामी दयानन्दजी के कथनानुसार ईश्वर सर्वव्यापक है अर्थात् सब जगह मौजूद है यहां तक कि सब जीवोंके अन्दर व्याप्त है चाहे वह पापी है या धर्मात्मा। इस कारण उपासना करनेमें ईश्वरके समीपस्थ होनेके यह अर्थ तो होही नहीं सकते हैं कि ईश्वरके पास जाबैठना क्योंकि समीप तो वह सदाही रहता है वरण समीपस्थ होनेके यहही अर्थ हो सकते हैं कि ईश्वरके गुणोंके ध्यानमें इतना मग्न होजाना कि मानो आपने सद्गुणों सहित ईश्वर समीप ही विराजमान है।

प्यारे आर्य भाइयो ! वह अति उत्तम गुण क्या हैं जिनकी प्राप्तिके वास्ते और वह निकृष्ट अवगुण क्या हैं जिनके दूर करनेके वास्ते ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासनाकी आवश्यकता है ? इसके उत्तरमें आपको विचारना चाहिये कि जीव स्वभावसे तो रागद्वेष रहित स्वच्छ और निर्मल है इस ही कारण स्वामीजीने कहा है कि उपासनासे जीव के गुण कर्म स्वभाव ईश्वर के सदृश पवित्र हो जाते हैं परन्तु कर्मों के वश होकर राग द्वेष आदिक उपाधियां इस जीवके साथ लगी हुई हैं इस ही कारण संसारी जीव मोहान्धकारमें फंसकर मान माया लोभ क्रोध आदिक कषायोंके वशीभूत हुआ पांच इन्द्रियोंके विषय भोगोंका गुलाम बना हुआ अनेक दुःख उठाता और भटकता फिरता रहता है और संसार में कभी इसको चैन नहीं मिलती है जब यह सब उपाधियां इसकी दूर होजाती हैं तब मुक्ति पाकर परमानन्द भोगता है और शान्तिके साथ सच्चा सुख उठाता है इस हेतु इन उपाधियोंका दूर करना और स्वच्छ और निर्मल होजाना ही इसका परम कर्त-

ध्य है और रागद्वेष रहित होकर निर्मल होजाना ही इसका उत्तम गुण है जिसके वास्ते जीवको सब प्रकार के साधन करना चाहिये और वही मार्ग धर्म कहलाता है जो जीवको इन उपाधियों और दुःखसे रहित कर देवे परन्तु चिरकालका जमा हुआ मैल बहुत मुश्किल से दूर हुआ करता है। जन्म जन्मान्तर में बराबर रागद्वेषमें फंसे रहनेके कारण यह सब उपाधि एक प्रकार का संसारी जीव का स्वभावसा होगया है और इनसे विरक्त होना इसको बुरा लगता है। संसारी जीवकी दशा बिलकुल ऐसे ही है जैसे अफीमी की होजाती है जिसको चिरकाल तक अफीम खाते २ अफीम खानेका अभ्यास होगया हो यद्यपि वह जानता हो कि अफीम खानेसे मुझको बहुत नुकसान होता है शरीर कृश होगया है, इन्द्रियां शिथिल होगई हैं, पुरुषार्थ जाता रहा है और अनेक रोग व्याप गये हैं परन्तु तो भी अफीम का छोड़ना उस के वास्ते कष्टसाध्य ही होता है वह प्रथम कुछ कम खानी शुरू करता है और अफीम खाना छोड़ने का साहस और उत्साह अपने में पैदा होनेके वास्ते ऐसे पुरुषोंसे मिलता है जिन्होंने अफीम खानी छोड़ दी हो उन से पूछता है कि उन्होंने किस २ प्रकार अफीम छोड़नेका अभ्यास किया, मनमें उनकी प्रशंसा करता है जिन्होंने अफीम छोड़ी और अपनी निन्दा करता है कि तू इस अफीमके ही वशमें हो रहा है और यह जरासा साहस भी तुझ से नहीं होसका कि अफीम खाना छोड़ देवे, इस प्रकार बहुत कुछ श्रम करके अफीम खाने का अभ्यास छोड़ता है।

प्यारे भाइयो! बिलकुल ऐसी ही दशा संसारी जीव की है—एक दम रागद्वेषको छोड़ अपनी आत्मामें आत्मस्थ होजाना और स्वच्छ निर्मल होकर ज्ञान स्वरूप परमानन्द भोगना जीवके वास्ते दुःसाध्य है इस कारण वह पहले राग, द्वेष रूप को कम करता है अर्थात् यद्यपि रागद्वेष कार्य करता है परन्तु अन्याय और अधर्मके कामोंको त्यागता है।

इस विषय में स्वामी दयानन्द जीने सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८७ पर इस प्रकार लिखा है:—

जो उपासनाका आरम्भ करनो चाहे उसके लिये यह ही आरम्भ है कि वह किसीसे वैर न रक्खे, सर्वदा सब से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले चोरी न करे सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लंपट न हो, निरभिमानी हो अभिमान कभी न करे यह पांच प्रकार के यम मिलके उपासना योग का प्रथम अंग है=,,

इसके आगे स्वामी दयानन्दजी दूसरा अंग इस प्रकार लिखते हैं अर्थात जब सब यमोंके साधनका अभ्यास हो जावे तब इस प्रकार अगाड़ी बढ़े।

"राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहै धर्मसे पुरुषार्थ करनेसे लाभमें न प्रसन्नता और हानिमें

न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखोंका सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्मका नहीं सर्वदा सत्य शास्त्रोंकोपढ़े पढ़ावे सत्पुरुषोंका संगकरे,,

तात्पर्य्य इस सब लेखका यह है कि रागद्वेषको त्यागकर जीवके शुद्ध निर्मल होने के जो जो उपाय हैं वह ही धर्म कहलाते हैं और संसारके सर्व प्रकारके मोहको परित्याग कर अपनी आत्मामें स्थित होनाही परम साधन है—यह संसारी जीव धर्म मार्गमें लग कर जितना २ इससे होसक्ता है राग द्वेषको कम करता जाता है अर्थात् धर्म सेवन करता है और अपनेमें रागद्वेष के अधिक छोड़ने और संसारके मोहजालसे निकलने की अधिक उत्तेजना और अधिक साहस होनेके वास्ते धर्म शास्त्रोंको पढ़ता है, धर्मात्माओं की शिक्षा और उपदेश सुनता है धर्मात्माओंकी संगति करता है उन जीवों के जीवन चरित्रोंको पढ़ता और सुनता है जिन्होंने रागद्वेषको त्यागकर मुक्ति प्राप्त करली है—मुक्ति जीवोंसे प्रेम रखता है और उन का ध्यान करता है।

संसारके मोह जालसे छूटनेकी उस ही प्रकारकी उत्तेजना और साहस पैदा करने हीके वास्ते स्वामी दयानन्दजी ने परमेश्वरके उत्पन्न गुणोंकी भक्ति अर्थात् प्रार्थना स्तुति और उपासनाको कार्य कारी और आवश्यक बताया है परन्तु प्यारे भाइयो! यदि आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि जिस प्रकार स्वामीजी परमेश्वरका स्वरूप वर्णन करते हैं उस प्रकारके परमेश्वरकी प्रार्थना, स्तुति और उपासनासे वह कार्य सिद्ध नहीं होसक्ता है जो आप सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि जीवको साध्य है रागद्वेषका छूटना संसारका ममत्व दूर होना संसारके बखेड़ेमें से अलग निकल कर एक चित्त शांतिस्वरूप होना और परमेश्वरके गुण स्वामी दयानन्दभी बताते हैं इसके विपरीति वह कहते हैं कि ईश्वर जगत् का कर्त्ता है—कभी सृष्टि बनाता है कभी प्रलय करता है, संसारमें जो कुछ होरहा है वह उस ही का किया हो रहा है—समय समय पर संसारमें जो कुछ अलटन पलटन होती है वह सब वह कररहा है—सर्व संसारी जीवोंको जो कुछ सुख दुःख पहुंच रहा है, जो मरना जीना रोग नीरोग, धन, निर्धन आदिक व्यवस्था समय समय पर जीवोंकी पलट रही है वह ईश्वर ही उनके कर्मानुसार पलटा रहा है-तब प्यारे भाइयों! विचार कीजिये कि यदि ईश्वर अर्थात् उसके गुणों का विचार किया जावेगा उस के गुणों की स्तुति की जावेगी वा उस के गुणों से ध्यान बांधा जावेगा तो राग पैदा होगा या वैराग्य, संसार के बखेड़ों से प्रीति होगी वा अप्रीति प्यारे आर्य भाइयो! ऐसे ईश्वर की भक्ति से तो संसार ही

सूझेगा और फायदा कुछ भी न होगा। देखिये स्वामी दयानन्द जी ने जो नमूना प्रार्थना का सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८४ पर दिया है और जिस का कुछ सारांश हम ने पूर्व इस लेख में दिया है और जिस से स्वामी जी ने इस बात के सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस प्रकार प्रार्थना से ईश्वर के उत्तम गुण प्रार्थना करने वाले में पैदा होते हैं उसही नमूनेमें स्वामी जी को इस प्रकार लिखना पड़ा है—

"आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुझको भी वैसा ही कीजिये।

हे रुद्र ! (दुष्टों को पापके दुःख स्वरूप फल को देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जिन, गर्भ, पिता, और प्रिय, बंधुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिस से हम आप के दंडनीय न हों।

देखिये प्यारे आर्य भाइयो ! आगई राग, द्वेष की झलक या नहीं ? साधन तो है राग, द्वेष छोड़ने का और उलटा राग,द्वेष पिघलने लगा-प्यारे भाइयो ! कर्ता ईश्वर की भक्ति करनेसे कदाचित् भी संसार से विरक्तता नहीं हो सकती है बरण संसार के ही बखेड़ों का ध्यान आवेगा और संसारके बखेड़े ही ईश्वर के गुण होंगे जिनका ध्यान किया जावे-देखिये हमारे इस ऐतराज का भय स्वयम् स्वामी दयानन्द जी के हृदयमें व्याप चुका है इस ही कारण उन को ईश्वर में सगुण और निर्गुण दो प्रकार के भाव स्थापित करने पड़े हैं-और वह सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं—

"जिस २ राग द्वेषादि गुण से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

स्वामी दयानन्द जी फिर इस ही बात को पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं—

अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक् मान के परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है वह विधि निषेध मुख होने से सगुण निर्गुण प्रार्थना।

फिर निर्गुण प्रार्थनाको मुख्य बताने के वास्ते स्वामी जी पृष्ठ १८८ पर लिखते हैं—

वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गंध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थिति हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है।

प्यारे आर्य भाइयो ! जरा विचार कीजिये कि यह कैसा भ्रम जाल है ? ईश्वर को कर्ता मानकर उस को संसार के अनेक बखेड़ों में फंसाना और जब जीव को अपने कल्याण के अर्थ राग द्वेष छोड़ने की आवश्यक्ता हो और इस कार्य में अपना उत्साह और अ-

ध्यान बढ़ाने के लिये राग. द्वेष रहित के ध्यान और मनन की आवश्यकता जीव को हो तो उनही कर्त्ता ईश्वरको निर्गुण बताकर उसकी उपासना का उपदेश देना-जो ईश्वर सदा संसार के धंधों में लगा रहता है क्या उन का निर्गुण रूप ध्यान जीव को हो सक्ता है ? और यदि अधिक आत्मीक शक्ति रखने वाले तपस्वी पुरुष ऐसा ध्यान बांध भी सकते हैं तो उन को ईश्वर का सहारा लेने ही की क्या आवश्यकता है वह अपनी आत्मा में ही एकाग्र ध्यान क्यों न करेंगे ?

प्यारे आर्य भाइयो ! संसारी जीवों को तो यह ही उचित है कि वह अपनी आत्मिक शक्ति बढ़ाने, संसार के मोह जाल से घृणा पैदा करने और रागद्वेष को त्यागने का उत्साह और साहस अपने में उत्पन्न करने और इन्द्रियों और क्रोध मान माया लोभादिक कषायों को वश में करने के वास्ते उन शुद्ध जीवों की भक्ति, स्तुति और उपासना करें उन के गुणों का चिन्तवन करें, उनकी जीवनी को विचारें जिन्होंने सर्वथा रागद्वेषको त्याग कर और संसार के मोह जालको बिल्कुल छोड़कर और सर्व प्रकार की उपाधियों और मैल को दूर करके स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त करली है वा उन सच्चे संन्यासियोंकी जो बिलकुल इस ही साधन में लगे हुए हैं।

प्यारे भाइयो ! यह जैन धर्म का सिद्धांत है जो मुक्त जीवों और साधुओं की ही भक्ति, स्तुति और उपासना का उपदेश देता है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि स्वामी दयानंद जी ने इस ही भय से कि यह सत्य सिद्धांत ग्रहण करके संसार के जीव कल्याण के मार्ग में न लग जावें मुक्ति दशा की निन्दा की है और मुक्ति जीवों को यह कलंक लगाया है कि वह इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर आनन्द भोगते हुवे फिरते रहते हैं और उनको फिर संसार में आने की आवश्यकता बताकर मुक्ति को जेलखाना बताया है।

आर्यमत लीला।

(सांख्यदर्शन और मुक्ति)

(२२)

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने अपनेको षटदर्शनका मानने वाला बताया है और उनही के कथनानुसार हमारे आर्य भाई भी अपनेको षटदर्शनोंका मानने वाला बताते हैं परन्तु स्वामी दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाशमें जो सिद्धान्त स्थापित किया है वह दर्शन सिद्धान्तोंके बिल्कुल विरुद्ध स्वामी जी का मन घड़न्त ही सिद्धान्त है--शोक है कि हमारे आर्य भाई केवल सत्यार्थप्रकाशको पढ़कर यह समझने लगते हैं कि सत्यार्थप्रकाशमें जो लिखा है वह

सत्य ही है और श्रुति, स्मृति और दर्शन शास्त्रोंके अनुकूल ही है परन्तु यदि वह कुछ भी परीक्षा करें तो उनको सहजही में सत्यार्थप्रकाशका मायाजाल मालूम हो सकता है और उनका भ्रमजाल दूर होकर सच्चाईका मार्ग मिल सकता है--

यद्यपि जैनशास्त्र धर्मरत्नोंका भण्डार है और उनके द्वारा सहजही में सत्यमार्ग दिखाया जा सकता है और युक्ति प्रमाण द्वारा अज्ञान अन्धकार दूर किया जा सकता है परन्तु संसारके जीवोंको पक्ष और द्वेषने ऐसा घेरा है कि वह दूसरेकी बातका सुनना भी पसन्द नहीं करते हैं इस कारण अपने आर्य भाइयोंके उपकारार्थ हम उनहींके मान्य ग्रन्थोंसे ही उनका मिथ्यात्व दूर करनेकी कोशिश कररहे हैं जिससे उनको सत्यार्थप्रकाशकाबाग्जाल मालूम होकर पक्षपात और द्वेषका आवरण दूर हो और सत्य और कल्याण मार्गके खोज की चाह उत्पन्न हो--

प्यारे आर्य भाइयो! आप षट्दर्शनों को बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उनको आर्य्यावर्तके अमूल्य रत्न समझते हैं परन्तु शोक है कि आप उनको पढ़ते नहीं हो, उन रत्नोंके प्रकाशसे अपने हृदयको प्रकाशित नहीं करते हो। देखिये षट् दर्शनोंमें सांख्यदर्शनके कुछ विषय हम आपको दिखाते हैं जिससे आपको मालूम होजावेगा कि सत्यार्थप्रकाशमें जो सिद्धान्त स्वामी जी ने वर्णन किये हैं वह प्राचीन शास्त्रों के विरुद्ध और धर्म श्रद्धासे भ्रष्ट करके जीवको संसारमें रुलाने वाले हैं--

मुक्तिसे लौटकर फिर संसारमें आने के ही उलटे सिद्धान्तकी बाबत खोज लगाइये कि प्राचीन आचार्य इस विषयमें क्या कहते हैं--

सांख्यदर्शनमें महर्षि कपिलाचार्यने मुक्तिसे लौटने के विषयमें इस प्रकार लिखा है--

"तत्र प्राप्त विवेकस्यानावृत्ति श्रुतिः"- सांख्य। अ० १ ॥ सू० ८३ ॥

सांख्यमें अविवेकसे बन्धन और विवेक प्राप्त होनेको मुक्ति वर्णन किया है--इस सूत्रमें कपिलाचार्यजी लिखते हैं कि, श्रुति अर्थात् वेदोंमें विवेक प्राप्त अर्थात् मुक्त जीवको फिर लौटना नहीं लिखा है--

प्यारे आर्य भाइयो! सांख्यशास्त्रके बनाने वाले प्राचीन कपिलाचार्य यह बताते हैं कि वेदोंमें मुक्तिसे लौटना नहीं लिखा परन्तु स्वामी दयानन्दजी वेदों और दर्शन शास्त्रोंको भी उल्लंघन कर यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति दशासे उकताकर संसारके अनेक विषयभोग भोगनेके वास्ते जीवका मुक्तिसे लौटना आवश्यक है और इस ही कारण मुक्तिको कारागारकी उपमा देते हैं--क्या ऐसी दशामें स्वामीजीका वचन माननीय हो सकता है? ॥

प्यारे आर्य भाइयो! यदि स्वामीजी के बचनों पर आपको इतनी श्रद्धा है

कि उनके मुक्तावलेमें वेद बचन भी प्रमाण नहीं तो साफ़ साफ़ तौर पर वेदों और दर्शन शास्त्रोंसे इनकार करके केवल सत्यार्थप्रकाश पर ही भरोसा करखो--परन्तु सत्यार्थप्रकाशमें तो स्वामी जीने अपने कपोल कल्पित सिद्धान्त लिखकर यह भी लिखदिया है कि वेद और षट्दर्शनोंको ही मानना चाहिये और यह भी कहदिया है कि स्वामीजीके कथित सिद्धान्त वेद और दर्शनोंके अनुकूल ही हैं--इस कारण हमारे भोले आर्य भाई भ्रमजालमें फंस गये हैं--

देखिये सांख्यदर्शनमें मुक्तिसे फिर लौटनेके विषयमें कैसी स्पष्टताके साथ विरोध किया है--

" न मुक्तस्य पुनर्बन्ध योगोऽप्यनावृत्ति श्रुतेः" ॥ सां० अ० ६ सू० १७

अर्थ--मुक्त पुरुषका फिर दोबारा बंध नहीं हो सकता है क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि मुक्तिसे जीव फिर नहीं लौटता है--

" अपुरुषार्थत्व मन्यथा " ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे फिर बंधनमें आ सकता हो तो पुरुषार्थ अर्थात् मुक्तिका साधन ही व्यर्थ होजावे--

" अविशेषापत्तिरुभयोः" ॥ सां० अ० ६ सू० १९

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे भी लौटकर फिर बंधनमें फंसता है तो मुक्ति और बन्धनमें फरक ही क्या रहा ?

" मुक्तिरन्तराय ध्वस्तेर्न परः ॥ "
सां० अ० ६ सू० २०

अर्थ--मुक्ति कोई पर पदार्थ नहीं है जिसकी प्राप्तिसे मुक्ति होती हो और प्राप्त होनेके पश्चात् किसी समय किसी कारणसे उस पदार्थके छिनजानेसे मुक्ति न रहती हो बरण मुक्ति तो अन्तराय के नाश होनेका नाम है अर्थात् जीवकी निज शक्ति अर्थात् केवल ज्ञान पर जो अनादि कालसे अविवेकका पटल पड़ाहुआ था उस पटल के दूर होने और निज शक्तिके प्रकट होनेका नाम मुक्ति है इस हेतु जब जीव को निज शक्ति प्राप्त होगई और उसका ज्ञान प्रकाश होगया तब कौन उसको बन्धनमें फंसा सकता है ? भावार्थ फिर बंध नहीं हो सकता है--

प्यारे आर्य भाइयो ! सांख्यदर्शन में इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध करने पर भी कि, मुक्तिसे फिर जीव लौट नहीं सकता है, स्वामीजीने मुक्तिसे जीवके लौटने का सिद्धान्त सत्यार्थप्रकाशमें स्थापित किया है और साथ ही इसके यह भी लिखदिया है कि दर्शनशास्त्र सच्चे और मानने योग्य हैं--ऐसी पूर्वापर विरोध से भरीहुई सत्यार्थप्रकाश नामकी पुस्तक क्या भोले मनुष्योंको भ्रमजालमें फंसाने वाली नहीं है ? और क्या वह विद्वान् पुरुषोंके मानने योग्य हो सकती है ? कदाचित् नहीं--

सत्यार्थप्रकाश में तो स्वामी जी को मुक्तिसे जीवोंके लौटनेका इतना पक्ष

हुआ है कि यदि किसी वाक्य में न लौटनेका उनको गन्ध भी आया है तो वहीं अपने वाग्जालमे उसको छिपाने की कोशिश की है--देखो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २५५ पर स्वामीजीको सांख्यदर्शनके प्रथमसूत्र को लिखनेकी जरूरत पड़ी है जो इस प्रकार है--

" अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्ति-रत्यन्तपुरुषार्थः „

अर्थात् पुरुषका अत्यन्त पुरुषार्थ यह है कि तीन प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति करदे परन्तु दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति तो तबही कहला सकती है जब कि फिर दुःख किसी प्रकार भी प्राप्त न हो इस कारण इस सूत्रमें स्वामीजीको दुःखोंकी निवृत्तिके साथ अत्यन्तका शब्द खटका और इसको अपने सिद्धान्तके विरुद्ध समझा, स्वामी जीने तो अन्यथा अर्थ करनेका सहज मार्ग पकड़ ही रक्खा था--इस कारण यहां भी इस सूत्रका अर्थ करते हुए अत्यन्त का अर्थ न किया और केवल यह ही लिखदिया है कि त्रिविध दुःखको छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है-

प्यारे भाइयो ! क्या स्वामी जी की ऐसी चालाकी इसही कारण नहीं है कि वह जानते थे कि संस्कृतका प्रचार न रहनेके कारण संस्कृत पढ़ने वाले नहीं रहे हैं इस हेतु हिन्दी भाषामें हम जिस प्रकार लिख देंगे उसही प्रकार भोले मनुष्य बहकायेमें आजावेंगे--यह आकस्मिक--इत्तफाककी बात नहीं है कि स्वामीजीसे अत्यंत शब्दका अर्थ लिखना रह गया वरण स्वामीजीने जानबूझकर इस प्रकारकी सावधानी रक्खी है-देखो सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४९ पर स्वामीजीने मुण्डकउपनिषद्का एक श्लोक इस प्रकार दिया है:-.

"भिद्यते हृदयग्रंथि-
श्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्तेचास्य कर्माणि,
तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे="

इस श्लोकमें कर्मोंके क्षय होनेका वर्णन है परन्तु स्वामी दयानन्दजी को कर्मके क्षय होनेका कथन कब सुहाता था क्योंकि वह तो कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं मानते वरण मुक्तिको भी कर्मोंका फल स्थापित करते हैं और मुक्ति अवस्थामेंभी कर्म कायम करना चाहते हैं इस कारण उन्होंने इस श्लोकके अर्थ में दुष्ट कर्मोंका ही क्षय होना लिखा जिसका भावार्थ यह हो कि श्रेष्ठ अर्थात पुण्य कर्म क्षय नहीं होते हैं-

प्यारे आर्य भाइयो ! यदि आप संस्कृत जानते हैं तो स्वयम् नहीं तो किसी संस्कृत जानने वाले से पूछिये कि इस श्लोकमें सर्वकर्मोंका क्षय लिखा है वा केवल दुष्ट कर्मोंका ? और क्या श्लोकमें कोई भी ऐसा शब्द है जिससे दुष्ट कर्मके अर्थ लगाये जासकें ? और कृपा कर यह भी पूछिये कि कहीं इस श्लोकमें परमेश्वरमें वास करनेका भी कथन है कि नहीं जो स्वामीजीने अर्थों में लिखदिया है ? ।

यह बहुत छोटी बातें हैं परन्तु स्वामीजीने बड़ा बड़ा ढेठ किया है और भोले मनुष्योंकी आंखोंमें धूल डालनेकी कोशिश की है-देखिये उन्होंने सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३९ पर उपनिषद्का एक वचन इस प्रकार लिखा है:-

नच पुनरावर्त्तते नच पुनरावर्त्ततइति"

जिसका अभिप्राय यह है कि मुक्ति से जीवका फिर वापिस आना नहीं होता है-

इसही प्रकार एक सूत्र शारीरकसूत्र का इस प्रकार दिया है:-

"अनावृत्तिःशब्दादनावृत्तिः शब्दात्"

जिसका भी यह ही अभिप्राय है कि मुक्तिसे जीव नहीं लौटता है-इस प्रकार उपनिषद् और शारीरक के वचन लिखते हुये सरस्वती दयानन्द जी प्रश्न उठाते हैं " इत्यादि वचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिस से निवृत् होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता" इस प्रकार प्रश्न उठाकर स्वामीजी उत्तर देते हैं " यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बातका निषेध किया है--"

पाठकगण ! स्वामीजीके इस उत्तर को पढ़कर क्या संदेह उत्पन्न नहीं होता कि महाराज कपिल जीतो सांख्य शास्त्रमें ऐसा लिखते हैं कि वेदोंसे यह ही सिद्ध है कि मुक्तिसे फिर लौटना नहीं होता और दयानन्द सरस्वतीजी लिखते हैं कि वेदोंमें लौटना लिखा है इन दोनोंमें से किसकी बात सत्य है? क्या सांख्य दर्शनके कर्ता कपिलाचार्य्य से भी अधिक दयानन्दजीको सरस्वती का वर मिलगया कि कपिलाचार्य्यसे भी अधिक वेदके ज्ञाता होगये और उपनिषदोंके बनाने वालोंको भी वह बात न सूझी जो सरस्वती जीको सूझी ? यहां तक कि व्यासजी महाराज ने भी अपने शारीरक सूत्रमें गलती खाई और इन सबकी गलतियोंको दुरुस्त करनेवाले कि वेदोंमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है एक स्वामी जीही हुये ? और तिसपर भी तुर्रा यह कि स्वामीजी सांख्य दर्शनको प्रमाणिक मानते हैं।

पाठकगण ! मुक्तिसे जीवका न लौटना केवल एकही उपनिषद् में नहीं लिखा है बरण सब उपनिषद् आदि ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है यथा:-

"एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते" (प्रश्नोपनिषदि)

अर्थ-उसको प्राप्त होकर फिर नहीं लौटते—

तेषु ब्रह्म लोकेषु परा परावतो वसन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः

(बृहदारण्यक)

अर्थ उस ब्रह्म लोक में अनंतकाल वास करते हैं उनके लिये पुनरावृत्ति नहीं इस ही प्रकार सर्व प्राचीन ग्रन्थों में जिन को स्वामी जीने माना है और जिनके आधार पर वेदोंका भाष्य करना सरस्वती जी ने लिखा है यहही लिखा मिलता है कि मुक्ति सदा के वास्ते है वहां से लौटकर फिर संसार

में फंसना नहीं होता। परन्तु दयानन्दजी के कथन से इस विषय में सर्व ग्रन्थ झूठे और किसी ने आज तक वेदों को नहीं समझा। सृष्टि की आदिसे आज तक सिवाय दयानन्द जी के और कोई वेदों को समझ भी नहीं सकता था क्योंकि साक्षात् सरस्वती तो दयानन्द जी ही हुये हैं इन्हों ने ही यह बात निकाली कि मुक्ति से लौट कर जीव को फिर संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

प्यारे पाठको! यह तो सब कुछ सही, सब झूठे और अविद्वान् ही सही परन्तु जरा यह तो जांच करलो कि मुक्ति से लौटना वेदों में कहां लिखा है और किस प्रकार लिखा है?

स्वामी जी ने वेदों में से मुक्ति से जीव के लौटने के दो मंत्र ढूंढ़कर निकाले हैं और उनको सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २३९ पर इस प्रकार लिखा है—

कस्यनूनं कतमस्यामृतानांमनामहे चारुदेवस्यनाम। कोनोमह्याअदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च" ॥१॥

"अग्नेर्नूनंप्रथमस्यामृतानामनामहे चारुदेवस्यनाम। सनो मह्याअदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयंमातरञ्च ॥ २ ॥ ऋ० मं० १ ॥ सू० २४ मं० १ ॥२॥

प्रिय पाठको! इन दोनों श्रुतियों का अर्थ इस प्रकार है—

हम लोग देवतों के मध्य में किस प्रकार के देवताके शोभन नामको उच्चारण करें-कौनसा देवता हम को फिर भी बड़ी पृथिवी के लिये दे जिस से हम पिता और माता को देखें ॥१॥

हम लोग देवतों के मध्य में प्रथम अग्नि देवता के सुंदर नाम को उच्चारण करें वह हम को बड़ी पृथिवी के लिये दे जिससे हम पिता और माता को देखें ॥२॥

पाठकगणो! इन दोनों ऋचाओं में न मुक्ति का कथन है न मुक्तिसे लौट आने का परन्तु इनका अर्थ स्वामीजी नेसत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार दिया है।

(प्रश्न) हम लोग किस का नाम पवित्र जानें? कौन नाश रहित पदार्थों के मध्यमें वर्त्तमान देव सदा प्रकाश रूप है हम को मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसारमें जन्म देता और माता पिताका दर्शन कराताहै॥१॥

(उत्तर) हम इस स्वप्रकाश रूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनंद भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥२॥

सरस्वती जीके इन अर्थों को पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है कि स्वामी जी ने किस प्रकार यह अर्थ लगा दिये? इसकी खोजमें स्वामी जीके वेद भाष्य को देखने पर मालूम हुआ कि सारेही अर्थ मन घढ़न्त लगाये हैं हमको ज्यादा खोज इस बात की थी कि "हम

को मुक्तिका सुख भुगाकर" इस प्रकार किन शब्दोंका अर्थ किया गया है। स्वामी जी के वेदभाष्य से मालूम हुआ कि यह अर्थ "नः" शब्द के किये गये हैं और इस प्रकार अर्थ किए हैं—

संस्कृत पदार्थ प्रथममंत्र

(नः) अस्मान्

भाषापदार्थ प्रथममंत्र

(नः) मोक्षको प्राप्त हुएभी हमलोगोंको।

संस्कृतपदार्थ दूसरामंत्र

(नः) अस्मभ्यम्

भाषापदार्थ दूसरा मंत्र

(नः) हमको-

हम को आश्चर्य है कि प्रथममंत्र के भावार्थ में जो "नः" शब्दका अर्थ "मोक्ष को प्राप्त हुए भी हम लोगों को" किया गया है वह किस व्याकरण वा कोश के आधार पर किया गया है? शायद स्वामी जी के पास कोई गुप्त पुस्तक हो वा परमेश्वर ने स्वामी जी के कान में कह दिया हो कि यद्यपि शब्दार्थसे मालूम नहीं होता परन्तु मेरा अभिप्राय ही यह है और इस अभिप्राय को मैं ने आज तक किसी पर नहीं खोला एक तुम पर ही खोलता हूं क्योंकि तुम साक्षात् सरस्वती हो—

प्यारे भाइयो! दयानन्द जी इस एक "नः" शब्द के अपने कल्पित अर्थ के ही आधार पर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होकर भी जीव फिर जन्म लेता है परन्तु स्वामी जी से कोई पूछे कि "नः" के अर्थ हम को वा हमारे लिये तो सब जानते हैं परंतु आप के गुरू ने ऐसी कौनसी अद्भुत अष्टाध्यायी व्याकरण आप को दिया है जिस के आधार पर "नः" शब्द का अर्थ आप ने "मोक्षको प्राप्त हुवे भी हम लोगों" ऐसा करके सारे मंत्र का ही अर्थ बदल दिया और मुक्ति से लौटना वेदों में दिखाकर सर्व पूर्वाचार्यों के वाक्य झूठे कर दिये-

इन मंत्रों (ऋचाओं) का जो अर्थ स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में किया है उस का अभिप्राय तो यह मालूम होता है कि इन मंत्रों के द्वारा ईश्वर ने जगत् के मनुष्यों को यह सिखाया है कि माता पिता के दर्शन इतने आवश्यक हैं कि उन के वास्ते मुक्तिसे लौटकर फिर जन्म लेने की आवश्यकता है। इस ही वास्ते प्रथम मंत्र में उस महान् देवता की खोज की गई है जो जीव का यह भारी उपकार कर कर दे कि लौटकर माता पिता के दर्शन करादे और दूसरे मंत्र में उत्तर दिया गया है कि ऐसा उपकारी महान् देव परमेश्वर ही है परन्तु वेदभाष्य में स्वामी दयानंद जी इस से भी अगाड़ी बढ़े हैं और प्रथममंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है:—

जिससे कि हम लोग पिता और माता और स्त्री पुत्र बन्धु आदि को देखने की इच्छा करें—

और दूसरे मंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है—

जिस से हम लोग फिर पिता और माता और स्त्री पुत्र बंधु आदि को देखते हैं--

अर्थात् वेदभाष्यके अर्थों के अनुसार माता पिता के दर्शनों के कारण नहीं वरण संसार के सर्व प्रकार के मोह के कारण वेद में इन मंत्रों द्वारा ऐसे महान् देवता के तलाश की शिक्षा दी गई है जो मोक्ष से निकाल कर फिर जन्म देवे।

कुछ भी हो हम तो स्वामी दयानंद सरस्वती जी के साहस की प्रशंसा करते हैं हम ने इस लेख में सांख्य दर्शन के अनेक सूत्र लिखकर दिखाया है कि सांख्य दर्शन ने मुक्ति से लौटनेका स्पष्ट खंडन किया है परन्तु स्वामी जी ने उपनिषदों और व्यास जी के शारीरक सूत्र को असत्य सिद्ध करने और मुक्ति से लौटकर संसार में पड़ने की आवश्यकता साबित करने के वास्ते सांख्य का भी एक सूत्र सत्यार्थप्रकाश में दिया है आगामी में हम उस की भी व्याख्या करेंगे और सांख्यदर्शन के शब्द शब्दसे नित्य मुक्ति दिखावेंगे।

आर्यमत लीला।

(सांख्यदर्शन और मुक्ति)

(२४)

सांख्यदर्शन को स्वामी दयानन्दजी ने इतना गौरव दिया है और ऐसा मुख्य माना है कि उपनिषद् और महात्मा व्यास जी के शरीरक सूत्र में मुक्तिसे लौट कर फिर नहीं आने के विषय में जो लेख हैं उनको झूठा करने के सबूतमें सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३९ पर सांख्य का यह सूत्र दिया है:--

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।”

और अर्थ इसका इस प्रकार कियाहै:--“जैसे इस समय बंध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेदबंध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती-”

पाठकगण? सांख्यदर्शन में स्वयम् बहुत जोर के साथ मुक्तिसे लौटने का निषेध किया है जैसा निम्न सूत्रोंसे विदित होता है:—

“न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्ति श्रुतेः ॥ सां० अ० ६ सू० १७

अर्थ—मुक्त पुरुष का फिर दोबारा बंध नहीं हो सक्ता है क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि मुक्तजीव फिर नहीं लौटता है ॥

“अपुरुषार्थत्वमन्यथा” ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ—यदि जीव मुक्तिसे फिर बन्धन में आ सक्ता हो तो पुरुषार्थ अर्थात् मुक्तिका साधन ही व्यर्थ हो जावे--

ऐसी दशा में यह संभव हो नहीं सक्ता कि सांख्यदर्शन में कोई एक सूत्र क्या वरण कोई एक शब्द भी ऐसा हो जिससे मुक्तिसे लौटना प्रकट होता हो-फिर स्वामी दयानन्दजीने उपर्युक्त सूत्र कहांसे लिख मारा? इसकी जांच अवश्य करनी चाहिये--

प्यारे आर्य्य भाइयो! उपर्युक्त सूत्र

सांख्य दर्शनके प्रथम अध्याय का १५९ वां सूत्र हैं जो अद्वैतवादके खंडनमें है- सूत्र १४९ से अद्वैतका खंडन प्रारम्भ किया है यथाः—

"जन्मादि व्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम् ॥ सां० अ० १ ॥ सू० १४९

अर्थ—जन्मआदि की व्यवस्थासे पुरुषोंका वहुत होना सिद्ध होता है अर्थात् पुरुष एक नहीं है वरण अनेक हैं इस प्रकार अद्वैत के विरुद्ध लिखते हुये और उस का खण्डन करते हुये सांख्य इस प्रकार लिखता हैं:-

"वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम्,, ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५७

अर्थ—वामदेव आदि मुक्त हैं यह अद्वैत नहीं है क्योंकि इससे तो द्वैत सिद्ध होता है कि अमुक पुरुष तो मुक्त हो गया और अन्य नहीं हुए। अद्वैत तो तब हो जब कि सर्वजीव मुक्त होकर ब्रह्म में लय हो जावें और सिवाय ब्रह्म के और कुछ भी न रहै। परन्तु-

"अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम्" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५८

अर्थ—अनादिकाल से अब तक सर्व जीव मुक्त होकर अद्वैत सिद्ध हुआ नहीं तो भविष्यत कालमें कैसे होसक्ता है? क्योंकि (अब वह सूत्र लिखते हैं जिसको स्वामी जी ने लिखा है)

"इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५९

अर्थ—वर्त्तमान् काल के समान कभी भी सर्वनाश नहीं होता है। भावार्थ—जैसा वर्त्तमान कालमें संसार विद्यमान है और पृथक २ जीव हैं इस ही प्रकार सर्व काल में भी समझना चाहिये—ऐसा कभी नहीं होता कि संसार का सर्वनाश हो कर सब कुछ ब्रह्ममें लय हो जावे और एक ब्रह्म ही ब्रह्म रह जावे—

आश्चर्य है कि इस सूत्र के अर्थमें सरस्वतीजी ने यह किस शब्द का अर्थ लिख दिया "किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती,,

यदि सांख्यदर्शनको स्वामी जीने आद्योपांत पढ़ा होता और उनके हृदय में यह बात न होती कि अविद्या अंधकार फैला हुआ है, भोले मनुष्य जिस तरह चाहे बहकाये जा सक्ते हैं तो मुक्तिसे लौटने के सबूत में कभी भी वह सांख्यदर्शन का नाम तक न लेते क्योंकि सांख्यदर्शनके तो पद २ और शब्द २ से मुक्ति सदा हीके वास्ते सिद्ध होती है—सांख्य ने बड़ी बड़ी युक्तियोंसे मुक्ति से न लौटना सिद्ध किया है यथाः—

"प्रकारान्तरासम्भवादविवेकएवबंधः॥ सां० अ० ६ ॥ सू० १६

अर्थ—अन्य प्रकार संभव न होनेसे अविवेकही बंध है—अर्थात् बंधका कारण अविवेकही है अन्य कोई भी कारण बंधके वास्ते सम्भव नहीं है।

"नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६८॥

अर्थ—अपेक्षा न होने में भी प्रकृति

के उपकारमें अविवेक निमित्त है अर्थात् यद्यपि जीव और प्रकृति का संबंध नहीं तो भी प्रकृति से जो कार्य होते हैं अर्थात् जीव का बंधन होकर वह अनेक प्रकार के नाच नाचता है उस का निमित्त अविवेकही है—

"इतर इतरवत्तद्दोषात्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६४ ॥

अर्थ-जिसको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वह अज्ञानीके समान अज्ञान दोष से बंधन में रहता है—

"अनादिरविवेको अन्यथा दोषद्वय प्रसक्तेः" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १२

अर्थ--अविवेक अनादि है अन्यथा दो दोष होनेका प्रसंग होने से अर्थात् अविवेक जिसके कारण जीव बंधन में पड़ा हुआ है वह जीवके साथ अनादिकाल से लगा हुआ है—यदि ऐसा न माना जावे तो दो प्रकार के दोष प्राप्त होते हैं--प्रथम यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी कालमें जीव उससे पहिले बंध में नहीं था अर्थात् मुक्त था ऐसा मानने से यह दोष आया कि मुक्त जीव भी बंधन में फंस जाते हैं परन्तु ऐसा होना असम्भव है। दूसरा दोष यह है कि यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी समय जीव में उत्पन्न हुआ तो उसके उत्पन्न होनेका कारण क्या है ?—कर्म आदिक भी जो कारण अविवेक पैदा होनेके वर्णन किये जावें यदि उनका भी कारण ढूंढा जावे तो अविवेक ही होगा इस हेतु अनवस्था दोष हो जावेगा लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि अविवेक जीव के साथ अनादि है—

"न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः" ॥ सां० अ० ६ ॥ सू० ॥ १३

अर्थ—अविवेक आत्माके समान नित्य नहीं है क्योंकि यदि नित्य हो तो उसका नाश नहीं हो सक्ता अर्थात् अविवेक जीव के साथ अनादि है परंतु वह नित्य नहीं है और आत्मा नित्य है इस कारण अविवेक का नाश हो जाता है—

"प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्यध्वान्तवत्" ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रकाश से अंधकार का नाश हो जाता है इसही प्रकार नियमित कारणोंसे अविवेक का भी नाश हो जाता है। अर्थात् विवेक प्रकट हो जाता है।

"विमुक्तबोधान्नसृष्टिः प्रधानस्य लोकवत्" ॥ सां० ॥ ६ सू० ४३ ॥

अर्थ--विमुक्त बोध होने से लोकके तुल्य प्रधान की सृष्टि नहीं होती—अर्थात् जब प्रकृतिको यह मालूम हो गया कि अमुक जीव मुक्त होगया है तो वह प्रकृति उस जीवके वास्ते सृष्टि को नहीं रचती अर्थात् फिर वह जीव बंधनमें नहीं आता।

"नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगोनिमित्ताभावात्" ॥ सां० ॥अ०६॥ सू०४४

अर्थ--यद्यपि प्रकृति अविवेकियोंको बंधनमें फंसाती रहती है परन्तु किसी

प्रकार भी मुक्त जीवको बंधनमें नहीं फंसासक्ती है क्योंकि जिस निमित्तसे प्रकृति जीवोंको बन्धनमें फंसा सक्ती है वह निमित्त ही मुक्तजीवमें नहीं होता है। भावार्थ--जीव अविवेक से बंधनमें पड़ता है वह मुक्तजीवमें रहता ही नहीं फिर मुक्त जीव कैसे बंधनमें पड़ सक्ता है ?

"नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात्,, ॥ सां ॥ अ० ३॥ सू० ६९ ॥

अर्थ--नाचनेवालीके समान चरितार्थ होनेसे प्रवृत्तकी भी निवृत्ति होती है अर्थात् जिस प्रकार नाचने वाली उसही समय तक नाचती है जब तक उसका नाच देखने वाला देखना चाहता है। इसही प्रकार प्रकृति उसही समय तक जीवके साथ काम करके प्रवृत्ति होती है जब तक जीव उसमें रत रहता है अर्थात् उसको अविवेक रहता है और जब जीवको ज्ञान प्राप्त होजाता है और प्रकृतिसे उदासीन होजाता है तब प्रकृति भी उसके अर्थ प्रवृत्ति करना छोड़देती है ॥

" दोषबोधेऽपिनोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत्" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ७०

अर्थ--दोषके ज्ञात होजाने हीसे कुल वधूके समान प्रधान अर्थात् प्रकृतिका पास जाना नहीं होता--अर्थात् जिस प्रकार श्रेष्ठ घरोंकी स्त्री दोष मालूम होने पर पतिको मुंह नहीं दिखाती इसही प्रकार जब जीवको ज्ञान होगया और यह जान गया कि प्रकृति ही में रत होनेके कारण भ्रष्ट होरहा हूं और संसार भ्रमण कर रहा हूं तब फिर दोबारा वह कैसे प्रकृतिसे रत होसक्ता है ? एक बार मुक्त हुआ जीव सदा ही के वास्ते मुक्त रहेगा प्रकृति की तो उसके पास भी फटकनेका हौसला नहीं होगा।

"विविक्तबोधात्सृष्टि निवृत्तिःप्रधानस्य सूदवत्पाके" ॥ सां० ॥ अ०३ ॥ सू०६३ ॥

अर्थ--जीवमें ज्ञान प्राप्त होजाने पर प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी सृष्टि निवृत्ति होजाती है जैसे रसोइया रसोई बन जाने पर अलग होजाता है फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहता है।

महाराज कपिलाचार्य्य ऐसी दशाको मुक्ति ही नहीं मानते हैं जहांसे फिर लौटना हो वहतो मुक्त उसहीको मानते हैं जो सदाके वास्ते हो और मुक्ति के वास्ते पुरुषार्थ करनेका हेतुही उन्होंने यह वर्णन किया है कि उसमें सदा के वास्ते दुःखोंसे निवृत्ति रहती है यथा--

" नदृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् । सां० ॥ अ०१॥ सू० २ ॥

अर्थ--जो पदार्थ जगत्में दिखाई देते हैं उनकी प्राप्ति से दुखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती क्योंकि जगत्में देखा जाता है कि दुःख दूर होकर भी कुछ समयकेपश्चात् फिर दुःख प्राप्त होजाताहै--

"नानुश्रविकादपितत्सिद्धिःसाध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ सां०॥ अ०॥१ सू० ८२ ॥

अर्थ--वेदोक्त कर्मसे भी मुक्ति नहीं होसक्ती क्योंकि यदि उनसे कार्य सिद्धि भी हो अर्थात् स्वर्गादि प्राप्ति भी हो तबभी वहांसे फिर वापिस आना होगा

"नकारणलयात्कृतकृत्यतामग्नवदुत्थानात्" ॥ सां० ॥ अ०३ ॥ सू० ५४

अर्थ--कारणमें लय होने से कृतार्थता नहीं है मग्नके समान फिर उठनेसे अर्थात् अद्वैत वादियोंके अनुसार यदि एक ब्रह्म ही माना जावे और सर्व जीवोंको ब्रह्मकाही स्वरूप कहाजावे और जीवके ब्रह्ममें लय होजानेको मुक्ति माना जावे तो कार्य सिद्ध नहीं होता है क्योंकि कृतकृत्यता तो तब हो जब कि फिर कभी बंधन न होवे परन्तु यदि एक ही ब्रह्म है और उस ही का अंश बंधन में आकर जीव रूप होजाता है जो जीव ब्रह्ममें लय होनेके पश्चात् फिर बंधनमें आसक्ता है अर्थात् डुब्बक डूंही दशा रहेगी--

पाठक ! देखो, सांख्य दर्शनमें महर्षि कपिलाचार्य्यने मुक्तिसे वापिस लौटने के सिद्धांतका कितना जोरके साथ विरोध किया है और स्वामी दयानन्दने उनके एक सूत्रका कितना दुरुपयोग करके भोले मनुष्योंको अपने मायाजालमें फंसानेकी चेष्टा की है।

हम अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे अपने मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन को आद्योपान्त पढ़ें और स्वामी दयानन्दके वाक्योंको ही ईश्वर वाक्य न समझकर कुछ उनकी परीक्षाभी किया करें। अब हम आगामी लेखमें यह सिद्ध करेंगे कि स्वामी दयानन्दने मुक्ति के विषयमें जो २ कपोल कल्पित सिद्धांत सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन किये हैं वे सब उनके मान्य सांख्य दर्शन से खण्डित होते हैं।

॥ आर्यमत लीला ॥

(२५)

पिछले अंक में हमने स्वामी दयानन्द और आर्य्य भाइयोंके परम मान्य सांख्य दर्शन से दिखाया है कि महर्षि कपिलाचार्य्य ने किस जोर के साथ मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धान्त का विरोध किया है और पूरे तौर पर सिद्ध किया है कि मुक्ति से कदाचित् भी जीव वापिस नहीं आसकता है अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि मुक्ति के विषय में जो जो कपोल कल्पित सिद्धान्त दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन किये हैं वह सबही उनके मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन से खंडित होते हैं।

स्वामी जी मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धांत को सिद्ध करने के वास्ते एक अद्भुत सिद्धान्त यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति भी कर्मों का फल है और इस बात को लेकर सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि कर्म अनित्य हैं नित्य नहीं हो सकते और कर्मों का फल ईश्वर देता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो

वह अन्यायी हो जावे इस कारण ई-श्वर अनित्य ही मुक्ति देता है।

यद्यपि यह बात सब जानते हैं कि मुक्ति कर्मों का फल नहीं हो सकती वरण कर्मोंके क्षय होनेका नाम मुक्ति है परन्तु अपने आर्य्य भाइयों को स-मझाने और सत्य मार्ग पर लाने के वास्ते हम उन के परममान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन से ही सरस्वती जी की अविद्या को सिद्ध करते हैं-और उनके माया जाल से अपने भाईयों को ब-चाने की कोशिश करते हैं:-

"न कर्मण उपादानत्वायोगात्" सां० अ० १ सू० ८१

अर्थ-कर्मसे मुक्ति नहीं है क्योंकि कर्म उसका उपादान होने योग्य नहीं है।

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वा विशेषा-त्। सां० अ० १ सू० ८५॥

अर्थ-चाहे कर्म निष्काम हो चाहे सकाम हो परन्तु कर्म से मुक्ति नहीं है क्योंकि दोनों प्रकार के कर्म के सा-धन में समानता है।

आर्य्य धर्म के मुख्य प्रचारक स्वामी दर्शनानन्द ने इस सूत्र की पुष्टिमें यह श्रुति भी लिखी है।

"न कर्मणा न प्रजया न धने-न त्यागे नैकेऽमृतत्वमानशुः"

अर्थात् न तो कर्मसे मुक्ति होती है न प्रजासे न धन से

निजमुक्तस्य बंधध्वंसमात्रं परं न समानत्वम्" सां० अ० १ सू० ८६॥

अर्थ-आत्मा स्वभाव से मुक्त है इस हेतु मुक्ति प्राप्त होना बंध की निवृ-त्ति होना अर्थात् दूर होना है समान होना नहीं है-

भावार्थ--बंध का नाश होकर निज शक्ति का प्रकाट होना मुक्ति है किसी वस्तु का प्राप्त होना वा किसी परशक्ति का उत्पन्न होना मुक्ति नहीं है इस हेतु मुक्ति किसी प्रकार भी कर्मोंका फल नहीं हो सकती है।

"न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनो पदेश विधिः" ॥सां० अ० १ सू० ७

अर्थ-बंध में रहना जीव का स्वभाव नहींहै क्योंकि यदि ऐसा होवे तो मोक्ष साधन का उपदेश ही व्यर्थ ठहरे।

नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टेऽप्यनुप-देशः। सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९

अर्थ--जो अशक्य है (नहीं हो सक-ता) उसका उपदेश नहीं दिया जा-ता क्योंकि उपदेश दिये जाने पर भी न दिये जाने की बराबर है अर्थात् किसी को उसका उपदेश नहीं होता।

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठान ल-क्षणमप्रामाण्यम्,, ॥सां०॥ अ० ॥१॥ सू० ८

अर्थ-स्वाभाविक गुण अविनाशी हो-ते हैं इस कारण श्रुतिमें जो मोक्ष सा-धन का उपदेश है वह अप्रमाण हो जावेगा।

नित्य मुक्तत्वम्-सां ॥अ०१। सू० १६२

अर्थ-स्वाभाव से जीव नित्य मुक्तही है अर्थात् निश्चय नय से वह सदा मु-क्त ही है।

औदासीन्यं चेति ॥सां॥ अ० १ सू १६३

अर्थ--और निश्चय नय से वह सदा उदासीन भी है-

स्वामी दयानन्द जी की जितनी बातें हैं वह सब अद्भुत ही हैं वह सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि, मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् मुक्ति जीव अपनी इच्छा के अनुसार आनन्द भोगता हुआ घूमता फिरता रहता है, मुक्ति जीवों से मेल मुलाकात करता है और जगत् के सर्व पदार्थों का आनन्द लेता फिरता रहता है,-इसके विरुद्ध जैनियों ने जो मुक्तिजीव के एक स्थान में अपनी आत्मा में स्थिर और अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न रहना लिखा है उस का सत्यार्थप्रकाश में मखौल उड़ाया है--

देखिये इस विषयमें स्वामी दयानंद जीके मान्य ग्रन्थ सांख्यदर्शन से क्या सिद्ध होता है--

निर्गुणादिश्रुति विरोधश्चेति। सां० अ० १ सू० ५४ ॥

अर्थ-साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च इत्यादिक श्रुतियोंमें जीव को निर्गुण कहा है यदि कोई क्रिया वा कर्म जीव में माने जावेंगे तो श्रुतिसे विरोध होगा--

निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १० ॥

अर्थ-श्रुति में जीव को असंग वर्णन किया है इस कारण जीव निर्गुण है--

निष्क्रियस्य तदसंभवात् ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ४९

अर्थ-क्रिया रहित को वह असंभव होने से-अर्थात् जीव क्रिया रहित है उस में गति असम्भव है-क्रिया और गति प्रकृतिका धर्म है-गति का वर्णन इस से पूर्व के सूत्र में है।

"न कर्मणाप्य तद्धर्मत्वात्" ॥सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ५२

अर्थ-कर्मसे भी पुरुषका बंधन नहीं है **क्योंकि कर्म जीवका धर्म नहीं** है वरण देहका धर्म है ॥

"उपरागात्कर्तृत्वं चित्सानिध्यात्," ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० १६४

अर्थ-जीव में जो कर्तापना है वह चित्त अर्थात् मन के संसर्ग से उपराग पैदा होने से है—

"असंगोऽयं पुरुष इति," सां अ० १ सू० १५ ॥

अर्थ-पुरुष संग रहित है अर्थात् अपने स्वभाव में स्थित स्वच्छ और निर्मल है।

प्यारे आर्य भाइयो! जब मुक्तजीव के प्रकृति से बना शरीर ही नहीं है वरण मुक्ति दशा में वह असंग निर्मल और स्वच्छ है और क्रिया प्रकृति का धर्म है अर्थात् जो क्रिया संसारी जीव करता है वह सत, रज, तम इन तीन गुणों में से किसी एक गुण के आश्रित करता है और यह तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं मुक्तिदशा में प्रकृति से अलग होकर जीव निर्गुण हो जाता है तब उसके चलना फिरना आदिक काम कैसे बन सकते हैं?

"द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः"

सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६५

अर्थ-दोनों वा एक का उदासीन होना मोक्ष है-अर्थात् जीव और प्रकृति दोनों का वा इन दोनों में से एक का उदासीन हो जाना अर्थात् दोनों का सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष कहलाता है-

पाठक गणो ! जरा मुक्ति के साधन पर ही ध्यान दो कि सांख्य में क्या लिखा है ? इस ही से विदित हो जावैगा कि मुक्तिजीव स्थिर रहते हैं वा अन्य मुक्तिजीवों से मुलाकात करते फिरते रहते हैं--

तत्वाभ्यासान्नेतिनेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ॥ सां० ॥अ० ३ ॥ सू० ७५

अर्थ-यह आत्मा नहीं यह आत्मा नहीं है इस त्याग रूप तत्व अभ्यास से विवेक की सिद्धि है-अर्थात् जीव जिस को अपने से पृथक् समझता जावे उस को त्याग करता जावे इस प्रकार त्याग करते करते सर्व का त्याग हो जावेगा और केवल अपने ही आत्मा का विचार रह जावैगा यह ही विवेक है इस से मुक्ति है। देह मेरा आत्मा नहीं, स्त्री पुत्रादिक जगत् सब जीव मेरे आत्मा से भिन्न हैं और इस ही प्रकार जगत् के सर्व पदार्थ भिन्न हैं इस प्रकार आत्मबोध हो जाता है--

(नोट) परन्तु क्या बोध प्राप्त होने के पश्चात् अर्थात् मुक्ति प्राप्त करके फिर अन्य वस्तु अर्थात् मुक्तिजीवों वा जगत् की अन्य वस्तु की ओर चित्त लगा सकता है ?

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ सां० अ० ६ सू० २५

अर्थ-मनको विषय से रहित करने का नाम ध्यान है-

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ३०

अर्थ-राग के नाश का जो हेतु है वह ध्यान है ॥

वृत्ति निरोधात् तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ३१

वृत्ति के निरोध से ध्यान की सिद्धि होती है।

प्यारे पाठको ! सांख्य ने मुक्ति को प्राप्त होना कृतकृत्य होना सिद्ध किया है अर्थात् जिस के पश्चात् कुछ भी करना बाकी न रहे। परन्तु अफसोस है कि स्वामी दयानन्द जी संसारी जीवों की तरह मुक्त जीवों को भी कामों में फंसाते और आनन्द प्राप्ति की भटक में कल्पित शरीर बनाकर जगत्भर में मुक्ति जीवोंका भ्रमण करना सत्यार्थप्रकाश में वर्णन करते हैं--

विवेकान्निःशेष दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यतानेतरान्नेतरात् ॥ सां०॥अ०३सू०८४

अर्थ-विवेक से समस्त दुःख निवृत्त होने पर कृत कृत्यता है दूसरे से नहीं अर्थात् पूर्ण ज्ञान होने ही से दुःखकी पूरी पूरी निवृत्ति होती है और जब पूर्ण ज्ञान हो गया तब कुछ करना बाकी नहीं रहा अर्थात कृतकृत्य हो जाता है--

अत्यन्त दुःख निवृत्या कृतकृत्यता ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० ५ ॥

अर्थ-दुःख की अत्यंत निवृत्ति से कृत कृत्यता होती है-अर्थात् जीव कृत कृत्य तब ही होता है जब दुःख की बिल्कुल निवृत्ति हो जावे किसी प्रकार का भी दुःख न रहे--

यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ॥ सां० ॥ अ० ६ सू० ६

अर्थ--जीवको जैसा दुःख से द्वेष होता है ऐसी सुखकी अभिलाषा नहींहै।

यद्वातद्वातदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः" ॥सां० अ०६ ॥सू०७०

अर्थ--जिस किसी निमित्तसे हो उस का नाश पुरुषार्थ है-अर्थात जीव और प्रकृति का सम्बंध जो अनादि काल से हो रहा है वह चाहे कर्म निमित्त से हो चाहे अबिबेक से हो वा यह सम्बंध किसी अन्य कारण से हो परन्तु इस सम्बंध का नाश करना ही पुरुषार्थ है क्योंकि इस संबंध ही से दुःख है और इस संबंध के नाश ही से जीव की शक्ति प्रकट होती है--

स्वामीदयानन्द जी तो ऐसी आजादी में आए हैं कि स्वर्ग और नरक से भी इन्कार कर दिया है वरण ऐसी अंगरेजियत में आए हैं कि जगत् में ऊपर नीचे की अवस्था को ही आप नहीं मानते वरण जैनियोंका जो यह सिद्धांत है कि मोक्ष स्थान लोक शिखर पर है इस बात की हंसी इसही हेतु से उड़ाई है कि ऊपर नीचे कोई अवस्था ही नहीं हो सकती है परन्तु सांख्य दर्शन में ऊपर नीचे सब कुछ माना गया है:—

"दैवादिप्रभेदाः" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ४६

अर्थ-सृष्टि वह है जिस में देव आदि भेद हैं अर्थात् देव--नारकी मनुष्य और तिर्यंच-

"ऊर्द्धं सत्व विशाला" ॥ सां ॥ अ० ३ ॥ सू० ४८

अर्थ-सृष्टि के ऊपर के विभाग में सत्वगुण अधिक है-अर्थात् ऊपर के भाग में सतोगुणी जीव रहते हैं भावार्थ ऊपर स्वर्ग है जहां देवरहते हैं।

"तमो विशाला मूलतः" ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ४९

अर्थ-सृष्टि के नीचे के विभाग में तमोगुण अधिक है-अर्थात् नीचे के भाग में तमोगुणी जीव रहते हैं भावार्थ नीचे नरक है जहां नारकी रहते हैं।

मध्ये रजो विशाला ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ५०

अर्थ--सृष्टि के मध्य में रजोगुण अधिक है-भावार्थ मध्य में मनुष्य और तिर्य्यञ्च रहते हैं--

आगे लेख में हम दिखलावेंगे कि सांख्य दर्शन में कर्ता ईश्वर का भली भांति खंडन किया है और मुक्तिजीवों की ही पूजा उपासना और जीवन मुक्त अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् जब तक शरीर रहै उन का ही उपदेश मानने के योग्यहै और किसी का नहीं।

आर्यमतलीला ।

सांख्यदर्शन और ईश्वर

(२६)

प्रिय पाठको ! स्वामी दयानन्दजीने यह प्रकट किया है कि वह षट्दर्शनके मानने वाले हैं और उनके अनुयायी हमारे आर्य भाई भी ऐसा ही मानते हैं-षट्दर्शनोंमें सांख्यदर्शन भी है जो बड़े जोरसे अनेक युक्तियोंके साथ कर्ता ईश्वर का खण्डन करता है और जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है-इस कारण आर्य भाइयोंको भी ऐसा ही मानना उचित है--

प्यारे आर्य भाइयो ! सांख्यशास्त्रको देखिये और स्वामी दयानन्दजीके भ्रम जालसे निकल कर सत्य का ग्रहण कीजिये जिससे कल्याण हो--देखिये हम भी कुछ सारांश सांख्य के हेतुओं का आपको दिखाते हैं--

" नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० २

अर्थ--ईश्वरके अधिष्ठित होनेमें फलकी सिद्धि नहीं है कर्मसे फलकी सिद्धि होनेसे अर्थात् कर्मों ही से स्वाभाविक फल मिलता है यदि ईश्वरको फल देने वाला मानाजावे और कर्मों ही से स्वाभाविक प्राप्ति न मानी जावे तो ठीक नहीं होगा और फलकी प्राप्तिमें बाधा आवेगी -

" न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियत कारणत्वात ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ६

अर्थ--प्रतिनियत कारण होनेसे बिना राग उसकी सिद्धि नहीं--अर्थात् बिना राग के प्रवृत्ति नहीं हो सकती है इस कारण ईश्वरका कुछ भी कार्य मानाजावे तो उसमें राग अवश्य मानना पड़ेगा--

" तद्योगोऽपि न नित्यमुक्तः " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ७ ॥

अर्थ--यदि उसमें राग भी मानलिया जावे तो क्या हर्ज है इसका उत्तर देते हैं कि फिर वह नित्यमुक्त कैसे माना जावेगा ? ईश्वरके मानने वाले उसको नित्यमुक्त मानते हैं उसमें दोष आवेगा-

" प्रधानशक्तियोगाच्चेत् सङ्गापत्तिः " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ८

अर्थ--जिस प्रकार कि जीवके साथ प्रकृतिका संग होकर और राग आदि पैदा होकर संसारके अनेक कार्य होते हैं इस ही प्रकार यदि ईश्वरका सृष्टि कर्त्तापन प्रधान अर्थात् प्रकृति के संग से मानाजावे तो उसमें संगी होने का दोष आता है ।

" सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम् " ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ९

अर्थ--यदि यह मानाजावे कि प्रकृति का संग सत्तामात्र है--जिस प्रकार मणि के पास डांक रखने से मणिमें डांकका रंग दीखने लगता है इस ही प्रकार प्रकृतिकी सत्तासे ही ईश्वर काम करता है प्रकृति उस में मिल नहीं जाती, तो जितने जीव हैं वह सबही ईश्वर हो जावेंगे क्योंकि जितने संसारी जीव हैं उन की व्यवस्था सांख्यने इसही प्रकार मानी है ॥

"प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १०

अर्थ--ईश्वरकी सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं घटता है इस कारण ईश्वर हैही नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण तो ईश्वरके विषय में है ही नहीं क्योंकि ईश्वर नज़र नहीं आता इस कारण अनुमान की बाबत कहते हैं।

"सम्बन्धा भावान्नानुमानम्" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ११

अर्थ--सम्बन्ध के अभाव से अनुमान भी ईश्वरके विषयमें नहीं लगता है-- अर्थात् बिना व्याप्तिके अनुमान नहीं हो सकता है।

साधन का साध्य वस्तु के साथ नित्यसम्बंध को व्याप्ति कहते हैं। जब यह संबंध पहले प्रत्यक्ष देख लिया जाता है तो पीछे से उन सम्बंधित वस्तुओं में से साधन के देखने से साध्य वस्तु जान ली जाती है इस को अनुमान कहते हैं-जैसे कि पहले यह प्रत्यक्ष देखकर कि धुआं जब पैदा होता तब अग्निसे होता है अग्नि और धुएं का सम्बंध अर्थात् व्याप्ति जान-ली जाती है पश्चात् धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान कर लिया जाता है परन्तु ईश्वर का प्रत्यक्ष ही नहीं है इस हेतु उसका किसी से संबंध ही कैसे माना जावे और कैसे व्याप्ति कायम की जावे जिससे अनुमान हो जब सम्बंध ही नहीं तो अनुमान कैसे हो सकता है--

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ सां० ॥ अ० ५ सू० १२

अर्थ-यदि यह कहा जावे कि प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं लगते हैं तो शब्द प्रमाण से ही ईश्वरको मान लेना चाहिये-उसके उत्तर में सांख्य कहता है कि श्रुति अर्थात् उन शास्त्रों में जिन का शब्द प्रमाण हो ईश्वर का वर्णन नहीं है वरण श्रुति में भी सर्व कार्य प्रधान अर्थात प्रकृति के ही बताये गये हैं--

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८९ पर सांख्य के यह तीन सूत्र दिये हैं--

"ईश्वरा सिद्धेः" ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९२

"प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः" सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १०

"सम्बन्धाभावान्नानुमानम्" ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ११

और अर्थ इनका सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १९० पर इस प्रकार सरस्वती जी ने लिखा है-प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥१॥ क्योंकि जब उसको सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥२॥ और व्याप्ति सम्बंध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्द प्रमाण आदि भी नहीं घट सकते इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं होसक्ती।

इसका उत्तर सरस्वती जी इस प्रकार देते हैं।

(उत्तर) यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है और पुरुष से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम पुरुष और शरीर में शयन करने से जीव का भी नाम पुरुष है क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है-

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्संगापत्तिः ॥ सां० ॥ अ० ॥ ५ ॥ सू० ८

सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम् ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ९

श्रुतिरपि प्रधान कार्य्यत्वस्य ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० १२

इनका अर्थ सरस्वती जी ने इस प्रकार किया है।

यदि पुरुष को प्रधान शक्तिका योग हो तो पुरुष में संगापत्ति हो जाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्य रूप में संगत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय इस लिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य्य का योग होना चाहिये सो नहीं है इस लिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहाता है।

अजामेकांलोहित शुक्ल कृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् अ० ४ । मं० ५ ॥

अर्थ इसका स्वामी जी इस प्रकार करते हैं।

जो जन्म रहित सत्व, रज, तमोगुण रूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होनेसे वह अवस्थांतर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है।"

इस प्रकार लिखकर सरस्वतीजी बहुत शेखीमें आकर इस प्रकार लिखते हैं-

"इसलिये जो कोई कपिलाचार्यको अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है कपिलाचार्य नहीं।"

पाठकगण! देखो सरस्वतीजीकी उद्दण्डता! इस प्रकार लिखने वालेको सरस्वतीकी पदवी देना इस कलिकाल ही की महिमा नहीं तो और क्या है? सरस्वतीजीके इस वचनको जो प्रमाण मानते हैं उनसे हम पूछते हैं कि ईश्वर उपादान कारण न सही निमित्त कारण ही सही परन्तु कपिलाचार्यने जो यह सिद्ध किया है कि ईश्वर में कोई प्रमाण नहीं लगता है अर्थात् न वह प्रत्यक्ष है न उसमें अनुमान लगता है और न शब्द प्रमाणमें उसका वर्णन है इस हेतु ईश्वर असिद्ध है इस का उत्तर सरस्वती जी ने क्या दिया है? क्या उपादान कारणके ही सिद्ध करने के वास्ते प्रमाण होते हैं और निमित्त कारणके वास्ते नहीं? सृष्टिके वास्ते

उपादान हो चाहे निमित्त परन्तु आप के कथनानुसार वस्तु तो है और आप उस को अनादि मानते हैं इस कारण सृष्टिका नहीं परन्तु अपना तो उपादान है--वा इस स्थान पर आप यह मानलेंगे कि जो उपादान सृष्टि का है वही परमेश्वरका है? कुछ हो किसी न किसी प्रमाणसे ही सिद्ध होगा तब ही मानाजावेगा अन्यथा कैसे माना जा सकता है--कपिलाचार्य कहते हैं कि वह किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं इस कारण अवस्तु है--और सांख्यदर्शनके अध्याय ५ के सूत्र ८ और ९ के अर्थमें जो सरस्वतीजीने यह शब्द अपने कपोलकल्पित लिखमारे हैं "किन्तु निमित्त कारण है,, यह उक्त सूत्रमें तो किसी शब्दसे निकलते नहीं। यदि सरस्वती जी का कोई चेला बतादे कि अमुक रीतिसे यह अर्थ निकलते हैं तो हम उनके बहुत अनुग्रहीत हों।

इस ही प्रकार उपनिषद् का वाक्य लिखकर उनके अर्थमें जो यह लिखा है "और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूपमें कभी नहीं प्राप्त होता सदा कूटस्थ निर्विकार रहता,, यह कौनसे शब्दोंका अर्थ है? श्रुतिमें तो ऐसा कोई शब्द है नहीं जिसका यह अर्थ कियाजावे, हां यदि सरस्वतीजीको सरस्वतीका यही वर हो कि वह अर्थ करते समय शब्दों से भिन्न भी जो चाहें लिखदिया करें तो इसका कुछ कहना ही नहीं है।

दयानन्दजीको यह लिखनेमें लज्जा आनी चाहिये थी कि सांख्यदर्शनके कर्त्ता कपिलाचार्य ईश्वरवादी थे--देखिये सांख्य कैसी सफाईके साथ ईश्वरसे इन्कार करता है।

"ईश्वरासिद्धेः" ॥ सां० ॥ अ० ॥ १ ॥ सू० ९२

अर्थ--इस कारणसे कि ईश्वरका होना सिद्ध नहीं है।

"मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९३ ॥

अर्थ- चैतन्य दोही प्रकारका है मुक्त और बद्ध इन से अन्य कोई चैतन्य नहीं है इस हेतु ईश्वरकी सिद्धि नहीं है।

"उभयथाप्यसत्करत्वम्,, ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९४.

अर्थ दोनों प्रकारसे ईश्वरका कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता अर्थात् यदि वह मुक्त है तो उसका विशेष क्या काम होसकता है? जैसे अन्य मुक्तजीव ऐसा ही वह और यदि वह बद्ध है तो अन्य संसारी जीवों के समान है--दोनों अवस्थाओंमें ऐसा कोई कार्य नहीं जिसके वास्ते ईश्वरको स्थापित किया जावे।

आर्यभाइयो! यदि आप कुछ भी विचारको काममें लावेंगे और सांख्यदर्शनको पढ़ेंगे तो आपको मालूम होगा कि सांख्यने ईश्वरवादियोंका मखौल तक उड़ाया और प्रधान अर्थात् प्रकृतिको ही ईश्वर कर दिखाया है यथाः--

"सहिसर्ववित् सर्वकर्ता" ॥ सां० ॥ अ० ३ सू० ५६

अर्थ--निश्चयसे वहही सब कुछ जानने वाला और सर्व कर्त्ता है।

ईदृशेश्वरसिद्धिःसिद्धा ॥ सां० ॥अ०३॥ सू० ५७

अर्थ-ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है।

भावार्थ इन दोनों सूत्रों का यह है कि सांख्यकार जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है-सांख्यकार जीव को निर्गुण और क्रिया रहित अकर्त्ता सिद्ध करता है और सृष्टि के सर्व कार्य प्रकृति से ही होता हुआ बताता है इस ही कारण सांख्यकारने प्रकृति का नाम प्रधान रक्खा है और उस ही को सर्व कार्यों का कारण बताया है।

सांख्यकार कहता है कि प्रधान (प्रकृति) ही सब कुछ जानने वाला और सब कुछ करने वाला है और यदि उस को ईश्वर माना जावे तो वेशक ऐसे ईश्वर का होना सिद्ध है-

सूत्र ५८ में प्रकृति का कर्ता होना स्पष्ट हो जाता है-

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुंकुम वहनवत्=

अर्थ—यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति सृष्टि को करती है परंतु वह सृष्टि दूसरों के लिये है क्योंकि उस में स्वयं भोग की सामर्थ्य नहीं है भोग उसका जीव ही करते हैं, जैसे ऊंट का कुंकुम को लादकर ले जाना दूसरोंके लिये है-

और सूत्र ५९ में प्रकृति के समझदारी के कार्य सिद्ध किये हैं-

"अचेतनत्वेऽपिक्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य"-

अर्थ-यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति अचेतन है परंतु दुग्ध की तरह कार्य उसके चेष्टित होते हैं-

कपिलाचार्य्य ने सांख्यदर्शन में ईश्वर की असिद्धि में इतना ज़ोर दिया है कि प्रथम अध्याय के सूत्र ९२, ९३, और ९४ में जैसा कि इन सूत्रों का अर्थ हमने ऊपर दिया है, ईश्वर की असिद्धि साफ साफ दिखाकर आगे यहां तक लिखा है कि पूजा उपासना भी मुक्त जीवों की ही है और शब्द भी उनके ही प्रमाण हैं न किसी एक ईश्वर की पूजा उपासना है और न उसका कोई शब्द वा उपदेश प्रमाण है जैसा कि निम्न लिखित सूत्रोंसे विदित होताहै-

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा सिद्धस्य वा ॥ सां० अ० १ ॥ सू० ९५

अर्थ-प्रशंसा उपासना मुक्त आत्मा की है वा सिद्ध की-

तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९६

अर्थ-उसके सन्निधान से मणि के समान अधिष्ठातापना है अर्थात् मुक्त वा सिद्ध जीवों की उपासना का कारण यह नहीं है कि वह कुछ देते हैं वा कोई कार्य सिद्ध कर देते हैं वरण उनके सन्निधान से ही असर पड़ता है इस कारण मुक्ति जीवों को अधिष्ठातापना है।

विशेष कार्य्येष्वपि जीवानाम् ॥सां० अ० १ ॥ सू० ९७

अर्थ--विशेष कार्य्योंमें संसारी जीवों

को भी इस ही प्रकार अधिष्ठातापना होता है अर्थात् उन की प्रशंसा उपासना भी की जाती है।

सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥सां० अ० १ ॥ सू० ९८

सिद्धरूपों के यथार्थ ज्ञाता होने से उनका वाक्यार्थ ही उपदेश है अर्थात् उन ही का वाक्य प्रमाण है।

जीवन्मुक्तश्च ॥ सां० ॥अ० ३॥ सू० ७८

जीवन मुक्त भी अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने पर जब तक शरीर बना रहता है तब तक की अवस्था को जीवन मुक्त कहते हैं—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ७९

अर्थ-उपदेश के योग्यको उपदेश करने वाले के भाव से उसकी सिद्धि है अर्थात् उपदेश करने का अधिकार जीवन मुक्तको ही है क्योंकि उससे पहले केवल ज्ञान नहीं जो सर्व पदार्थों का जानने वाला हो और केवल ज्ञान होने पर देह त्यागने के पश्चात् उपदेश हो नहीं सकता क्योंकि उपदेश वचन द्वारा ही हो सकता है और देह होने की ही अवस्था में वचन उत्पन्न होता है इस कारण उपदेश कर्ता जीवन्मुक्त ही हो सकता है—

श्रुतिश्च ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८०

अर्थ—श्रुति में भी इसका प्रमाण है-

इतरथान्धपरम्परा ॥ सां० ॥ अ० ३॥ सू० ८१

अर्थ—यदि जीवन्मुक्त को ही उपदेश का अधिकार न हो और किसी अन्य का भी वचन प्रमाण हो तो अंधाधुंध फैल जावे क्योंकि केवलज्ञानके बिदून जो मन में आवै सो कहै-

चक्रभ्रमणवद्धृतशरीरः ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८२

अर्थ-जिस प्रकार कुम्हार अपने चाक को लाठी से चलाता है परंतु लाठी के निकाल लेने और कुम्हार के अलग हो जाने के पश्चात् भी चक्र चलता रहता है इस ही प्रकार जीव अविवेक से बंधन में पड़ा था और संसार के चक्र में फंसा हुआ था अब अविवेक दूर हो गया और केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई परंतु अविवेकने जो संसार चक्र घुमाया था वह अविवेक के दूर होने पर अभी तक बंद नहीं हुआ इस कारण देह का संस्कार बाकी है जब सर्व संस्कार शांत हो जावेंगे तब देह भी छूट जावेगा और जीव सिद्ध पद को प्राप्त हो जायगा-

संस्कारलेशात् तत्सिद्धिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ८३

अर्थ-कुछ संस्कार का लेश बाकी रह गया है इस ही कारण जीवन्मुक्त होने पर भी शरीर बाकी है-

आर्यमत लीला

योग दर्शन और मुक्ति।

(२०)

षट् दर्शनके मानने वाले प्यारे आर्य भाइयो! यद्यपि स्वामी दयानन्द ने आपको बहकाया है कि सत्यार्थप्रकाश में जो सिद्धान्त उन्होंने स्थापित किये

हैं वे षटदर्शनके विरुद्ध नहीं हैं परन्तु यदि आप षट्दर्शन को पढ़ें तो आप को मालूम हो जावेगा कि स्वामीजी के सर्वसिद्धान्त कपोल कल्पित, पूर्वाचार्यों के विरुद्ध और मनुष्यों को धर्मसे भ्रष्ट करने वाले हैं।

प्यारे आर्य भाइयो! योगदर्शन को आप जिस आदरकी निगाहसे देखते हैं जितना आप इस ग्रन्थको मुक्तिका मार्ग और धर्म की बुनियाद समझते हैं उसको आप ही जानते हैं परन्तु यदि आप योगदर्शन और सत्यार्थप्रकाशको मिलावें तो आप को मालूम होगा कि स्वामीजी ने मुक्ति और उस के उपायोंकी जड़ ही उखेड़ दी है—अर्थात् धर्मका नाश ही करदिया है निम्न लिखित विषय अधिक विचारणीय हैं—

(१) दर्शन कार कर्मोंके क्षय से मुक्ति मानते हैं परन्तु स्वामीजी मुक्ति को भी कर्मों ही का फल बताते हैं मानो स्वामीजीकी समझमें जीव कभी कर्म बंधनसे छूट ही नहीं सक्ता है।

(२) मुक्ति किसी नवीन पदार्थकी प्राप्ति वा किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्तिका नाम नहीं हैं बरण प्रकृति का संग छोड़कर जीवका स्वच्छ और निर्मल होजाना ही मुक्ति है इसही हेतु मुक्तिके पश्चात् जीवके फिर बंधनमें फंसनेका कोई कारण ही नहीं है परन्तु स्वामीजी सिखाते हैं कि मुक्तिसे लौट कर जीवको फिर बंधनमें पड़ना आवश्यक है—फल स्वामीजीके सिद्धान्त का यह है कि मनुष्य मुक्ति साधन से निरुत्साही होजावें। क्योंकि—

"चलना है रहना नहीं
चलना विसवे बीस।
ऐसे सहज सुहाग पर
कौन गुदावे सीस॥"

(३) दर्शनकारों के मतके अनुसार प्रकृतिके संगसे जीवमें सत, रज और तम तीन गुण पैदा होते हैं और इन ही गुणोंके कारण जीवकी अनेक क्रिया में और चेष्टायें होती है और यही दुःखहै दर्शनकारोंके अनुसार जीव स्वभावसे निर्गुण है और इसही हेतु अपरिणामी है—संसारमें जीवका जो कुछ परिणाम होता है वह प्रकृति के उपरोक्त तीन गुणोंके ही कारण होता है—प्रकृतिका संग छोड़कर अर्थात् मोक्ष पाकर जीव निर्गुण और अपरिणामी रहजाता है और निर्मल होकर सर्व प्रकारके संकल्प विकल्प छोड़कर ज्ञान स्वरूप अपने आत्मा ही में स्थित रहता है और ज्ञानानन्दमें मग्नरहता है परन्तु स्वामी दयानन्दजी इसके विपरीत यह सिखाते हैं कि मुक्ति पाकर भी जीव अपनी इच्छानुसार संकल्पी शरीर बना लेता है और सर्व स्थानों का आनन्द भोगता हुआ फिरता रहता है और अन्य मुक्तजीवोंसे मेल मुलाकात करता रहता है। फल उनकी इस शिक्षाका यह कि संसारी जीवों और मुक्तजीवों में कोई अंतर न रहे और मुक्ति साधन व्यर्थ समझा जाकर मनुष्य संसार की ही उन्नति में लगे रहें।

(४) दर्शनकारों के मतके अनुसार जीव स्वभावसे सर्वज्ञ है परन्तु प्रकृति संयोगसे उसके ज्ञान पर आवरण पड़ा हुआ है जिससे वह अल्पज्ञ होकर अविवेकी होरहा है और इसके अविवेक के कारण संसार में फंसकर अनेक दुःख उठा रहा है—

इस आवरणके दूर होने और सर्वज्ञता प्राप्त होने ही का नाम मोक्ष है-परन्तु स्वामी दयानन्दजी सिखाते हैं कि जीव स्वभावसे ही अल्पज्ञ है इस हेतु मोक्षमें भी अल्पज्ञ रहता है अर्थात् पूर्ण विवेक मोक्ष में प्राप्त नहीं होता है इसही कारण संकल्पी शरीर बनाकर संसारी जीवोंकी तरह आनन्दकी खोज में भटकता फिरता है। यह शिक्षा भी मनुष्यको मुक्तिके साधनमें निरुत्साही बनाने वाली है।

(५) योगदर्शनमें मुक्तिका उपाय स्थिर चित्त होकर संसारकी सर्व वस्तुओंसे अपने ध्यानको हटाकर अपनी ही आत्मामें मग्न होना बताया है--इसही से सर्व बन्धन और सर्व आवरण दूर होते हैं और इसही से ज्ञान प्रकट होता है और ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही स्थिर रहना मोक्षका स्वरूप और मुक्तिका परम आनन्द है परन्तु दयानन्द सरस्वतीजी ऐसी अवस्थाकी हंसी उड़ाते हैं और इसको जड़वत् होजाना बताते हैं-स्वामीजीको तो संसारी जीवोंकी तरह अनेक चेष्टा और क्रिया करना ही पसन्द है इसही हेतु स्वामीजी अपरिग्रही और वैरागी योगीको नापसन्द करते हैं बरण यहांतक शिक्षा देते हैं कि योगीको यहां तक परिग्रही होना चाहिये कि स्वर्ण आदिक भी अपने पास रक्खे-गुरु स्वामीजीकी नियत इससे यह मालूम पड़ती है कि धर्मके सर्व साधन दूर होकर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारमें दृढ़ हो॥

प्यारे आर्य भाइयो! आज हम योग दर्शनका कुछ सारांश इस लेखमें आप को दिखाते हैं जिससे स्वामीजीका बिछाया हुआ भ्रमजाल दूर होकर हमारे भाइयों की रुचि सत्यधर्मकी ओर लगे

देखिये योगशास्त्रमें मुक्तिका स्वरूप इसप्रकार लिखा है—

"पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वाचिति शक्तिरिति यो० अ० ४ सू०-३४

अर्थ—पुरुषार्थ शून्य गुणोंका फिर पैदा न होना कैवल्य है वा स्वरूप प्रतिष्ठा है वा चैतन्यशक्ति है-अर्थात् सत रज और तम यह तीन प्रकारके प्रकृतिके गुण जब जीवको किसी प्रकारका भी फल देना छोड़देते हैं पुरुषार्थ रहित होजाते आगामीको यह गुण पैदा होजाने बंद होजाते हैं। भावार्थ-जब सर्व प्रकारके कर्मों और संस्कारोंकी निर्जरा और संवर होजाता है तब जीव कैवल्य अर्थात् खालिस और शुद्ध रहजाता है और अपनेही स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, अपने स्वरूपसे भिन्न जगत् की अन्य किसी वस्तुकी तरफ जीवकी

प्रवृत्ति नहीं होती है और चेतनाशक्ति अर्थात् ज्ञान ही ज्ञान रहजाता है-

नोट-योगशास्त्रके इस सूत्रसे सत्यार्थप्रकाशके मुक्तिविषयक सर्व सिद्धान्त असत्य होजाते हैं-क्योंकि इस सूत्रके अनुसार मुक्ति कर्मोंका फल नहीं वरण कर्मोंके नाशका नाम मुक्ति है-मुक्ति के पश्चात् आगामी भी कर्मोंकी उत्पत्ति बन्द होजाती है इस हेतु मुक्तिसे लौटना भी नहीं हो सकता है-सत, रज और तम तीनों गुणोंका नाश हो कर मुक्तिजीवमें प्रवृत्ति भी नहीं रहती है जिससे वह संकल्पी शरीर बनावे और कहीं घूमता फिरै वरण अपनेही स्वरूप में स्थित रहता है और इस प्रकार स्थिर रहनेसे वह पाषाण की मूर्तिके समान जड़ नहीं होजाता है वरण अपने ज्ञानमें मग्न रहता है वह पूर्ण चेतन स्वरूप अर्थात् ज्योतिस्वरूप होजाता है-

"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी" योग० अ० १ सू० ५०

अर्थ-उक्त समाधिसे जो उत्पन्न हुआ संस्कार वह अन्य संस्कारोंको नाश करने वाला होता है-अर्थात् मुक्तिका उपाय समाधि है और उससे सर्व संस्कार अर्थात् कर्मनाश होजाते हैं= इसके आगे जो संस्कार समाधिसे उत्पन्न होता है उसके नाशका वर्णन करते हैं-

"तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजस्समाधिः" अ० १ सू० ५१ ॥

अर्थ-उस संस्कारके भी निरोध से निर्बीज समाधि होती है-अर्थात् संस्कार बिल्कुल बाकी नहीं रहता है और जीव अपनी आत्मा ही में स्थित होजाता है।

नोट-उपर्युक्त साधनोंसे अर्थात् कर्मों का सर्वथा नाश करनेसे योगदर्शनमें मुक्तिकी प्राप्ति कही है परन्तु दयानन्द सरस्वती जी मुक्ति भी कर्मोंहीका फल बताते हैं और कहते हैं कि यदि ईश्वर अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति देवै तो वह अन्याई होजावे।

"क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः" ॥ अ० २ सू० १२ ॥

अर्थ क्लेश अर्थात् राग द्वेष अविद्या आदि ही कर्म आशयके मूलकारण हैं जो दृष्ट तथा अदृष्ट जन्मों में भोगा जाता है।

"ते ह्लाद परितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्" ॥ २ ॥ १४ ॥

अर्थ—वे आनन्द और दुःख फल युक्त हैं पुण्य और पापके हेतु होनेसे अर्थात् कर्मोंके दो भेद हैं पुण्य कर्म और पाप कर्म पुण्यकर्मोंसे सांसारिक सुख मिलता है और पापकर्मोंसे दुःख मिलता है।

"सत्व पुरुषयोः शुद्धिसाम्येकैवल्यमिति" ॥ अ० ३ ॥ सू० ५४ ॥

अर्थ—जब सत्व और पुरुष दोनों शुद्धतामें समान होजाते हैं तब कैवल्य होजाता है-अर्थात् किसी वस्तुमें जब कोई दूसरी वस्तु मिलती है तबही खोट कहाजाता है जब दोनों वस्तु अलग २ करदी जावें तो दोनों वस्तु स्व-

च्छ और खालिस कहलाती हैं--इसही प्रकार जीव और प्रकृति मिलकर खोट पैदा होता है--प्रकृति के तीन गुण हैं सत्व, रज और तम--रज और तम के दूर होनेका वर्णन तो योगशास्त्रमें पूर्व किया गया--योगी में एक सत्व गुणका खोट रहगया था उसका वर्णन इस सूत्र में करते हैं कि जब सत्व भी आत्मासे अलग होजावे और आत्मा और सत्व दोनों अलग २ होकर शुद्ध होजावें तब आत्मा कैवल्य अर्थात् खालिस होजाता है-सत रज और तम इनही तीनों गुणोंसे कर्म पैदा होते हैं जब प्रकृति के यह तीनों गुण नाश होकर आत्मा कैवल्य होगया तब कर्मका तो लेश भी बाकी नहीं रह सक्ता है।

नोट--नहीं मालूम स्वामीजीको कहां से सरस्वतीका यह बर मिला है कि मुक्तिको भी कर्मोंका ही फल वर्णन करते हैं? जिससे हमारे लाखों भाइयों का श्रद्धान भ्रष्ट होगया और होनेकी सम्भावना है।

दयानन्दजीने मुक्तिको संसारके ही तुल्य बनानेके वास्ते मुक्ति पाकर भी जीवको अल्पज्ञ ही वर्णन किया है और मोक्षमें भी उसका क्रमवर्ती ज्ञान कहा है अर्थात् जिस प्रकार संसारी जीव अपने ज्ञान पर कर्मोंका आवरण होने की वजहसे इन्द्रियोंका सहारा लेते हैं और आत्मिक शक्ति ढकी हुई होनेके कारण संसारकी वस्तुओंको क्रम रूप देखते हैं अर्थात् सर्व वस्तुओं को एक साथ नहीं देखसक्ते हैं ऐसी ही दशा दयानन्दजीने मुक्तजीवोंकी बताई है कि वह भी क्रमरूप ही ज्ञान प्राप्त करते हैं--परन्तु प्यारे पाठको! दर्शनकार इसके विरुद्ध कहते हैं और आत्माकी शक्ति सर्वज्ञताकी बताकर मोक्षमें सर्वज्ञताकी प्राप्ति दिखाते हैं-देखो योगदर्शन इसप्रकार कहता है:—

" परिणामत्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम् " ॥ अ० ३ ॥ सू० १६ ॥

अर्थ--तीन परिणामोंके संयमसे भूत और भविष्यतका ज्ञान होता है।

" सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य-सर्व भावाधिष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वं च३।४८

अर्थ--सत्व पुरुषकी अन्यता ख्याति मात्रको सर्व भावोंका अधिष्ठातापना और सर्वज्ञपना होता है।

क्षणतत् क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ ॥ ५१

अर्थ--क्षण (काल का सब से छोटा भाग) और उसके क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है।

नोट-आश्चर्य है कि योगशास्त्र तो क्रम में संयम करने का उपदेश करता है और उससे ही विवेक ज्ञान की प्राप्ति बताता है और दयानन्द जी ऐसी दया करते हैं कि मुक्तजीव के भी क्रमवर्ती ज्ञान बताते हैं आगे योग दर्शन विवेक ज्ञानको सर्वज्ञता बताता है

तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयम-क्रमंचेति विवेकजं ज्ञानम् ॥३॥ ५१

अर्थ-तारक अर्थात् संसार से तिराने वाला ज्ञान जो सर्व विषय को और उन की सर्व अवस्थाओं को युगपत

जानने वाला होता है अर्थात् भूत भविष्यत वर्तमान सर्व पदार्थों को एक ही वक्तमें जानता है उसको विवेकज ज्ञान कहते हैं।

नोट-प्यारे भाइयो, योगशास्त्र कैसी स्पष्टता के साथ योगी को सर्वज्ञता प्राप्त होने का वर्णन करता है पर स्वामी दयानन्द जी मुक्ति पाने पर भी उनको अल्पज्ञ ही रखना चाहतेहैं।

सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द जी ने या तो आत्मिक शक्तिको जाना नहीं है या आत्मिक सिद्धान्तों को छिपा कर मनुष्यों को संसार में डुबाने की चेष्टा की है यदि हमारे भाई एक नजर भी योग शास्त्र को देख जावैं तो उन को मालूम हो जावै कि दयानन्द जी ने मुक्ति को बिलकुल बच्चों का खेल ही बना दिया है। स्वामी जी को सत्यार्थप्रकाश में यह लिखते हुवे अवश्य लज्जा आनी चाहिये थी कि मुक्तिजीव भी संकल्पी शरीर बनाकर आनंद के वास्ते जगह २ फिरता है और अन्य मुक्त जीवों से भी मिलता रहता है।

तासामनादित्वंचाशिषो नित्यत्वात् ॥ ४ ॥ १०

अर्थ-वे वासना अनादि हैं सुख की इच्छा नित्य होने से।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वा देषामभावेतदभावः ॥ ४ ॥ ११

अर्थ-हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन से वासनाएं संग्रहीत होती हैं और इन हेतु, फल आदि के अभावसे वासनाओं का भी अभाव हो जाता है भावार्थ इन दोनों सूत्रों का यह है कि यद्यपि वासनाएं अनादि हैं परंतु समाधि बल से वासनाओं का नाश हो जाता है और मुक्ति अवस्था में कोई वासना नहीं रहती है।

मुक्ति में कोई कर्म बाकी नहीं रहता कोई वासना नहीं रहती सत्व, रज और तम कोई गुण नहीं रहता प्रकृति से मेल नहीं रहता जीवात्मा निर्गुण हो जाता है और कैवल्य, स्वच्छ रह जाता है फिर नहीं मालूम स्वामी जी को यह लिखने का कैसे साहस हुआ कि मुक्त जीव इच्छानुसार संकल्पी शरीर बनाकर सर्वस्थानों के आनन्द भोगते हुवे फिरते रहते हैं ?

देखिये योग दर्शन में वैराग्यका लक्षण इस प्रकार किया है।

दृष्टाऽनुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ॥ १ ॥ १५

अर्थ-दृष्ट और अनुश्रविक विषयों की तृष्णासे रहित चित्त के वश करने को वैराग्य कहते हैं।

तत्परमपुरुष ख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम् ॥ १ ॥ १६

अर्थ-वह वैराग्य परम पुरुष की ख्याति से प्रकृति के गुण अर्थात् सत्व रज तम और उन के कार्य में तृष्णा रहित होना है।

अब हम पूछते हैं कि जीव जब सत्व, रज और तम प्रकृति के इन ती-

नों गुणों से रहित स्वच्छ हो तब वह संकल्पी शरीर बना सकता है या नहीं और संकल्पी शरीर बनाने की इच्छा और सर्व स्थानों का आनन्द लेते फिरना राग है या वैराग्य ? क्या वैराग्य के द्वारा मुक्ति प्राप्त करके मुक्त होते ही फिर जीव रागी हो जाता है ? क्या यह अत्यंत विरुद्ध बात नहीं है ? और यदि ऐसा हो भी जाता है तो वह अवश्य दुःख में है क्योंकि जहां राग है वहां ही दुःख है देखिये योगशास्त्र में ऐसा लिखा है-

सुखानुशयी रागः ॥ २ ॥ ७ ॥

अर्थ-सुख के साथ अनुबंधित परिणाम को राग कहते हैं--भावार्थ यदि मुक्त जीव को सुखके अर्थ संकल्पी शरीर धारण करना पड़ता है और जगह २ घूमना होता है तो उस में अवश्य राग है परंतु राग को योग दर्शन में क्लेश वर्णन किया है-

अविद्यास्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ २ ॥ ३ ॥

अर्थ-अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेषऔर अभिनिवेश यह पांच प्रकार के क्लेश हैं—

इस हेतु दयानन्द जी के कथनानुसार दयानन्द भी की मुक्त जीवों पर ऐसी दया होती है कि उन को वह क्लेशित बनाना चाहते हैं--क्लेशित केवल राग ही के कारण नहीं बरण अविद्या के कारण भी क्योंकि जब तक सर्वज्ञ नहीं है तब तक ज्ञान में कमी ही है और इस कारण क्लेश है सरस्वतीजी का भी यह ही कथन है कि सर्वज्ञ होने के कारण जीव एक ही समय में सर्व वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करके एक साथ ही आनन्द नहीं ले सकता है बरण अल्पज्ञ होनेके कारण उस को स्थान स्थान का ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते जगह २ घूमना पड़ता है क्या यह थोड़ा क्लेश है ? और तिसपर स्वामी जी कहते हैं कि मुक्तजीव परमानन्द भोगता है । योगशास्त्र में तो अविद्या को ही सर्व क्लेशों का मूल वर्णन किया है-

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नो दाराणाम् ॥ १ ॥ ४ ॥

अर्थ-प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार रूप अगले सर्व क्लेशों का कारण (क्षेत्र) अविद्या ही है ।

अभिनिवेश का लक्षण योगशास्त्र में इस प्रकार है-

स्वरसवाही विदुषोपि तथा रूढोभिनिवेशः ॥ १ ॥ ९ ॥

अर्थ-जो मूर्ख तथा पण्डितों को एक समान प्रवेश हो उसे अभिनिवेश कहते हैं योगशास्त्र के भाष्यकारों ने इस का दृष्टान्त यह लिखा है कि जैसे इस बात का क्लेश सब को होता है कि हम को मरना है इस ही प्रकार के क्लेश अभिनिवेश कहाते हैं स्वामीजी ने मुक्ति से लौटकर संसार में फिर लौटने का भय दिखाकर बेचारे मुक्त

जीवों को अभिनिवेश क्लेशमें भी फांसा दिया इस ही प्रकार स्वामी जी के कथनानुसार अस्मिता और द्वेषभी मुक्त जीवोंमें घटते हैं अर्थात् मुक्त जीव पांचों प्रकार के क्लेशों में फंसता है। नहीं मालूम सरस्वती जी को मुक्त जीवों से क्यों इतना द्वेष हुआ है कि उन को सर्व प्रकार के क्लेशों में फंसाना चाहते हैं? परन्तु मुक्त जीवों पर तो स्वामी जी का कुछ बश नहीं चलैगा। हां, करुणा तो उन संसारी मनुष्यों पर आनी चाहिये जो दयानंद जी की शिक्षा पाकर मुक्ति साधन से अरुचि करलेंगे और संसार के ही बढ़ाने में लगे रहैंगे-

प्यारे आर्य भाइयो। योग दर्शनको पढ़ो और उस पर चलो जिसमें ऐसा लिखा है, सत्यार्थप्रकाश के भरोसे पर क्यों अपना जीवन खराब करते हो--

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेय हेतुः॥ २॥१७

अर्थ-देखनेवाला और देखने योग्य वस्तु इनका जो संयोग है वह त्याज्य का मूल है अर्थात् मोक्ष साधनमें त्याग ही एक उपादेय है और त्याग का मुख्य तत्व यह है कि ज्ञेय वा दृश्य अर्थात् देखने योग सर्व वस्तुओं का जो संयोग देखने वाला करता है वह त्याग दिया जावै-

परन्तु स्वामी जी इस के विरुद्ध कहते हैं कि मुक्त जीव इस ही संयोग मिलने के वास्ते संकल्पी शरीर बनाता है और जगह २ घूमता फिरता है।

तस्यहेतुरविद्या ॥ २ ॥ २४

अर्थ-उस संयोग का हेतु अविद्या है। तब ही तो स्वामी जी ने मुक्तजीव को अल्पज्ञ बताया है परन्तु प्यारे आर्य भाइयो। स्वामी जी कुछ ही कहैं आप ज़रा योग दर्शन की शिक्षा पर ध्यान दीजिये देखिये कि स्पष्टतासे कहा है--

तदभावात्संयोगाभावोहानम् तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २ ॥ २५ ॥

अर्थ-उसके अर्थात् अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है और वही द्रष्टाका कैवल्य अर्थात् मोक्ष है विना सर्वज्ञता प्राप्त होनेके और सर्व पदार्थों से प्रवृत्ति को हटाकर आत्मस्थ होनेके बिदून मुक्ति ही नहीं हो सकती है। भावार्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने मुक्ति का वर्णन नहीं किया है वरण मुक्ति को हंसी का स्थान बना दिया है।

आर्यमतलीला ॥

(२८)

संसारमें तो यह ही देखने में आता है कि तृष्णावान् को दुःख है और सन्तोषीको सुख--एक महाराजाको सात खण्डका राज्य मिलने से उतना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना जंगलमें पड़ेहुए एक योगीको सुख है। धर्म सुखप्राप्तिका मार्ग है इस ही हेतु धर्म का मूल त्याग है--इन्द्रियोंको विषय भोगोंसे हटाना चित्त की वृत्तियों को

रोकना सुखप्राप्ति का उपाय है--और संसारके सर्व पदार्थों से चित्तको हटा कर अपने ही आत्मामें स्थिर और शान्त होजाना परम आनन्द है और यह ही मोक्षका उपाय है--इस ही हेतु मोक्ष में परम आनन्द है क्योंकि वहां ही जीवात्मा प्रकृतिके सब विकारोंसे रहित हो कर पूर्णरूप स्थिर और शान्त होता है--

परन्तु स्वामी दयानन्दजी इस सुख को नहीं मानते हैं वह इस स्थिर और शान्तिदशाको पत्थरकी मूर्त्ति के समान जड़ बनजाना बताते हैं इस ही कारण मुक्ति जीवोंके वास्ते भी वह आवश्यक समझते हैं कि वह अपनी इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर जगह २ का आनन्द भोगते हुए फिरते रहैं--स्वामीजीको मुक्तिका साधन करने वाले योगियों का परिग्रह त्याग और आत्मध्यान भी व्यर्थका ही क्लेश प्रतीत पड़ता है उनको यह कब रुचिकर हो सकता है कि योगी संसारकी सर्व वस्तु और शरीरका ममत्व छोड़ दे और कपड़े पहननेका बखेड़ा न रख कर नग्न अवस्था धारण कर आत्मध्यानमें लगे? वरण स्वामीजी तो यहां तक चाहते हैं और सत्यार्थप्रकाशमें उपदेश देते हैं कि योगीको चांदी सोना धन दौलत भी रखनी चाहिये= परन्तु प्यारे आर्यभाइयो! अपने और स्वामीजीके मान्य ग्रन्थ योगदर्शन को देखिये जिसको आप मुक्ति सोपान समझते हैं--उससे आपको विदित हो जायगा कि सरस्वतीजीकी शिक्षा बिलकुल धर्ममार्गके विरुद्ध और संसारमें फंसाने वाली है।

देखिये योगदर्शन इस प्रकार लिखता है--

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" यो० अ० १ सू० २

अर्थ--चित्तकी वृत्तियोंके निरोध अर्थात् रोकनेको योग कहते हैं--भावार्थ अपने ही आत्मा में स्थिरता हो इस से बाहर किसी वस्तु को तरफ प्रवृत्ति न हो॥

"तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" ॥१॥३॥

अर्थ--उस समय अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होने पर जीवात्मा का अपनेही स्वरूपमें अवस्थान होताहै-

"वृत्तिसारूप्यमितरत्र" ॥ १॥ ४॥

अर्थ -अन्य अवस्था में अर्थात् जब चित्तकी सर्ववृत्तियोंको रोककर जीवात्मा अपनेही स्वरूपमें मग्न नहीं होताहै तब वह चित्तवृत्तियोंके रूपको धारण करलेता है--यह दशा सर्व संसारी जीवोंकी रहतीही है--

नोट--महर्षियोंने मुक्तिका साधन तो यह बताया कि चित्त की वृत्तियों को रोककर अपनीही आत्मामें अवस्थित होजावै--परन्तु स्वामीजी कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होने पर यदि जीवात्मा अपने ही आत्मामें स्थिर रहे और नाना प्रकार चेष्टा न करै, इच्छा प्राप्त न हो -इच्छानुसार कल्पित शरीर न

बनावे और जगह २ घूमता न फिरे तो वह पत्थरके समान जड़ होजावे--परन्तु हमको आश्चर्य है कि सरस्वतीजी ने इतना भी न विचारा कि यदि मुक्ति अवस्थामें इस प्रकार प्रवृत्ति करने और चित्त वृत्तियों में लगने और संसारी जीवों के समान वृत्तियों का रूप धारण करने की ज़रूरत है तो मुक्तिसाधन के वास्ते इन वृत्तियों के रोकने और अपने आत्मा में ही स्थिर होने की और योग धारण करने की क्या ज़रूरत है? योग धारण करना और चित्त वृत्तियों को रोककर आत्मा में स्थिर होना कोई सहज बात नहीं है इसके वास्ते योगी को बहुत कुछ अभ्यास और प्रयत्न करना पड़ता है परन्तु जब मोक्ष में जाकर भी इन वृत्तियोंमें फंसना और आत्म स्थिरता को छोड़कर चंचल बनना है तो दयानन्द जी के कथनानुसार योग साधन का सब उपाय व्यर्थ का ही कष्ट ठहरता है--

देखिये योगदर्शन चित्त की वृत्तियों को रोककर आत्मस्थ होने के वास्ते क्या क्या उपाय बताता है-

"अभ्यास वैराग्याभ्यान्तन्निरोधः" ॥ १ ॥ १२ ॥

अर्थ--वह निरोध अर्थात् चित्त की वृत्तियों का रोकना अभ्यास और वैराग्य से होता है--

तत्रस्थितौयत्नोऽभ्यासः ॥ १ ॥ १३ ॥

अर्थ-आत्मा में स्थिर होने में यत्न करने को अभ्यास कहते हैं।

सतुदीर्घकाल नैरन्तर्य्य संत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः ॥ अ० १ सू० १४

अर्थ--वह अभ्यास बहुत काल तक निरन्तर अर्थात् किसी समय किसी अवस्था में वा किसी विघ्न से त्याग न करते हुवे अधिक आदरके साथ सेवन करने से दृढ़ होता है--

प्यारे आर्य्य भाइयो! योगशास्त्र तो इस प्रकार अत्यंत कष्टसाध्य आत्म स्थिति और चित्त वृत्तियों ही के रोकने में आनन्द बताता है स्वामी दयानन्द जी उसको पत्थर के समान जड़ अवस्था कहैं वा जो कुछ चाहैं कहैं-

"निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः" ॥ १ ॥ ४७ ॥

अर्थ-निर्विचार समाधि के विशारद भाव में अध्यात्मिक प्रसाद है-अर्थात् आत्मिक परम आनन्द प्राप्त होता है-

प्यारे आर्य्य भाइयो! योगदर्शन तो प्रारम्भ से अंत तक चित्त वृत्तियों के रोकने और आत्मा में स्थिर होने ही को मोक्ष मार्ग और धर्म का उपाय बताता है-

तत्रस्थिर सुखमासनम् ॥ २ ॥ ४६

अर्थ-जिसमें स्थिर सुख हो वह आसन कहाता है अर्थात् जिसकी सहायता से भली भांति बैठा जाय उसे आसन कहते हैं। वह पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिक के नाम से विख्यात हैं यह आसन जब स्थिर कम्प रहित और योगी को सुख दायक होते हैं

सब योग के अंग कहे जाते हैं-

नोट-स्वामी दयानन्द जी तो आसन को जड़ पत्थर के समान ही हो-जाना समझते होंगे।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ २ ॥ ४७

अर्थ-प्रयत्न के शिथिल होने और अनन्त समापित्ति से आसन की सिद्धि होती है अर्थात् आसन निश्चल होते हैं और चित्त की चंचलता नाश हो जाती है-

नोट-दयानन्द सरस्वती जी तो इस बात को कभी न मानते होंगे? क्योंकि प्रयत्न तो वह जीव का लिंग बताते हैं और इस ही हेतु मोक्ष में भी जीवका प्रयत्न सिद्ध करते हैं स्वामी जी तो जैनियों से इस ही बातसे रुष्ट हैं कि जैनी मुक्तिजीव का प्रयत्न रहित एक स्थान में स्थित ज्ञान स्वरूप आनन्दमें मग्न रहना बताते हैं और इसके खण्डन में सत्यार्थप्रकाश में कई कागज काले करते हैं-प्राणधारी मनुष्य अर्थात् योगी के वास्ते इस प्रकार पत्थर बन जाने को तो वह कब पसन्द करेंगे?

परन्तु स्वामी जी जो चाहैं मखौल उड़ावैं योगशास्त्र की तो ऐसी ही शिक्षा है

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः २ ॥ ४८

अर्थ-आसन स्थिर होनेपर जो श्वासो श्वास की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं अर्थात् आसन स्थिर होकर श्वास उश्वास के रुकने को प्राणायाम कहते हैं।

नोट-दयानन्द जी मुक्त जीवों पर तो आप की दया होगई औ उनको स्थिरता से छुड़ाकर इस प्रयत्न में लगा दिया कि वह संकल्पी शरीर बनाकर जगह जगह का आनन्द लेते फिरा करें परन्तु योगियों पर भी तो कुछ दया करनी चाहिये थी? देखो महर्षि पातञ्जलिने तो योग दर्शन में उनका सांस रोक कर सचमुच ही पत्थर की मूर्ति बना दिया हमारे आर्यभाई प्राणायाम के बहुत शौकीन हैं इनको भी कोई ऐसा प्रयत्न बता दिया होता जिस को करते हुवे भी प्राणायाम सिद्ध होता है और चंचलता भी बनी रहै?

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपीचतुर्थः ॥२॥५०

अर्थ-जिसमें बाह्य और आभ्यंतर विषयों का परित्याग हो वह चौथा प्राणायाम है-तीन प्रकारके प्राणायाम पहले वर्णन करके इस सूत्र में चौथा वर्णन किया है।

नोट-दयानन्द जी तो मुक्तजीव को भी विषय रहित नहीं बनाना चाहते हैं इस ही हेतु इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर भ्रमण करना और अन्य मुक्त जीवों से मिलना जुलना आवश्यक बताते हैं। इस प्रकार की क्रिया बाह्य विषय से हो वा आ-

भ्यंतर विषय से इस को सरस्वती जी ही जानते होंगे। परन्तु योगदर्शन में तो प्राणायाम ही में जो योग और मुक्ति साधन का एक बहुत छोटा दर्जा है, बाह्य और आभ्यंतर दोनों विषयों को उड़ादिया।

ततःक्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ २ ॥५२॥

अर्थ--प्राणायाम सिद्धि के अनन्तर ज्ञान का आवरण नष्ट हो जाता है अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने लगता है।

नोट—दयानन्द जी ने मुक्ति सिद्धि पर मुक्त जीवों के साथ फिर वह विकार लगा दिये हैं जो प्राणायाम में छोड़ेगये थे अर्थात् प्रयत्न चंचलता और विषय वासना इस ही कारण जो ज्ञान का आवरण प्राणायाम के पश्चात् दूर हुआ था वह दयानन्द जी ने मुक्त जीवों पर डालकर उनको अल्पज्ञ बना दिया।

प्यारे पाठको! योगदर्शन के अनुसार योगी के वास्ते सब से प्रथम काम पांच यम पालन करना है।

यमनियमाऽऽसनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ॥ २ ॥ २९

अर्थ—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के यह आठ अंग हैं।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २ ॥ २८ ॥

अर्थ-योग के अंगों को क्रमशः अनुष्ठान करने से अशुद्धि के क्षय होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है...... क्रमशः का भावार्थ यह है कि यम के पश्चात् नियम और नियम का पालन होने पर आसन इस ही प्रकार सिलसिलेवार ग्रहण करता है। अर्थात् यम सब से कम दर्जे में और सब से प्रथम है। इन के पालन बिदून तो आगे चल ही नहीं सकता है।

तत्राहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहायमाः ॥ २ ॥ ३०

अर्थ—तिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम हैं।

जातिदेशकालसमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमामहाव्रतम् ॥ २ ॥ ३१

अर्थ-जाति देश, काल और समयकी मर्यादा से न करके सर्वथा पालन करना महाव्रत है-अर्थात् उपरोक्त पांचोंयमों को बिना किसी मर्यादा के सर्वथा पालन करना महाव्रत है और मर्यादा सहित पालन करना अणुव्रतहै।

अब प्यारे आर्य भाइयो! विचारने की बात है कि, परिग्रह कहते हैं सांसारिक वस्तुओं (असबाब) और उन की अभिलाष को संसार का कोई भी असबाब न रखना और न उस में ममत्व रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह महाव्रत धारण करने में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं रह-

ती है कि अमुक वस्तु रक्खं वा अमुक न रक्खूं महाव्रत तो बिना मर्यादा ही होता है इस हेतु आप ही सोचिए कि महाव्रती योगी वस्त्र रक्खेगा वा नहीं ? क्या एक लंगोटी रखना भी अपरिग्रह महाव्रतको भंग नहीं करेगा ? अवश्य करेगा--महाव्रती को योगदर्शनके अनुसार अवश्य नग्न रहना होगा। इसके अतिरिक्त प्यारे भाइयो जब आप योगके आठों अंगोंको समझेंगे और वैराग्य ही को योगका साधन जानेंगे तब आपको स्वयम् निश्चय हो जायगा कि योगीको वस्त्र, लंगोटी का ध्यान तो क्या अपने शरीर का भी ध्यान नहीं होता है—नग्न रहनेकी लज्जा करना वा अन्य कारणोंसे वस्त्र की आवश्यका समझना योगसाधन का बाधक है और जिसको इस प्रकार लज्जा आदिकका ध्यान होगा उससे तो संसार छूटा ही नहीं है वह योग साधन और मुक्तिका उपाय क्या कर सक्ता है ?

प्यारे भाइयो ! साधुके वास्ते मोक्षके साधनमें नग्न रहना इतना आवश्यक होनेपर भी हमारे बहुतसे आर्य भाई नग्न अवस्थाकी हंसी उड़ाकर क्या धर्म की हंसी नहीं उड़ाते हैं ? अवश्य उड़ाते हैं।

मुश्किल यह है कि स्वामी दयानन्दजी ने अंगरेजी पढ़े हुये भाइयोंको अपनी और आकर्षित करनेके वास्ते उनके आजादीके खयालको लेकर सब वाहियात और झूठका पाठ पढ़ाना शुरूकर दिया और बहुत सी बातोंको असम्भव और नामुमकिन बताकर भोले लोगोंके खयाल को बिगाड़दिया॥

अफसोस है कि स्वामीजीके ऐसे वर्तावसे हमारे आर्य्यभाई जीवात्माकी शक्तियोंको समझनेसे वंचित रहेजाते हैं और अंगरेजोंकी तरह जड़ पदार्थ की ही शक्तियोंके ढूंढने और मानने में लगते जाते हैं—महर्षि पातञ्जलि ने योगशास्त्र में जो आत्मिक अतिशय वर्णन की हैं उनका सारांश हम नीचे लिखते हैं और अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि इनमें अपना विचार देवैं—और आत्मिक शक्तियोंकी खोजमें लगें।

" अहिंसा प्रतिष्ठायांतत्संन्निधौ वैर त्यागः ॥ २ ॥ ३५ ॥

अर्थ--योगीका चित्त जब अहिंसा में स्थिर होजाता है तब उसके समीप कोई प्राणी वैर भाव नहीं करता है अर्थात् शेर, सांप बिच्छू आदिक दुष्ट जीव भी उसको कुछ बाधा नहीं पहुंचा सक्ते हैं।

" शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयमात् सर्व्व भूतरुतज्ञानम् " ॥ ३ ॥ १७

अर्थ-- शब्द अर्थ और ज्ञानमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे शब्द सङ्करता है और उनके विभागमें संयम

करनेसे प्राणीमात्र की भाषाका ज्ञान होता है--अर्थात् पातंजलि ऋषिका यह मत है कि योगीको सर्व जीवोंकी भाषा समझने का ज्ञान होसका है भावार्थ जानवरोंकी भी बोली समझ सक्ता है।

"संस्कारसाक्षात् करणात् पूर्वजाति ज्ञानम्" ॥ ३ ॥ १८ ॥

अर्थ--संस्कारोंके प्रत्यक्ष होनेसे पूर्व जन्मोंका ज्ञान होता है ॥

"कण्ठकूपेक्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।३।२९

अर्थ--कंठके नीचे कूपमें संयम करने से भूख और प्यास नहीं रहती ।

"मूर्द्धं ज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥३॥३१

अर्थ--कपालस्थ ज्योतिमें संयम करनेसे सिद्धोंका दर्शन होता है ।

"उदान जयांजल पंककंटकादिष्व संगउत्क्रान्तिश्च" ॥ ३ ॥ ३८

अर्थ--उदानादि वायुके जीतनेसे कंटकादि का स्पर्श नहीं होता और उत्क्रान्ति भी होती है ।

"काया काशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघूतूलसमापत्तेश्चाकाश गमनम्" ३॥४१

अर्थ-शरीर और आकाशके सम्बन्ध से संयम करनेसे और लघू आदि पदार्थोंकी समापत्तिसे आकाशमें गमन सिद्ध होता है ।

प्यारे आर्य भाइयो! विशेष हम क्या कहें आपको यदि अपना कल्याण करना है तो हिन्दुस्तानके महात्माओं और ऋषियोंने जो आत्मिक शक्तियों की खोजकी है और जिस कारण यह हिन्दुस्थान सर्वोपरि है उनको समझो और मुक्तिके सच्चे मार्गको पहचानो ।

इति शुभम् ।

॥ निवेदन ॥

आर्यसमाज नामक संस्थाके चतुर संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने अपने लेख और सिद्धान्तोंमें यथा शक्ति यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि वेद (ऋग्, यजु, साम और अथर्व नामक चारोंसंहिता) ईश्वर प्रणीत हैं, वह सर्व कल्याणकारी विद्याओंके उत्पादक स्थान हैं तथा उन्हींके उपदेशानुकूल चलनेसे मनुष्यका यथार्थ कल्याण होसक्ता है और अब भी स्वामी जीके अनुयायी हमारे आर्यसमाजी भाई अपने प्रयास भर वैसा प्रतिपादन करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उपरोक्त वेदोंके वर्तमान में सायण, महीधर और मोक्षमूलर (Maxmuller) आदि कृत अनेक भाष्य पाये जाते हैं और वह इतने विशद हैं कि अनेक परस्पर विरुद्ध संप्रदायों यहांतक कि वाममार्गादि ने भी अपना सिद्धान्त पोषक स्थान वेदको ही माना है परन्तु हमारे स्वामीजीने यह कहकर उन सर्व प्राचीन भाष्योंको अमान्य करादिया है कि वे सृष्टिक्रम विरुद्ध, हिन्सा और व्यभिचारादि घृणित कार्योंसे परिपूर्ण हैं और उनके पढने से वे सर्वज्ञ ईश्वर प्रणीत होना तो एक ओर किसी बुद्धिमान् भी मनुष्य कृत प्रमाणित नहीं होसक्ते और इसी अर्थ अपने मन्तव्यों को पोषण करने के अर्थ स्वामीजीने उनपर अपना एक स्वतन्त्र नवीन भाष्य रचा है। यद्यपि यह विषय विवाद ग्रस्त है कि स्वामीजीका वेद भाष्य ही क्यों प्रामाणिक है परन्तु इसपर कुछ ध्यान न देते हुये जैनगजटके भूतपूर्व सुयोग्य सम्पादक सिरसावा निवासी श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर जी मुख्तार देवबन्दने अपने सम्पादकत्व कालमें सन् १९०८ ई० के जैनगजट के २८ अंकों में यह *"आर्यमत लीला"* नामक विस्तृत और गवेषण पूर्ण लेखमाला निकालकर समाजका बडा उपकार किया है। बाबू साहबने अपनी सुपाठ्य और मनोरंजक सरल भाषामें स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके भाष्यानुसार ही आर्यसमाजके माने हुये प्रामाणिक वेद व अन्य सिद्धान्तोंकी जो यथार्थ समालोचना कर सर्व साधारण विशेषकर हमारे उदार हृदय, समाज सुधारक (Social Reformer) सांसारिक उन्नतिकी उत्कट आकांक्षा रखनेवाले, उन्नतिशील और सच्चे धर्मके अन्वेषी आर्यसमाजी भाइयोंका भ्रमान्धकार दूर करनेका जो श्लाघनीय परिश्रम किया है उसके कारण आप शतशः धन्यवादके पात्र हैं। जैन गजटके अंकों में ही इस " लीला " के बने रहनेसे सर्व साधारणका यथा उचित विशेष उपकार नहीं होसकता ऐसा विचारकर हमारी सभाने अपने हृदय से केवल सत्यासत्य निर्णयार्थ सबको यथार्थ लाभ पहुंचाने के सद् उद्देश्यसे ही इसको पुस्तकाकार मुद्रित कर प्रकाशित किया है। अन्तमें हमको पूर्ण आशा तथा दृढ विश्वास है कि इसको निष्पक्ष एक वार पठन करने से और नहीं तो हमारे प्रिय आर्यसमाजी भाइयों को (जिनका कि वेदोंको पढना और पढाना परम धर्म भी है) अवश्य ही वेदोंको–जिनका कि पढना और समझना अब प्रत्येक पर्य्याप्त हिन्दी जानने वाले साधारण बुद्धिमान् पुरुष को भी वैदिक यन्त्रालय अजमेर से स्वल्प मूल्यमें ही प्राप्तव्य स्वामि भाष्य वेदोंसे सुलभ साध्य होगया है–कमसे कम एकवार पाठ करनेका उत्साह और उसपर निष्पक्ष विचार करनेसे उनको वेदोंका यथार्थ ज्ञान प्रगट होजायगा और ऐसा होनेपर उनको निज कल्याणार्थ सत्य धर्म की अवश्य ही खोज होगी। हमारी यह आन्तरिक मङ्गल कामना है कि मनुष्य मात्र वस्तु स्वभाव सच्चा धर्म लाभकर अपने अनन्त, अविनाशी, स्वाधीन, निराकुल, और आत्मस्वरूप आनन्दको प्राप्त होवें ॥ इति शुभम् ॥

जीवमात्रका हितैषी—

जनवरी १९११ ईस्वी
इटावा

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री
श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा

श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावाके

मुख्योद्देश्य ।

प्रियवर सुहृद्गण ! काल दोष तथा अन्य भी कई कारणोंसे वर्तमान समयमें जैनधर्मके विषयमें सर्व साधारणका प्रायः मिथ्या ज्ञान होरहा है अतः उसको और जैन जातिपर लगे हुये मिथ्या दोष व किम्वदन्तियोंको दूर कर लेख और व्याख्यानादि द्वारा जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना करना. "अहिंसा परमोधर्मः ,, का प्रकाश विद्याका प्रचार और कुरीतियां दूर करना. इस सभाके मुख्योद्देश्य हैं॥

बिकाऊ ट्रैक्ट ।

आर्योंका तत्वज्ञान । ट्रैक्ट नं० १-२

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व और वेद प्रकाशत्व पर विचार तथा आकाश और उसके शब्दगुण होनेपर विचार है की०)॥ सैकड़ा २)

ईश्वरका कर्तृत्व । ट्रैक्ट नं० ३

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वका खण्डन है । की० १ पाई सैकड़ा ।≤)

भजन मंडली । ट्रैक्ट नं० ४

जैनतत्व स्वरूप प्रदर्शक और कुरीति निषेधक नवीन सामयिक भजन हैं की०)॥ सैकड़ा २)

कुरीति निवारण । ट्रैक्ट नं० ५

इसमें बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, वेश्यानृत्य, आतशवाजी फुलवारी और अश्लील गानकी खराबियां दिखाई हैं । की०)। सैकड़ा १)

जैनियोंके नास्तिकत्व पर विचार । ट्रैक्ट नं० ६

यथा नाम तथा गुणः । की०)। सैकड़ा १)

धर्मामृत रसायन ट्रैक्ट नं० ७

संसार दुःखसे संतप्त पुरुषोंके अर्थ रसायन । विना मूल्य वितरित ।

आर्यमत लीला । ट्रैक्ट नं० ८

इसमें आर्य वेदों और सिद्धान्तोंकी पोल है । की० ।≈) सैकड़ा २४)

मिलनेका पता—

मन्त्री—चन्द्रसेन जैन वैद्य—इटावा ॥